CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वधर्मसूर्य के आलोक में विश्व

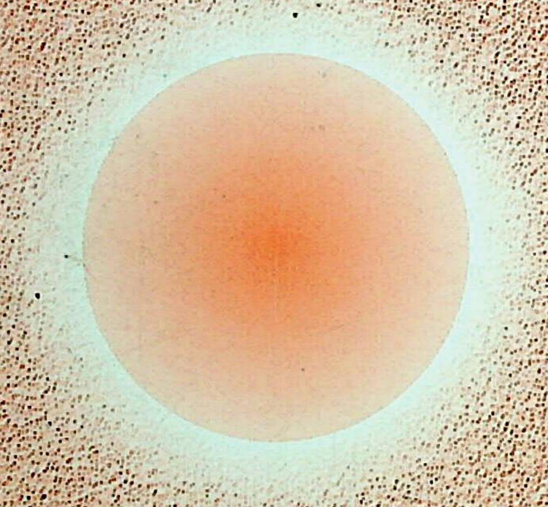

विमला ठकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri
8·3
Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वधर्मसूर्य के आलोक में विश्व

[महाबलेश्वर-ध्यानशिविर (१९८९) के प्रवचन-प्रश्नोत्तरियों का संकलन)]

(मूल मराठी से हिन्दी रूपान्तर)

प्रवचनकार : विमला ठकार

अनुवादक : भीमाशंकर साखरे

प्रकाशक

विमल - प्रकाशन - ट्रस्ट

अहमदाबाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

SWADHARMA SURYA KE AALOKMEN VISHWA.

*** A Collection of Lectures.**

© विमल - प्रकाशन - ट्रस्ट

प्रथम संस्करण : दिसम्बर, २००२

प्रत : २०००

मूल्य :

प्रकाशक :
विमल - प्रकाशन - ट्रस्ट
५, थियॉसॉफिकल सॉसायटी,
नवरंगपुरा, अहमदाबाद - ३८०००९.

प्राप्ति स्थान :
" संतकृपा "
१०३, रत्नम् टावर, पहला मजला,
चीफ जस्टिस के बँगले के पीछे,
जजीस बँगलो रॉड,
बोडकदेव, अहमदाबाद - ३८००५४.

मुद्रक :
कंपोझिंग
जलाराम कम्प्यूटर्स,
नवरंगपुरा, अहमदाबाद-३८०००९.

प्रिन्टिंग
सूर्या ऑफसेट
आँबली गाँव, सेटेलाइट-बोपल रॉड़,
अहमदाबाद-५८.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ॐ

VIMALA THAKAR

२३-९-२००२

श्रद्धा सुमन

यह पुस्तक डॉ. अजित फडणीस तथा श्री भीमाशंकर साखरे के संयुक्त पुरुषार्थ का परिणाम है। डॉ. फडणीसने प्रेरणा दी। सम्पादनमें प्राथमिक सहयोग किया।

श्री अजितभाई की इच्छा थी कि विमल प्रकाशन ट्रस्ट की तरफसे पुस्तक प्रसिद्ध हो।

सुश्री भगवतीबहन के अथक परिश्रमसे यह कार्य सम्पन्न हुआ।

प्रिय अजितभाई को पुस्तक अर्पण करनेमें हम सबको प्रसन्नता एवं कृतार्थता का अनुभव हो रहा है।

विमल वन्दन

विमल वन्दन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नव-युग का वासन्ती आवाहन

"विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का युग आ रहा है। यह अरुणोदय है ! लोगों को **nuclear war** और **winter** की संभावनाएँ दिखतीं हैं। लोग हताश और निराश हैं, किन्तु मेरी दृष्टि को मानवों की सामुदायिक आत्महत्या दिखाई नहीं दे रही। **The human race is not doomed, to commit a collective suicide. It has a role to play. It is a partner with the cosmic energy. In the play of Divine energy, we are partners of Divinity.**

तो, मुझे ऐसा दिखाई पड़ता है कि इस **Post-Indusatrial revolution** के युग में और अब तो **Post-Nuclear age** में, विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय अटल है, अनिवार्य है, अवश्यंभावी है। कहाँ होगा, किस भूमि पर होगा, वह कह नहीं सकते। घटित होने की संभावना - **Potential** इस देश में है, ... इस देश के लोग जाग गये, तो उनके बस का खेल है यह ! "

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जानना और उसे जीना

सन् १९८६, ८७, ८८, ८९ और ९१ इन पाँच वर्षों के शिबिर अत्यन्त आनंददायक रहे ! असीम आनंद तथा सुख !

श्रध्देया विमलाजी अत्यन्त रमणीय, प्रसन्न, उत्साहवर्धक और निसर्ग से सजे महाबलेश्वर में अपने श्रोताओं से बड़े प्रेम व आर्जव के साथ अपना अंतःकरण खोलकर संवाद करतीं रहीं। और जिज्ञासु भी अति तन्मयता से उनके शब्दों को अवधानांजलि में पकड़कर अपने अंतःकरण में संभालकर संग्रह करते रहे। उनके वे शब्द तो मानो "जानना और उसे जीना" यह मूलमंत्र ही थे !

यह विचार भी अनेकों के मन में निश्चित ही आता रहा होगा कि यह तो सत्य है कि इन शब्दों का संग्रहण हम कर रहे हैं, किन्तु क्या हम इसका मर्म हमारे जीवन में उतारेंगे और सचमुच क्या हम "जीवो ब्रह्मैव..." ऐसे बनेंगे ? विमलाजी अत्यन्त करुणा से कहतीं कि आपकी उपासना का आपके जीवन से अनुबन्ध हो और उससे मानव की दिव्यता प्रकट हो ! उनके हर शब्द मेंसे करुणा, आर्तता तथा मन के खुलेपन का दर्शन होता रहता था।

"सुदीर्घ अनुभव और वह सभी को बाँटने की उत्कट निरपेक्ष आतुरता और प्रेमभावना - केवल इसीके कारण, इस तरह का 'जीवनयोगी धर्म-दर्शन' प्रकट हो सकता है। श्रध्देया विमलाजी की 'जीवनयोग' यह संज्ञा भी आज के ज्ञान व कर्म - इन दोनों संकल्पनाओं को समाविष्ट करनेवाली संज्ञा है।" मराठी भाषा के नामवंत समीक्षक और सन्त साहित्य के एक निरहंकारी रसज्ञ डॉ. व. दि. कुलकर्णीजी को वे इस तरह से प्रतीत हुईं।

अपने जीवन की मानसिक व्यथा यह हमारी खुद की निर्मिति है और उसे हम ही किस तरह से बढ़ावा देते रहते हैं, उसका उन्होंने किया हुआ विवेचन मनःस्पर्शी है। वे कहतीं हैं कि इस व्यथा को हम ठीक ढंग से समझ लें तो फिर **Religion is nothing but ending the psychological pain ......** दुःख (sorrow) और व्यथा (pain) श्रद्धेया विमलाजी के शब्दों के आधार से इसका अनुभव अगर हम लें, तो फिर पारस्परिक संबंधों का और परिवर्तनों का मार्ग कितना आवश्यक है, यह हमारी समझ में आयेगा।

वे बड़ी यथार्थता से समझातीं हैं कि हमे अगर विश्व के नागरिक बनना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, तो उसके लिए भारतीय शिक्षण-पद्धति की नितांत आवश्यकता है । वे विवेचन करतीं हैं कि यदि यह पद्धति स्वीकारें, तो अपनेआप ही हम विश्व नागरिक बनेंगे ।

"ईशावास्य - उपनिषद्" ही वैश्विक प्रार्थना क्यों होनी चाहिए और इसकी स्वीकृति में विश्व-नागरिक बननें के बीज कैसे हैं - इस बात का अत्यन्त हृदयस्पर्शी और चिंतनशील विवेचन श्रध्देया विमलाजी ने किया है ।

पिछले पाँच वर्षों में उन्होंने सत्सङ्ग और उसका शास्त्र, मौन और ध्यान, जीवन ही साधना, जीवन का संपूर्णतया स्वीकार, साधना की आंतरिक समस्याएँ, साधनाओं की अनेकता, अंतरंग की खोज, मौन द्वारा मुक्ति, राष्ट्र-समाज और साधना, मन-मर्यादा और मौन, जे. कृष्णमूर्ति और परिवर्तन, श्रीज्ञानदेव आदि अनेक विषयों पर अत्यन्त मनोज्ञता से और प्रेम से भरा हुआ संवाद किया । गत् ३०-४० वर्षों से पूरी दुनिया में प्रवास करते हुए वे अपने विचारों को प्रकट करतीं रहीं हैं ।

मातृप्रेम व वात्सल्य से एक स्नेही या मित्र के नाते वे हमारे सम्मुख विचार रखतीं हैं कि पुराने पारंपरिक, मर्यादा-बद्ध, विशिष्ट चौखट से बँधे हुए - मार्ग छोड़कर और ग्रंथ-प्रामाण्य व्यक्ति-प्रामाण्य-का निर्माण न करते हुए हम हमारे जीवन में जीवन का जो ऐश्वर्य है कि जीवन जीने में सदा आनंदित रहें - यह बात वे फूल का उन्मीलन जिस कोमलता से होता है, उतनी ही नाज़ुकता से हमें समझातीं हैं । अपनी 'The gift' कविता में वे कहतीं हैं -

"I have come to sing the song of Life,
I know not how to teach,
I have come to love the diversity of Life,
I know not how to preach,
I have come to live
A sane healthy Life,
I know not how to lead,
My heart is a lotus,
These words are petals,
This is My Gift to you".

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपनी अमोघ वाणी से, विशाल जीवन के 'आनंदमय' स्वरूप का उन्होंने विशदता से दर्शन कराया और आनंद से जीवन का स्वीकार करने का एक नया शास्त्र, जो अभी तक अस्पृष्ट है, बिलकुल अरूढ - नया-नया-सा है, वह हमें उन्होंने समझाया।

श्रीज्ञानदेवजी के बाद आज फिर से श्रद्धेया विमलाजी उसी आर्जवता से कह रहीं हैं - 'विश्व स्वधर्मसूर्ये पाहो !' ('इस विश्व में स्वधर्मसूर्य का उजाला हो !')। वे स्वयं ही कहतीं हैं कि मेरा पिण्ड ही मूलतः श्रीज्ञानदेवजी के तत्त्व-विचारों में पला है।

श्रद्धेया विमलाजी के आर्त शब्दों से गत पाँच वर्षों में आनंदमय सुखद शिशिर को एक अनोखी बहार आती थी, तेज़ आता था, भावोत्कटता आती थी और आनेवाले वसंत का स्वागत करने को यह बहार सदा तत्पर रहती थी।

श्रद्धेया विमलाजी के प्रवचनों (cassettes) की ध्वनिफीति से उनका शब्दांकन करने का बड़ी ज़िम्मेवारी का और कठिन कार्य सौ. निशाताई फडणीसजी ने बड़े आनंद व प्रेम से किया। वे तो विमल-परिवार कीं ही हैं। उनके इस सह-कार्य के लिए मैं उनका ऋणी हूँ।

सन् १९८९ के श्रद्धेया विमलाजी के महाबलेश्वर के प्रवचन आज पुस्तक रूप में "विश्व स्वधर्मसूर्ये पाहो !" इस शीर्षक से प्रकाशित हो रहे हैं। पुस्तकरूप में वह प्रसाद हमें प्राप्त होने के लिए जिनका मौलिक और प्रेममय सहकार्य प्राप्त हुआ वे मेरे स्नेही श्रीदिवाकरजी धैसास और श्रीगजानन तेंडुलकरजी - इनका आभार कैसे मानूँ ? यह तो औपचारिकता होगी !

श्रद्धेया विमलाजी वर्णित व्याकुलता व बेचैनी का मंगल पर्व हमारे सभी के जीवन में आये, यही मेरी सदिच्छा।

शरद्पूर्णिमा — विनायक आठल्ये

३०-१०-१९९३

[मूल मराठी पुस्तक "विश्व स्वधर्मसूर्ये पाहो !" की प्रस्तावना]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुक्रमणिका

क्रमांक	विषय	पृष्ठ से-तक
प्रवचन प्रथम	जीवन का संपूर्ण स्वीकार	१-१५
प्रवचन द्वितीय	मन, मर्यादा और मौन	१६-३६
प्रवचन तृतीय	संबंधों के नये आयाम	३७-५२
प्रवचन चतुर्थ	राष्ट्र, समाज व साधना	५३-७०
प्रवचन पञ्चम	साधना की आंतरिक समस्याएँ	७१-९२
प्रवचन षष्ठं	आत्मोन्नति और बच्चे	९३-१२०
प्रवचन सप्तम	'साधनानाम् अनेकता'	१२१-१४१
प्रवचन अष्टम	जे. कृष्णमूर्ति और परिवर्तन	१४२-१६२
प्रवचन नवम	परस्पर संबंधों की समस्या	१६३-१८८
प्रवचन दशम	ईशावास्य उपनिषद् और मानवता	१८९-२०७
प्रवचन एकादश	जीवन का ऐश्वर्य	२०८-२२७
प्रवचन द्वादश	समस्त शून्यों का निष्कर्ष - बेचैनी	२२८-२४८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन प्रथम

जीवन का संपूर्ण स्वीकार

यह आनंद की बात है कि हम सह-जीवन के लिए फिर एक बार एकत्रित हुए हैं। मेरी अपेक्षा नहीं थी कि इस शिबिर में सौ-पचास जिज्ञासु भी आयेंगे, क्योंकि इस बार ज़्यादा ज़ोर वाणी की अपेक्षा मौन पे रहेगा। जिन्हें एकांत प्रिय नहीं अथवा जिन्हें शब्दों के बिना जीना नहीं भाता हो, उन्हें ये पाँच-छः दिन पाँच-छः वर्षों जैसे लगेंगे।

कुछ महत्त्व की बातें ऐसी होती हैं, जो दूसरे से कहनी ही चाहिए ऐसा नहीं, परंतु कहे बिना नहीं रह सकते। जिह्वा को कुछ न कुछ चुलबुली, कुछ हलचल करने का छंद होता है और मन को हमेशा कुछ सहारा, कुछ आलंबन चाहिए। स्वयं को आभास हो कि हम जी रहे हैं। इसलिए हम एक-दूसरे से वार्तालाप करते रहते हैं। हम बहुत ही ऊपरी स्तर पर जीते हैं - Superficial layer of existence - हमारी धारणाशक्ति का विकास हुआ ही नहीं है - इसलिए जिस स्थान में हम रहते हैं, वहाँ के वातावरण की कुछ क्रियाएँ, आसपास रहनेवाले लोगों की प्रतिक्रियाएँ, प्रवचन सुनने पर उन प्रवचनों की प्रतिक्रियाएँ - इन समस्त प्रतिक्रियाओं को शब्दबद्ध करना हमारे मन के लिए बड़ा अनिवार्य हो जाता है। और यह प्रतिक्रियाओं का जो लेन-देन चलता है, उसको हम संवाद समझते हैं। एक बार ऐसा प्रयोग करना ही था, जो गंभीर मुमुक्षु और साधक हैं - Serious minded enquirers, who are capable of living without verbalization, living in psychological solitude - वे एकत्रित आयें, रहें। मैं प्रारंभ में ही आप सभी का अभिनंदन करती हूँ कि ये समस्त बातें आपको निमंत्रण-पत्रिका में मेरी बिनती के अनुसार बताई गईं थीं, फिर भी आप पधारें। इस संकल्प के लिए आपका अभिनंदन करती हुई मैं आशा रखती हूँ कि आप अपने दायित्व को समझकर पाँच-छः दिन इस शांत, सुंदर और रम्य स्थान में रहने का यह जो मौक़ा प्राप्त हुआ है, उसमें से एक भी क्षण का आप दुरुपयोग नहीं करेंगे। जो लोग परिश्रम कर के व्यवस्था रखते हैं, उन पर बड़ा दायित्व रहता है। वे हमारी छुट्टियों के लिए - Vacation - के लिए नहीं कर रहे या वातावरण-परिवर्तन के लिए हम यहाँ आएँ, इसलिए भी ऐसा नहीं करते हैं। वे तो मुमुक्षुओं को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परस्पर - सत्सङ्ग का लाभ मिले, इसलिए यह भाग-दौड़ करते हैं। तब कहीं हम सभी को ये सब सुविधाएँ मिलतीं हैं और एक सह-चिंतन का, सह-जीवन का, सह-निवास का और सह-यात्रा का यह मौक़ा प्राप्त होता है। ऐसी यात्रा को अब हम निकल रहे हैं।

अध्यात्म में सत्सङ्ग का उपयोग क्या है ?

कुछ साधक पहली बार आये हैं। कुछ साधक कई बार प्रवचन सुन चुके हैं। जो साधक प्रथम ही आये हैं, उनके साथ न्याय होना चाहिए, यह मेरा दायित्व बन जाता है। अध्यात्म या जीवन के संबंध में मेरी जो दृष्टि है, वह उन्हें समझाना धर्म बनता है, मेरा ! अतः जो सत्सङ्गी स्त्री-पुरुष प्रथम बार आये हैं, उनके लिए हम यहाँ से शुरु करेंगे कि जिसे हम अध्यात्म कहते हैं और जिसके लिए सत्सङ्ग की आवश्यकता होती है, वह अध्यात्म कुछ भी प्राप्त करने का क्षेत्र नहीं है। इस क्षेत्र में शरीर से, मन से, बुद्धि से, इन्द्रियों के स्तर पर या अतीन्द्रिय क्षेत्र में कुछ पाना है, कुछ कमाना है, या प्राप्त करना है - ऐसा यह क्षेत्र नहीं। इस बारे में पूर्ण भ्रमरहित होना आवश्यक है। यदि कोई इस कल्पना से आयें हों कि इन पाँच-छः दिनों में हम कुछ कमाएँगे, कुछ प्राप्त करेंगे और कुछ न कुछ परिवर्तन इन पाँच-छः दिनों में ज़रूर हो जायेगा या फिर कोई ऐसा सोच के आया हो कि गणित में जिस प्रकार प्रश्नों के उत्तर दिये जाते हैं, उस प्रकार के उत्तर हमें यहाँ मिलेंगे, - तो वे समझ लें कि मेरी दृष्टि से इस सत्सङ्ग की उपयुक्तता किसी चीज़ की प्राप्ति के लिए नहीं होती। वह तो केवल सत्य समझ लेने के लिए होती है।

वैज्ञानिक दृष्टि

अध्यात्म याने संपूर्ण जीवन की ओर देखने की एक वैज्ञानिक दृष्टि। मैं इसे वैज्ञानिक दृष्टि इसलिए कहती हूँ कि इसमें अनेक प्रकार की भ्राँतियों और भ्रमों का निरसन करने की शक्ति रही है और आज भी है। आध्यात्मिक सत्सङ्ग का एक प्रयोजन यह कहा जा सकता है कि भ्रमों का निराकरण हो और दृष्टि निर्भ्रांत बने, बुद्धि निर्भ्रान्त बने। और अगर जीवन की ओर देखने की ऐसी दृष्टि मिल गई या दृष्टि खुल गई, तो फिर जीवन जीने की शक्ति या पद्धति में परिवर्तन आ जाता है। आज जिस चौखट में अटक के चलने को हम जीवन जीना समझते हैं, उस चौखट में, उन चक्रों में सालोंसाल चलते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहना, उसे 'जीवन जीने का' प्रकार समझते हैं। जो अवसर मिला है, उसे गँवा बैठना - यह बात इस दृष्टि से ही हमारी समझ में आती है। और फिर एक नई शैली, एक नई जीवन-पद्धति मिल जाती है। ऐसी दृष्टि बदल जाय और जीवन जीने में परिवर्तन आ जाय, तो मानवों में जो परस्पर व्यवहार होते हैं, जिनके कारण संबंधों का निर्माण होता है, उन व्यवहारों का, उन संबंधों का स्वरूप भी पलट जाता है, उनमें भी एक परिवर्तन आ जाता है।

मैं प्रमाण नहीं

अध्यात्म का यह प्रयोजन हमारे पाँच-छः दिनों के सत्सङ्ग के लिए पर्याप्त होगा। आप अन्य बात यह भी देखेंगे कि यहाँ बैठकर आपसे संवाद करनेवाली व्यक्ति भी authority बनकर बैठेगी नहीं। हम यहाँ बैठें और कुछ बोलें, यह एक शाब्दिक आवश्यकता है, इसलिए हो रहा है, किन्तु कहनेवाले के चित्त में कोई भी authority का भाव नहीं है। हम अध्यात्म के क्षेत्र में जो वैज्ञानिकता लाना चाहते हैं और लानेवाले हैं, उसमें जिज्ञासु और आत्मोपलब्ध व्यक्ति, मुमुक्षु और मुक्ति की सहजावस्था में जीनेवाली व्यक्ति - इनके संबंधों का स्वरूप बदलना चाहिए। आत्मोपलब्ध और आत्मजिज्ञासुओं के संबंधों में भीतर ही भीतर यदि परस्पर शोषण हो रहा हो, तो जैसे भ्रांति और भ्रम का निराकरण आवश्यक है, वैसे ही यह जो परस्पर शोषण होता है, उस शोषण का भी अंत होना चाहिए। यह वैज्ञानिक दृष्टि की माँग भी है और उसकी अनिवार्यता भी।

तो, हम जो पाँच-छः दिन कहेंगे, बैठेंगे, वह non - authoritative approach to spirituality रहेगा ! भारत में, भारतीयों को इसका अर्थ मालूम हुआ, तो भी उनके चित्त को यह विशेष भाता नहीं; क्योंकि हज़ारों वर्षों से ऐसी मान्यता दृढ़ की गई और रक्त में घुल-मिल गई है कि जिज्ञासु और आत्मोपलब्ध इनमें जो संबंध है, वह जैसा कि स्वामी-सेवक का रहे, शरण जाने का या समर्पित होने का ही रहे। उनमें एक समता का संबंध रह सकता है, एक निर्मल और शुद्ध सख्य बन सकता है, मैत्री हो सकती है और मानवीय सहयोग रह सकता है - प्रेम मेंसे सख्य मेंसे निर्माण हुआ सहयोग, a psychology of mutual co-operation, यह बात हमारे लिए नई है। हमें इतना ही मालूम है और इतना ही सुना और पढ़ा है कि कोई सन्त, साधु, संन्यासी, स्वामी या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहुँचे हुए पुरुष हों, तो उनके चरणों में जाकर बैठें, वे हमारे प्रश्नों को सुलझाएँ, मुक्ति का मार्ग हमें दिखायें, इतना ही नहीं, वे हमें अपने कँधों पे बिठाकर मुक्ति तक ले जाकर पहुँचायें, या फिर हमारे सर पे हाथ रखें ! किंतु यहाँ तो हम जीवन के एक नये आंयाम का प्रयोग - **A NEW DIMENSION OF ENQUIRY AND A NEW DIMENSION OF RELATIONSHIP** - आँखे खुली रखकर करनेवाले हैं। तो आपका-मेरा संबंध मैत्री, प्रेम व सख्य का है। यहाँ मैं आपके प्रश्नों को सुलझानेवाली नहीं हूँ। आपके प्रश्न मेरे तक पहुँचे हैं। वे इन पाँच-छः दिनों में देखेंगे। किन्तु उन प्रश्नों की ओर किस दृष्टि से देखें, उनको कैसे हल करें, वे क्यों सामने आकर खड़े रहते हैं, ये समस्याओं की ग्रंथियाँ बाह्य परिस्थिति के कारण निर्माण होती हैं या उनका जन्म हमारी मनःस्थिति मेंसे होता है, इन सबकी हम जाँच करेंगे, परीक्षा करेंगे। आप प्रश्न पूछते रहें और मैं उत्तर देती रहूँ - ऐसा नहीं होगा। आप और मैं - मिलकर ही उन प्रश्नों की ओर देखेंगे और उन प्रश्नों में ही कहीं उनका उत्तर तो छिपा नहीं न, यह भी ढूँढ निकालेंगे।

शोषण न हों

हम बीज बोते हैं, उस बीज में ही वृक्ष अदृश्य रहता है। कली में फूल और उसकी सुगंध छिपी हुई रहती है। इसी प्रकार जिज्ञासु या साधक व्यक्ति की चेतना में जन्मी हुई जिज्ञासा की जो कली है, उस कली में ही आत्मोपलब्धि का पुष्प छिपा हुआ रहता है। उसे बाहर से लाना नहीं पड़ता। कोई बाहर से लाकर दें - ऐसी बात नहीं है। उस कली को विकसित होने के लिए जो कुछ पोषण देना पड़ता है, उतना दे सकते हैं, और इसीलिए तो हम यहाँ आये हैं। जिज्ञासा की वे कलियाँ खिल उठें - आपके ये प्रश्न जिज्ञासा की कलियाँ ही तो हैं ! - हैं कि नहीं ? - तो, वे सारी कलियाँ खिलें और सुगंधसहित, सौरभसहित लावण्य का, सौंदर्य का हम सब अनुभव करें, यही हमें देखना है, करना है।

तो पहली बात है दृष्टि, दूसरी है वैज्ञानिक जीवन-पद्धति और तीसरी है आध्यात्मिक संबंधों में शोषण का अंत। एक नया आधार ! एक ऐसा संबंध, जिसमें शरणागति नहीं, समर्पण नहीं, फिर भी आदर ज़रूर है। प्रेम रहने पर भी, विनय रहता नहीं - ऐसी बात नहीं। एक-दूसरे से हम सीखते हैं तो कृतज्ञता नहीं - ऐसा भी नहीं; तो, यह सब है और वह रहकर भी मानवता छूटेगी नहीं, और परस्पर का शोषण करने की इच्छा भूले से भी न हो - ऐसा रहना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चाहिए । आप कहेंगे - इस 'शोषण' शब्द का प्रयोग आप बार-बार क्यों कर रहीं हैं ?

ऐसा है कि जहाँ स्वामित्व की भावना रहती है - जैसे यदि कोई कहे कि - 'ये मेरे शिष्य हैं', 'ये मेरे गुरु हैं', तो उसमें स्वामित्व की याने possession की भावना आती है, ममता व आत्मीयता के नाम पर प्रभुत्व की भावना रहती है और उसके साथ-साथ पराधीनता भी आती है । एक ओर प्रभुत्व और दूसरी ओर पराधीनता, एक तरफ स्वामित्व और दूसरी तरफ दीनता, इससे संबंध बहुत बीभत्स बन जाते हैं ।

प्रेम के कारण होनेवाला समर्पण बहुत अलग रहता है । किन्तु मुक्ति मिले, मुझे परमात्मा का साक्षात्कार हों, कुंडलिनी जागृत हों, कोई मुझे अतीन्द्रिय अनुभूतियाँ करा दें, इस हेतु से जो शरणागति या समर्पण होता है, वह एक प्रकार का sophisticated bargaining नहीं तो और क्या हैं ? हम वैज्ञानिक युग में जी रहे हैं, आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक - इन समस्त क्षेत्रों में मानवीय संबंधों के आधारों में परिवर्तन लाने के लिए हम प्रयत्नशील हैं, बेताब हैं ! फिर अध्यात्म का यह जो पवित्र और बड़ा नाजुक क्षेत्र है, उसे हम इस परिवर्तन के आंदोलन से, इस परिवर्तन से कैसे अलग रख सकते हैं ? इससे इसे बाहर कैसे रख सकते हैं ? एकदम खुले मन से ये पाँच-छः दिन हम सब मिलकर साथ जियेंगे ।

जीवन में कितनी विविधता है

हमने तो कह दिया कि जीवन जीने की एक नई दृष्टि याने अध्यात्म । क्या-क्या नाविन्य है इसमें ? अपने आसपास में जो जीवन है, उसका स्वीकार अध्यात्म की दृष्टि में निहित है, अंतर्भूत है । जीवन के विविध पहलू हैं : व्यक्त है; अव्यक्त है; अनंत है; एकदेशीय है; सर्वदेशीय हैं और इस जीवन में हमें परस्पर विरोधी दिखनेवाले, द्वैतात्मक प्रतीत होनेवाले - ऐसे भी तत्त्व हैं । उसमें शीत है, उष्ण है; सुख है, दुःख है; अंधकार है, प्रकाश है; मान है, अपमान है; जन्म है, मृत्यु है । जिसमें हमें परस्पर विरोधाभास हों, ऐसे द्वैतात्मक बिंदु हैं तथा जो हमें उलझन में डालें ऐसे कई नाम, रूप, रंग, आकार, प्रकार - इन सब की विविधता है, अनेकंता है - जो हमें बिलकुल उलझन में डाले ! 'अनंतता' शब्द का प्रयोग करने पर भी अयोग्य नहीं रहेगा इतनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

innumerable variety of forms, the expressions of life है ! और ऐसी अनंतता में हमें जीना है । नाम, रूप, रंग, आकार, प्रकार, सौरभ - में जीवन बिताना है और बड़े मज़े की बात यह है कि इन सबका आस्वाद हम ले सकें, ऐसी इन्द्रियाँ भी निसर्ग ने हमें दीं हैं ! हमें दृष्टि दी हुई है, इसलिए तो उसकी सहायता से यह जो रूपमय, आकारमय विश्व है, उसके रूप का और सभी पदार्थों की विचित्रता का, विलक्षणता का, विविधता का दर्शन कर सकते हैं, उपभोग ले सकते हैं, उनका सुख प्राप्त कर सकते हैं । कितनी अलग प्रकार की सुगंध होतीं हैं - पुष्पों कीं, फूलों कीं, सब्जियों कीं, वनस्पतियों कीं और उनका सुख प्राप्त करने के लिए घ्राणशक्ति है । आँखों में रूप देखने की शक्ति और श्रवणों में नाद सुनने की शक्ति है ।

तो, विश्व का प्रत्येक रसास्वाद लेने को शक्तिमान ऐसी इन्द्रियाँ भी हैं । त्वचा से स्पर्श का सुख मिलता है, शरीर के पैर होने के कारण गति का, हाथ होने के कारण क्रिया का - सुख है और बोलने की शक्ति होने के कारण वाणी की गति का आनंद ले सकते हैं । एक ओर विषयों की अनंतता व दूसरी ओर उनके सुखोपभोग लेने की क्षमता रखनेवाली इन्द्रिय शक्ति ! ऐसे रहना है और फिर भी एक क्षण में कब यमराज सामने आकर खड़े रहनेवाले हैं, कैसे आएँगे, पता भी नहीं चलनेवाला ! वृद्धावस्था में ही आते हैं ऐसा नहीं, युवावस्था में भी आते हैं, कहाँ आएँगे, क्या निमित्त होगा, कह नहीं सकते । वे कहीं तुम्हें notice नहीं देनेवाले कि मैं आ रहा हूँ, बस अकस्मात् सम्मुख आ कर कहेंगे - "सब छोड़ो और चलो हमारे साथ !"

रसास्वाद और अनासक्ति

यदि रसास्वाद लेनेवाली इन इन्द्रियों से समस्त विषयों का और पदार्थों का - वे इर्द-गिर्द रहने पर - रससेवन तो करना है, पर उनमें आसक्त होना नहीं है, अगर ऐसी कोई कला प्राप्त नहीं हुई, अगर ऐसी कोई खूबी आदमी ने नहीं पायी तो यह जीवन उसमें फँसेगा ही न ! कभी नाद में, तो कभी रूप में, तो कभी स्पर्श में - फँसेगा और यह 'मृत्यु' नाम का जो महासखा है, वह तो नित्य हमारे कानों में गुनगुनाता रहता है ही कि एक दिन सब छोड़ कर जाना है । तू इनका आनंद तो अवश्य ले, क्योंकि रस तो मूलतः सेवन के लिए ही है ! परंतु वे उपभोग के लिए नहीं हैं । तब दो चीज़े हैं : रससेवन व उपभोग ! आनंद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लेना किन्तु आसक्त न होना - यह तलवार की धार पर चलने जैसी कसरत करनी पड़ती है ! अध्यात्म में यह एक दृष्टि है। हमें जो उपभोग याने सुख-परायणता - सुख के पुनरावर्तनों की वासना - बार-बार पुनरावर्तन हों - ऐसी जो वासना रहती है, उसमेंसे ही उपभोगपरायणता आती है। उपभोगपरायणता के कारण परिग्रह का प्रेम निर्माण होता है। परिग्रह के प्रेम से भीरुता व कायरता आती है और यह भीरुता व कायरता से हमारे परस्पर संबंधों में कितने सारे अनर्थ हो जाते हैं !

इसलिये हमें सीखना है कि सत्ता के ये जो अनंत रूप हमारे सम्मुख हैं, उनकी ओर पीठ न फेरते हुए हमें जीवन का स्वीकार करना है - मृत्यु सहित जीवन का स्वीकार ! सुख के साथ दुःख का, अनुकूलता के साथ प्रतिकूलता का स्वीकार ! अनुकूलता में फँसना नहीं हैं या प्रतिकूलता से निराश या हताश होना नहीं है, बैठे रहना नहीं है। यदि यह दृष्टि मिली नहीं तो, यह जो 'नानारत्नावसुंधरा' है, इसमें ३० वर्ष, ४० वर्ष, ६० वर्ष, ८० वर्षों तक रहना - यह संकटमय हो जाता है। फिर एक के प्रति आसक्ति, दूसरे के प्रति विरक्ति; यह चाहिये, वह नहीं चाहिये; इससे मैत्री, उससे द्वेष; किसी का भय, किसी की आसक्ति - ऐसा होता है। वह मकड़ी भी इतने जाल नहीं बुनती, जितने हमारे मन से बुने जाते हैं और उसमें फँसा हुआ यह जीव तड़पते-तड़पते जीते रहता है।

अध्यात्म कहता है - 'इसकी आवश्यकता नहीं। व्यक्त सृष्टि तुम्हारे लिये ही है और तुम उसका एक भाग हो, पर इसमें कैसे जीना वह सीख लो - रससेवनं जीवनम्। रसास्वादने आनंदः - पदार्थों (matter) में गुण हैं, ऊर्जा हैं, किन्तु यह जो अव्यक्त है, वहाँ कई प्रकार की ऊर्जाएँ हैं। पदार्थों की ऊर्जाओं का सर्व प्रकार से यदि एकत्रीकरण किया गया, अदल-बदल की गयी - permutation and combination - तो भी शेष रहें, ऐसी ऊर्जाएँ - Energies - हैं, जिन्हें आँखों से देख नहीं पाते। उनसे संबंध बाँधना पड़ता है - हमारे पास जो सूक्ष्म इन्द्रिय हैं, जिसे हम 'बुद्धि' कहते हैं, 'मन' कहते हैं - उससे ! इन सूक्ष्म इन्द्रियों द्वारा उस अव्यक्त के साथ जीना है। पदार्थ के उपभोग में यदि हम फँस गये, तो इन पदार्थों में जो ऊर्जाएँ हैं, उनसे संबंध आयेगा नहीं और उनका उपयोग अथवा विनियोग करने की शक्ति भी हममें आएगी नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अव्यक्त ऊर्जाएँ

तो, व्यक्त के साथ इन्द्रियों की मदद से जीते-जीते इन संबंधों से, इन इन्द्रिय-विषयों के सहजीवन से, वे जो अव्यक्त सृष्टि की ऊर्जाएँ हैं, उन्हें देखने की क्षमता हममें होनी चाहिए। शब्दों की मदद से देखें। आप गणित को कैसे देखते हैं ? आप गिनती करते हैं - १, २, ३, ४ एक लाख, दस लाख, करोडों अब्जों, खर्वों - यह जो आप करते हैं, वह तो कहीं हैं ही नहीं। मन द्वारा अंको का निर्माण किया गया, उनको जुटाने की कला सिखते हैं - जैसे मिलान करना, व्यय करना, गुणन, भाग, हिसाब - ये सभी बुद्धि की सृष्टि है, जी ! जीवन की अनंतता में 'एक' और 'दो' ऐसा कुछ भी नहीं, किन्तु जो है, उसे हमारी इन्द्रियों की मर्यादा के कारण, हम गिनने लगें और कहने लगें कि यह इसका नाप है ! बीजगणित तो सांकेतिक भाषा में ही चलती हैं, जैसे A + B ! आप के इंजीनियरिंग में, भूमिति में, संगीत में - भी ऐसा ही है। भाषा में अभी हम जिन शब्दों का उपयोग कर रहे हैं, वे भी संकेत ही हैं। इन शब्दों की पहचान तो हम बुद्धि द्वारा ही करते हैं ! नाक से, आँखों से या हाथ-पैरों से नहीं करते। तो अव्यक्त सृष्टि से संबंध - विचारों, विकारों से संबंध - याने 'विचार', 'विकार' नाम की जो ऊर्जाएँ हमारे शरीर में हैं, उनसे संबंध - ये सब संबंध मानव-समाजने बनाई हुई सभ्यता और संस्कृति के कारण हैं। हमारे हाड़-मांस में, रक्त में, स्नायु-मज्जा सभी में विचार-विकार भरे हुए हैं। इन ऊर्जाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार हैं, संस्कार हैं, प्रतिक्रियाएँ कैसे करें - इसके Patterns हैं। यह सब जो हममें भरा हुआ है, उसकी पहचान कर लेना ज़रूरी है। ऐसी ऊर्जाएँ बाहर भी हैं और अंदर भी हैं - पदार्थों की ऊर्जाएँ हैं, पञ्च-महाभूतों की ऊर्जाएँ हैं, हमारे शरीर में ऊर्जाएँ हैं और पशु-पक्षियों में भी हैं।

विकारों का आनंद लूटो !

तो आज की प्रस्तावना पर - या परिचयात्मक प्रवचन में, मैं चाहती हूँ कि हम जीने का अर्थ समझ लें। हम व्यक्त व अव्यक्त से संबंध जोड़ें, हम विचार-विकार की ऊर्जाओं का उपयोग करें, उनका आनंद लूटें। आप कहेंगे - क्या विकारों का भी आनंद लूटना है ? मैं कहूँगी - क्यों नहीं ? 'काम' यह तो मूल विकार है न ! इस काम-विकार के आनंद से मनुष्यजाति या जो भी 'अथातो आत्मजिज्ञासु, ब्रह्मजिज्ञासु' हैं, उन्हें क्या अस्पृश्य रहना है ? इस विकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से भी आनंद निर्माण करने की कला सीखनी चाहिए। मगर, यदि यह कामरस का - 'सेवन' निकल गया और 'काम' यह उपभोग का विषय बन गया, तो उसकी जो पवित्रता है - 'The sanctity of sex life' - उसे हम उच्च स्तर से एकदम नीचे - रसातल में ढकेल देंगे, उसका अधःपतन करेंगे। जिसके बारे में 'आनंद' शब्द का प्रयोग करने में आपको संकोच हो सकता है, उसी विकार के बारे में मैंने सबसे पहले बात की।

(अब दूसरा विकार देखिये) अन्याय सहा नहीं जाता। व्यक्ति पर किया हुआ, समाज पर किया हुआ - अन्याय सहन नहीं होता और उसका प्रतिकार किये बिना रहा नहीं जाता। ऐसी तीव्र प्रतिक्रिया जिससे क्षणमात्र हम संतुलन खो बैठ सकते हैं, ऐसी यदि उत्कटता निर्माण नहीं होगी, तो उस अन्याय का प्रतिकार और शोषण का अंत करने की प्रेरणा तथा उन प्रेरणाओं का संगठन समाज में कभी होगा ही नहीं!

तो, कहना यह है कि विचारों और विकारों की ऊर्जाओं का उपयोग है, भाषा का उपयोग है। मैं जो कह रही हूँ, वे 'शब्द' तो जीवन का सत्य नहीं। शब्द तो प्रतीक हैं, संकेत हैं, किन्तु उनका भी उपयोग है। यदि इन शब्दों का प्रयोग मैं नहीं करूँगी तो आपके हृदय तक पहुँच नहीं पाऊँगी।

अतः संवेदनशीलता एवं बुद्धि की सहायता से हम अव्यक्त सृष्टि से संबंध रख सकते हैं, परंतु इस अव्यक्त के परे जीवन का एक ऐसा भाग है, स्थिति है, जो शब्दों की पकड़ में नहीं आती, शब्दों में समा ही नहीं सकती और भावना भी जिसे धारण नहीं कर पाती, उस अनंत, अनादि, अकाल, असीम सत्ता को लोगों ने 'परमात्मा' कहा है, 'प्रभु' कहा है, अनेक नाम दिये हैं... किन्तु कुछ लोग कहेंगे : 'यह सत्ता है ऐसा किसलिए मानें ? हम बुद्धिवादी हैं, हम ईश्वर को मानते ही नहीं'। अच्छा मत मानो। ईश्वर मानव-निर्मित है, उसे कोई माने या न माने। जिन्हें आवश्यकता लगे, वे ईश्वर की प्रतिस्थापना करें, पूजा करें, मंदिर बनाएँ, प्रतिमा स्थापित करें। घर में उपासना के हेतु विग्रह लाकर प्राणप्रतिष्ठा करें और शास्त्रोक्त उपासना करें, हमें कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु 'हम बुद्धि-निष्ठ हैं, ईश्वर को मानते नहीं'। अच्छा भाई ! मत मानो, ईश्वर को मानते नहीं, इसका अर्थ मंदिर, मूर्ति, प्रतिमा तथा उनका जो शास्त्र है – अर्चना, उपासना का, मंत्र-शास्त्र आदि, ये आपको स्वीकार नहीं - ऐसा आपका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहना है न ? कोई आपत्ति नहीं, किन्तु परमात्मसत्ता है ही नहीं, ऐसा हम कहनेवाले हैं क्या ?

बुद्धि का और अध्यात्म का बैर नहीं है। ईश्वर को न माननेवाला, मानवनिर्मित Concept of God को न स्वीकार करनेवाला कोई 'नास्तिक' नहीं कहा जा सकता। किन्तु इस व्यक्त और अव्यक्त के परे, The visible and invisible के परे, matter and energy के परे कुछ है ही नहीं, क्योंकि हमारी बुद्धि को वह दृष्टिगोचर होता नहीं, अतः वह है नहीं - ऐसा कहनेवाला कोई हो, तो शायद नास्तिक कहना पड़ेगा। बुद्धि व अध्यात्म की कोई शत्रुता नहीं है। बुद्धि जितनी ऊँचाई तक जाएगी वहाँ तक, बुद्धि को जहाँ तक पसीना छूटने लगे वहाँ तक, अध्यात्म ले जायेगा, किन्तु जब बुद्धि अवरुद्ध होगी, तब बुद्धिवादी कुंठित हो जाता है, क्योंकि उस बुद्धि को शब्द बिना, संकेत के बिना, लंबाई-चौडाई गिने बिना, measurements किये बिना, symbols के बिना, प्रतीक के सहारे बिना - चलने नहीं आता। 'शब्द' - यह उसका अंतिम प्रतीक या संकेत है - जो शब्द तुम computer के लिये उपयोग करते हो, वे भी मानवनिर्मित ही हैं - उसके बिना बुद्धि से चिंतन नहीं हो सकता। भूतकाल से प्राप्त हुआ यह सारा सामान लिये बिना बुद्धि आगे जा ही नहीं सकती - वह बुद्धि जब थककर बैठ जाती है - जहाँ मन स्पर्श नहीं कर सकता और वाणी की भी पहुँच नहीं, बुद्धि की गति नहीं, उस स्थान पर बुद्धिवादी कुंठित हो जाता है, किन्तु अध्यात्मनिष्ठ व्यक्ति को वहाँ भी कुंठा का अनुभव नहीं करना पड़ता।

क्यों भाई, उसे कुंठा का अनुभव लेना नहीं पड़ता ? क्या वेदों ने कहा है इसलिए ? उपनिषदों ने, कुरान-ए-शरीफ ने, धम्मपद ने, बाइबिल ने कहा इसलिए ? उन्होंने कहा है, अतः वह ग़लत है ऐसा भी नहीं और उन्होंने कहा है, केवल इसीलिए वह योग्य है ऐसा भी नहीं।

ब्रह्माण्ड का अनुशासन

जब हम खुली दृष्टि से इस संसार और सृष्टि की ओर देखते हैं, तब ऐसा दिखता है कि यह जो सृष्टि चल रही है, इसमें पृथ्वी और आकाश का संबंध है, इस पृथ्वी का और सागर का संबंध है, सागर और चन्द्र का संबंध है, इस नमकीन पानी का मीठा पानी बनाकर और उसके बादल बनाकर वर्षा के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूप में बरसानेवाला जल - यह घटना हम देखते हैं। यह भी हम अनुभव करते हैं कि इस पृथ्वी माता में बोया हुआ मुट्ठीभर बीज (मन भर) - टन भर उपज बनकर वापस आता है। इससे विदित होता है कि इस समग्र कार्य के पीछे एक व्यवस्था है, an order, an implicit order in everything that exists around us and perhaps within us ! हमें भूख लगे, नींद आये, हमारे शरीर के अंदर पचनक्रिया होती रहे, हमने चबा-चबा कर खाये हुए अन्न का अनेक रसों में पृथक्करण होकर यथास्थान वह जा पहुँचे और तत्पश्चात् फिर रक्त में, धातु में मिलकर उससे ओज, तेज निर्माण हो, इन समस्त गतियों को जब देखते हैं, तब हमें क्या दिखता है ? 'an energy of intelligence incorporated in the function of cosmos'- इस विश्व में, जिसे हम जीवन कहते हैं, उसके पीछे एक व्यवस्था है - an order ! इस व्यवस्था में एक अनुशासन है, an implicit order है। 'अथ आत्मानुशासनम्।' मानो यह पूरा विश्व आत्मानुशासित है। उसके अंतरंग में खुद का अनुशासन करने की शक्ति है, जिसे वह करती रहती है। तो, एक है यह स्वयंशासन की - अनुशासन की शक्ति और दूसरी है प्रज्ञा। 'Intelligence' को क्या नाम दे सकते हैं... ? अगर हम intellect को बुद्धि कहते हैं, intelligence के लिए हम 'प्रज्ञा' शब्द का उपयोग करेंगे। यह प्रज्ञा की ऊर्जा ओतप्रोत है। यह किसी विशिष्ट व्यक्ति की प्रज्ञा नहीं। 'किसी' की यदि कहना ही हो तो जीवन की कहिये। 'The supreme intelligence of life, the cosmic life' - किसीको वह attribute (आरोपित) की नहीं जा सकती। वह एकदेशीय नहीं है और इसलिए वह एक व्यक्ति की नहीं कहा जा सकता। आपका-हमारा जैसा एक संस्कार-बद्ध चित्त है, वैसा वहाँ संस्कार-बद्ध चित्त दिख पड़ता नहीं। क्योंकि भूगोल के साथ उसका खगोल से संबंध है और इन भूगोल-खगोल के बीच ऊर्जाओं का जो आदान-प्रदान चलता है, उस आदान-प्रदान के संगीत के पीछे भी यही प्रज्ञा काम करती हुई दिखाई देती है।

जीवन की स्वयंप्रज्ञ सत्ता

जीवन की जो सत्ता है - it's not a blind force, it is supreme intelligence belonging to the Totality of life, not belonging to some God or Goddess, इसके बारे में हमें कहना है कि किसी भी देव-देवताओं की यह प्रज्ञा है, ऐसा नहीं है। यह स्वयंभू जीवन मानो 'स्वयं प्रज्ञा' है। इस विश्व में जो-जो हैं, उनका सभी से परस्पर संबंध है और वे संबंध मानव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वारा निर्मित नहीं है, यह उस 'स्वयंप्रज्ञा' का ही और एक सबूत है । The inter-relatedness of everything that exists is not man-made ! इसको हम 'दिव्यता' कहते हैं, **'Divinity of life'** कहते हैं ! Life is Divine ! जीवन की यह दिव्यता किसमें उतर आई ? यह 'अस्तित्व के अंतर्भूत संबंधों में, परस्पर संबंधितता' में उतर आई । Inter-connectedness तो हम ही निर्माण करते हैं, साइकिल बनाएँ, मोटर बनाएँ, स्पेस-रॉकेट बनाएँ, electronic brain, electronic computer, silicon chips - तक से लेकर सबकुछ - उसे हम जोड़ते हैं । एक अत्यन्त सुंदर inter-connection और उसकी एक सुंदर व्यवस्था हम निर्माण करते हैं, पर यह जो जोड़कर निर्मित की गई व्यवस्था है - inter-connectedness रहना और वह 'आंगिक' संबंध, अंतर्भूत संबंध, अस्तित्व में ही संबंध अंतर्भूत रहना - याने कि inter-relatedness रहना- इसमें महद् अंतर है । दोनों बातें बिलकुल अलग हैं ।

तो, हम जिसे 'परमात्मा' कहते हैं, जीवन में 'दिव्यता', 'परमात्मा' 'सत्ता' कहते हैं वही यह है । वह सर्वव्यापिणी, सर्वाकार, सर्वरूपिणी - ऐसी जो प्रज्ञा है वह यही है और वही अस्तित्वगत परस्पर संबंधितता है ।

जीवन व्यक्त, अव्यक्त व अनंतता का स्वीकार

तो, हमारा जीना याने व्यक्त से संबंध, अव्यक्त से सहयोग तथा जो अनंत है, उसका भान और इन तीनों का स्वीकार याने अध्यात्म की जीवनदृष्टि । जिसे हम 'जीवन का संपूर्ण स्वीकार' कहते हैं, उसमें व्यक्त, अव्यक्त व अनंत - ये समस्त आ ही गये और व्यक्त के साथ जीवन बिताना इसका मतलब इन्द्रियों का सम्मान होना चाहिए, जी ! अगर हम शरीर को निरोगी न रखें हों, तो ! शरीर की समस्त इन्द्रियों की जो शक्ति हैं, यदि वह निरामय न रखीं हों, तो ! इन्द्रियाँ चपल, तरल न हों, उनमें संवेदनशीलता न हों और वे बधिर-कुन्द हो चुकीं हों, तो ! उन्हें बहुत खिलाकर, अति अन्न देकर भोथर (बधिर-जड़) बना दिया हों, तो ! या फिर उन्हें खाना ही नहीं दिया और संवेदनशून्य किया तो भी; बहुत सोने दिया, निद्रित रख दिया, तो संवेदनशीलता गई, और बिलकुल सोने नहीं दिया, तो भी उनकी संवेदना गयी । इसलिए अतिरेक टालना चाहिए । निग्रह के, दमन के, पीड़न के और उपभोग के बीच कहीं न कहीं मध्य में आकर उस संयम के मध्यस्थ बिन्दु पर आरूढ़ होने की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज़रूरत होती है । जितना आवश्यक, उतना दिया गया तथा आवश्यकता से रत्तिमात्र भी अधिक नहीं दिया गया, तो शरीर की समस्त इन्द्रियाँ, दशेन्द्रियाँ गुलाब के फूल के समान कितनी प्रफुल्लित रहतीं हैं ! वे कार्य करते समय उस कार्य की गति से पोषण ले लेतीं हैं, wear and tear होता रहता है । उसका भरण करने का उपाय करती रहती हैं । तो, व्यक्त संसार में जो रस है, उसके सेवनार्थ आहार-विहार की ओर ध्यान देकर शरीर को स्वस्थ रखना पड़ता है । आधि-व्याधि आते रहते हैं, कुछ आनुवंशिक भी होते हैं, अगर उन्होंने शरीर में प्रवेश किया हो, तो उसको भी सहन करना पड़ता है । उसकी कुछ व्यवस्था करनी पड़ती है । इस व्यवस्था में इन समस्त बातों का अंतर्भाव रहता है, जी !

तत्पश्चात् इस शरीर की जो सूक्ष्म इन्द्रिय कही जाती है - 'बुद्धि' नाम की, उसे शब्दों की सहायता से निरीक्षण, परीक्षण, चिंतन, मनन - इन सबकी सहायता से व्यायाम देना पड़ता है । That's an intellectual cerebral exercise. जैसे शरीर को व्यायाम देना पड़ता है, उसी प्रकार बुद्धि को भी व्यायाम देना आवश्यक है । बुद्धि सतेज रहे, तीक्ष्ण रहे, अतः चिंतन, मनन, निरीक्षण ! The foundation of enquiry - यह यदि अध्यात्म का अधिष्ठान न रहे, विचार करना, बुद्धि द्वारा कुछ खोजना, मन द्वारा कुछ प्रयोग करना और उसके लिए बुद्धि की शक्ति को अध्ययन, मनन, चिंतन, चर्चा - इन समस्त प्रकारों से व्यायाम देकर शुद्ध करना पड़ता है तथा मन की धारणाशक्ति, धृति की शक्ति को भी व्यायाम देना पड़ता है, भाई ! धृति का अर्थ धारणाशक्ति । यह मन की शक्ति का बहुत बड़ा सबूत है ।

मन में सहनशक्ति रहती है । इस संसार का निर्माण हमारी इच्छानुसार हुआ है, इसकी सभी विविधता, विचित्रता, विलक्षणता हमें मधुर लगेंगी, रोचक लगेंगी - ऐसा नहीं है । फिर वह विविधता विषयों की हो, व्यक्तियों की हो या परिस्थिति की हो । (किसी के) जन्म पर हमें खुशी की हँसी आती है और मृत्यु पर हमें रोना आता है । एक बात हमें मीठी लगती है, तो दूसरी कड़वी । एक में योग है, तो दूसरे में वियोग । मिर्ची जैसे तीखी लगती है, गन्ने का रस मीठा व आँवला खट्टा या कषाय लगता है, उसी प्रकार व्यक्तियों के स्वभाव भी मिर्च, गन्ना, आँवले जैसे अनेक प्रकार के रहेंगे ही; शीतोष्ण भी है । यह सब सहना पड़ता है । और इसका कुछ भी हिसाब नहीं होता । कोई अपमान करेंगे, कोई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्मान - तो, इन सबको धारण करने की क्षमता होनी चाहिए। इस धारणाशक्ति का विकास करें - ये सब बाल्यकाल से ही, इसकी शिक्षा लेकर करना होता है। यदि हमारे जीवन में यह सब न हुआ हो, तो भी हम हमारी संतानों के जीवन में तो इसे ढाल सकते हैं। इसीलिए यह उपोद्घात मैं करती हूँ।

मेरी यह जो अध्यात्मदृष्टि है, वह जीवन की समग्रता को आश्लेष में लेनेवाली है। यह जो सर्वव्यापिणी, सर्वरूपिणी प्रज्ञा शक्ति है - जो सर्वाकार, समस्त स्थलों में सर्वदा है, इसके अस्तित्व में होना और हमें जो शरीर, बुद्धि आदि प्राप्त हुए हैं, उनकी सहायता से बाह्य जो अनंत रंग, रूप, नाम, आकार-प्रकार - धारी विश्व है, उसके साथ ही जीना - यही वह दृष्टि है। वहाँ 'श्रद्धा' और यहाँ 'पुरुषार्थ'। 'अनंत के प्रति श्रद्धा' और 'अनेकता में पुरुषार्थ' इन दोनों को साध के, प्राप्त कर के जीना है।

यदि हमें अनेकता का स्वीकार करने आया याने अनेकता में 'यह चाहिए' और 'वह नहीं चाहिए' ऐसी गाँठ अगर हमने बाँधी नहीं और शरीर को क्या अनुकूल और क्या प्रतिकूल है यह देखकर, विवेक रखते हुए आहार-विहार की अगर योग्य व्यवस्था कर ली और मानसिक व्यवहारों में भी किन्हीं ग्रंथियों का उद्‌भव होने नहीं दिया तथा अनेकता के साथ – प्रियता और अप्रियता की, अनुकूलता और प्रतिकूलता की, राग और द्वेष की ग्रंथियाँ बाँधे बिना और आसक्त या विरक्त हुए बिना यदि हम जी सकें, तो बंधन आयेगा कहाँ ? और फिर किसलिए चाहिए मुक्ति ? - यह सीखना है।

मित्रों ! अध्यात्म प्राप्त करने का नहीं, यह तो शिक्षा लेने का क्षेत्र है। शुभसंस्कार सिञ्चने शिक्षणम्। अपने दैनंदिन जीवन में शुभ संस्कारों का सिंचन करने से अशुभों का निराकरण होता रहता है - अशुभों का निराकरण करना नहीं है (वह तो होनेवाला है)। आओ ! हम शुभ का चिंतन करें, अशुभ अपनेआप झड़ जाएगा - जैसे शिशिर ऋतु में पतझड़ के कारण वृक्ष के पत्ते झड़ जाते हैं !

जैसे आज हमने अध्यात्म का अर्थ जान लिया, वैसे कल जब हम मिलेंगे तब 'मौन' शब्द के अर्थ में क्या-क्या अभिप्रेत है, यह इन पाँच दिनों में देखेंगे। वाणी से क्या घटित होता है, वाणी द्वारा घटित होनेवाला हमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहाँ-कहाँ, कैसे-कैसे बाँध रखता है, जिसे 'शब्दबंध' कहते हैं, जैसे 'कर्मबंध' कहा जाता है, उसी प्रकार इस शब्दब्रह्म की माया में या उसके जाल में अटके बिना, हमारे लिए इस वाणी के व्यवहार से मुक्त रहना संभव है क्या ? और यह जो 'चित्त की शब्दमुक्ति' हैं - सिर्फ़ मुँह से न बोलना यह तो बाह्यांग हैं, वह कोई मौन का अंतरंग नहीं, बहिरंग है, वह भी आवश्यक तो है ! फल के ऊपर जो छिलका होता है, वह फल के गर्भ का संरक्षण करता है, उस प्रकार वाणी से न बोलना यह हमारी रक्षा करता है; परंतु 'मौन का सत्त्व या अंतरंग' केवल 'शब्दमुक्ति' नहीं हो सकता। वह 'मौन का सत्त्व या शुद्ध स्वरूप' हमें 'विचारमुक्ति' तक कैसे ले जाता है, विचार करनेवाली जो बुद्धि है, उसे वह 'बुद्धिमुक्ति' तक कैसे ले जाता है - इस विषय को हम देखनेवाले हैं। अध्यात्म की ओर दृष्टिक्षेप करने का यह एक बिलकुल अलग और अनोखा दृष्टिकोण है। A non - conventional approach to spirituality है। इसमें देव-देवताओं की, अतीन्द्रिय शक्ति की - अनुभूतियाँ की ऐसी कोई विशेष चर्चा होगी नहीं। यह एक विज्ञान है। हमारी यह सभा धर्मसभा नहीं है, सत्सङ्ग-सभा है। आशा करती हूँ कि ये जो वैज्ञानिक बातें आपके साथ मैं करनेवाली हूँ और आप सुननेवाले हैं, उसके कारण आप थकेंगे नहीं। यह नया विषय है। इसके पहले सुना नहीं गया, पढ़ा नहीं गया, अतः उसके कारण आप घबरायें नहीं, संकोचित न हों और शांति से श्रवण करें - ऐसी प्रार्थना करते हुए इस प्रवचन को यहीं विराम देती हूँ।

"आध्यात्मिक जीवन जीना, यह आपको क्या देता है ? भाई, वह भीतर के आनन्द को प्रकट करता है, आनन्द-रूप बना देता है आपको। जो आनन्द में रहता है उसकी दशेन्द्रियों में सौन्दर्य, लावण्य फूट पड़ता है, भले ही पहले वह कदरूप आदमी हो !... जो भीतर की आत्मसत्ता के भाव में, उद्‌बोधित आनन्द में रत रहनेवाला व्यक्ति है, उसके जीवन से लावण्य छलकता है – शरीर से, वाणी से, उसके हलन-चलन में, व्यवहार में, सब में लावण्य छलकता है, इसी लावण्य पर तो लोग मुग्ध होते हैं ! यह आत्मा का ऐश्वर्य है। इस आनन्द में ही लावण्य है। शरीर में सौन्दर्य भले हो, लावण्य नहीं होता।"

["सहज समाधि भली"- मेंसे]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन द्वितीय

मन, मर्यादा और मौन

मित्रों, संवाद का प्रारंभ करने से पूर्व मैं आपका ध्यान इस बात की ओर खींचना चाहती हूँ कि मेरी मातृभाषा मराठी रहने पर भी मैं गत ३७ वर्षों से महाराष्ट्र के बाहर रहती हूँ। अतः मेरा मराठी भाषा से संबंध ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम तथा महाराष्ट्र के संत-साहित्य से है। आधुनिक मराठी से मेरा परिचय नहीं। यहाँ पर 'अध्यात्म' विषय रहने से जिन शब्दों का यहाँ उपयोग किया जायेगा, वे वैज्ञानिक पद्धति से कहे जाएँगे। मुझे यह ज्ञान नहीं है कि उनका आज की परंपरा में रूढि के अनुसार क्या अर्थ है तथा साम्प्रदायिक पद्धति से उसका क्या अर्थ होता है। मेरा यह निवेदन आप स्मरण में रखेंगे, तो में समझती हूँ कि आपका-मेरा संवाद निर्विघ्नता से संपन्न होता रहेगा। जिनकी मातृभाषा मराठी नहीं है, उनके लिए आसान हो, इसलिये जहाँ आवश्यक लगे वहाँ पर मैंने अंग्रेजी भाषा का अवलंबन करते हुए कल कुछ मुद्दे समझाने का प्रयास किया था और अब आगे भी उसी प्रकार से होता रहेगा।

कल हमने 'अध्यात्म' शब्द का अभिप्रेत अर्थ क्या है, यह जाना। आज हम - 'मौन' का क्या अर्थ है, उसका स्वरूप क्या है, मन यह वैयक्तिक रहता है या केवल सामूहिक होता है, मन की मर्यादाएँ क्या हैं - यह सब देखेंगे।

धर्म और अध्यात्म

कल यहाँ ऐसा सुनाया गया था कि यह 'धर्मसभा' नहीं है, 'अध्यात्म सभा' है। इस देश में उपलब्ध धर्मशास्त्र तथा अनेक उपशास्त्र - यह सब हमें 'शासन' सिखाते हैं। आरोग्य-शास्त्र, आयुर्वेद-शास्त्र, निसर्गोपचार-शास्त्र, हठयोग का बहुत-सा भाग - इन सबका विषय यह है कि शरीर की मर्यादाएँ ध्यान में लेकर, पदार्थसृष्टि की मर्यादाएँ समझकर किस पद्धति से हमारे शरीर को अनुशासित रखें। और वैसा ही मनोविज्ञानशास्त्र भी है। यह मनोविज्ञान का दूसरा भाग जो है, वह 'पातञ्जलयोग' में आता है। मन को शांत रखने के लिए क्या करना चाहिए ? मन चञ्चल हो, तो उसे स्थिर करने के लिए क्या करना चाहिए ? यह सब विषय मनोविज्ञान का है। मन यदि बीमार हो, तो उसकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चिकित्सा कैसे करें, उपचार कैसे किये जाएँ, अर्थात् मन की मर्यादाओं में रहकर, और इन मर्यादाओं में ही रहना है यह समझकर - फिर इस मनोविज्ञान का उपयोग किया जा सकता है। ऐसे ही समाज-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र व धर्म-शास्त्र के बारे में भी है । "धारणात् धर्म इत्याहुः । धर्मो धारयते प्रजाः ।" हमें धर्मशास्त्र व नीतिशास्त्र यह सिखाते हैं कि व्यक्तिगत और सामूहिक संवाद व संबंध कैसे निर्माण हों तथा इन सब मर्यादाओं में रहनेवाले हम संवादी किस प्रकार रहें।

अध्यात्म यह अमर्याद, असीम, अकाल व अनंत का बोध करानेवाला विज्ञान है, शासन करनेवाला शास्त्र नहीं । सत्य की ओर देखने की दृष्टि खुल जाय और जो पूर्ण सत्य है, उसे हम जी सकें, उसे हम जीवन में लाएँ, इसलिये वह है । अध्यात्म उनके लिए है कि जिन्हें, मर्यादा के पार जाना है, जिन्हें मर्यादा में या मर्यादा के कारागृह में क़ैदी अथवा बंदी होकर रहना नहीं है अथवा मर्यादाओं को मिलाजुला कर या उनकी व्यवस्था कर के जिन्हें संतोष नहीं, मर्यादा के परे जो अमर्याद है, सभी सीमाओं का उल्लंघन कर जो असीम का आयाम है, समस्त संस्कारों की सीमा लाँघकर जो संस्कारातीत है, उसे जो देखना चाहते हैं, उससे तद्रूप होना चाहते हैं और जिन्हें ऐसे तद्रूप होकर जीना है, उनके लिए अध्यात्म है ।

अत एव हमें जान लेना चाहिए कि वहाँ शासनों का, शासन की पद्धतियों का, शास्त्रों का संबंध आता नहीं । मन की शान्ति याने "मौन" नहीं। शान्ति यह सात्त्विक मन का एक गुण हो सकता है। चञ्चल और नटखट ऐसा मन हो, तो उसे युक्ति से अनेक लगाम डालकर स्थिर रख सकते हैं, वह भी मनोविज्ञान का विषय है। ध्यान का, अध्यात्म का उससे कोई संबंध नहीं।

इसलिए कल मैंने कहा था कि यह 'धर्म-सभा' नहीं है, यह 'अध्यात्म--सभा' है । यह अध्यात्म-विषयक सत्सङ्ग है । मन को विश्रांति देनेवाले, मनोरंजन करनेवाले, बुद्धि को परिमार्जित करनेवाले और तीक्ष्ण बनानेवाले शास्त्र न रहें, उन्हें स्थान व आधार देनेवाले आश्रम न रहें, ऐसा हमारा कहना नहीं है, किन्तु यहाँ उनका प्रयोजन नहीं - इतना हमने देख लिया। अब आगे चलते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन का अस्तित्व और स्वरूप

हम मन या बुद्धि को सूक्ष्म इन्द्रिय कहते हैं। हम शाब्दिक संवाद के लिए उसे सूक्ष्मतम इन्द्रिय कहेंगे, 'अंतःकरण' कहेंगे। करण का अर्थ है साधन - instrument। जैसे बाह्य कर्मेन्द्रियाँ हैं और ज्ञानेन्द्रियाँ भी हैं, वैसे ये (मन-बुद्धि) 'अंतःकरण' अर्थात् भीतर के 'सूक्ष्म करण' हैं। बाहर के करण जैसे वे स्थूल नहीं हैं, व्यक्त नहीं हैं, स्पर्श कर सकें ऐसे नहीं हैं। हमें ऐसा लगता है कि 'करण' कहा है, तो उनका कोई आकार होगा। आकार आँखों का, कानों का, हाथ-पाँव का रहता है, वैसा ही मन का शायद कोई आकार होगा। और जिसका कोई आकार होता है, उसे किसी स्थान में रहता पड़ता है, या रखना पड़ता है। इस साढ़े तीन हाथ के शरीर में कहीं तो वह मन होगा! जैसे कंधे पर सर रहता है वैसे, या हृदय या फेफड़े कहते हैं, उन अवयवों के जैसे निश्चित स्थान हैं, वैसे मन का भी कोई स्थान होगा, और इसी कारण उस मन को कुछ आकार व व्यक्तित्व है - identity है - ऐसी हम कल्पना करते हैं। उस मन को मित्र बनाना है या शत्रु बनाना है, मन बंधन है या बैरी है - ये जो समस्त कल्पनाएँ रहतीं हैं या शब्दों का उपयोग किया जाता है, उसके मूल में, उस सब के पीछे एक धारणा रहती है कि यह जो 'मन' नाम का करण है, उसे कोई substance है, solidity है। 'वह किसी स्थान में रहता है' - यह जो धारणा या मान्यता है, उस धारणा पर, उस मान्यता पर ही मेरा हमला है।

मन किसे कहें ?

यहाँ परंपरागत अध्यात्मविषय की धारणा व मान्यता से हटकर कुछ अलग सुनने को मिलेगा। आप डरिये नहीं। मेरा आग्रह नहीं कि आप वह ग्राह्य मानें, किन्तु उसे सुन ज़रूर लीजिये। उसमें तथ्य लगता है या नहीं इसकी जाँच कीजिये। मुझे ऐसा लगता है कि मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार - इन चार शब्दों से जो निर्दिष्ट होता है, वह एक 'संस्कार-राशि' है - संस्कारों का एक स्पन्दनात्मक पुंज! स्पन्दनों के उपादान से बना हुआ एक ऐसा संस्कार-राशि, जिसने देहाकार लिया हो। इस देह के अवयवों में, अवयवों के पञ्च-महाभूतों में - जैसे वस्त्रों में, कपड़ों में ताना-बाना दिख पड़ता है - कपास, रेशम व ऊन के वस्त्रों में - उसी प्रकार मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार - में संस्कारों का ताना-बाना रहता है! यह तो मैं केवल एक उपमा दे रही हूँ! उपमा एवं दृष्टान्त एकदेशीय होते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं, उनकी ज़्यादा खींचातानी न करें, वे सर्व अंगों से पूर्णतः लागू होते हैं, ऐसी बात नहीं । इस विषय को कहने के लिए ख़ुद शब्द ही लूला पड़ता है । किन्तु इसका उपयोग तो हमें करना है, उसीकी सहायता लेनी है ।

तो 'मन' नाम का कहीं भी एक विशिष्ट इन्द्रिय नहीं कि जिसे कुछ आधार होगा या कोई रंग-रूप होगा और जिसे कहीं एक विशिष्ट स्थान होगा । वैसे तो हम कानों में होनेवाली श्रवणशक्ति और आँखों में होनेवाली दृष्टि-इन्हें भी कहाँ दिखा सकते हैं ? कहते हैं - 'चक्षु' और 'चक्षु देखते हैं', किन्तु आँखों में जो **'दृष्टि'** है (देखने की क्षमता है) जिसे **'sight'** कहते हैं - वह आँखों द्वारा कार्य करती रही, तो भी वह शक्ति सूक्ष्म ही है और (बाह्यतः) कान रहें, कान का संपूर्ण इन्द्रिय (गोलक) रहे, तो भी सुनाई देगा ही ऐसा नहीं है । उसमें श्रवण की संवेदनशीलता यदि न रही, तो सुनना नहीं हो पाता ।

तब, कहना यह है कि शक्तियाँ सूक्ष्म होतीं हैं, ऊर्जाएँ सूक्ष्म होतीं हैं । तो, हम जिसे 'मन' कहते हैं, मन-बुद्धि, चित्त व अहंकार के नामों से अपने शरीर में रात-दिन भाग-दौड़ करनेवाली, वह जो ऊर्जा है - उसका उपादान, substance of what you call 'mind' is nothing but vibrations, the conditioning that has taken the form of vibrations - अतः उसका स्पंदनात्मक अस्तित्व पूरे शरीर में है । बिलकुल ब्रह्मरंध्र से लेकर पैरों के नाखूनों तक ! वह संस्कारों से बनी हुई स्पंदनों की गति है । उसे 'मन' कहना है । उस मन को locate कर (निश्चित स्थान पर दिखा) नहीं पायेंगे कि किसी विशिष्ट स्थान में ही वह है । समस्त शरीर में मन ही मन है । वह भीतर का सूक्ष्म शरीर ही है, ऐसा अगर कहना हो, तो कहो और यदि कोशों की भाषा का उपयोग करना हो, तो 'मनोमय कोश' कहने में कोई आपत्ति नहीं है । हमारे यहाँ हज़ारों वर्षों से इस अध्यात्म की खोज के व सत्यशोधन के इतने सारे प्रयोग हुए हैं और प्रयोगपूत, तपःपूत इतने ग्रंथ लिखे गये हैं कि उनके अनेक शब्द हम कानों से सुनते हैं, पुस्तकें उपलब्ध रहने से पढ़ी हुई भी होती हैं, परंतु हम गहराई में उतरते नहीं; केवल शब्द मन में रह जाते हैं, उनका हम उचित प्रकार से परिशीलन भी नहीं करते ।

तो, प्रथम मुद्दा- मन का अस्तित्व स्पंदनात्मक है और यह स्पन्दन संस्कारों द्वारा निर्मित हैं । अस्थि, मज्जा, रक्त, अस्थियों के भीतर की रिक्त जगह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(पोल) (शून्यावकाश) - The emptiness between the marrows of the bones, and the emptiness within the blood cells, brain cells, white cells and red cells and so on and so on .... इन्हें ये संस्कार कहाँ से प्राप्त हुए ? बाल्यकाल से इस जन्म में मिले, वे; माता के गर्भ में नौ मास रहे, 'तब जो मिले', वे; मातापिता के संयुक्त संस्कार जो रक्त-माँस में उतरे, वे; फिर ज्ञाति के, संप्रदाय के, धर्म के, देश के ! ये समस्त सामूहिक संस्कार हैं, collective conditionings, well-organised and systematised हज़ारों वर्षों से धर्म, संप्रदाय, वंश एवं देशों ने ये संस्कार तथा उनकी पद्धतियाँ निर्माण कर रखीं, वे कैसे संक्रांत करें, उसकी योजनाएँ बनायीं और आयोजन द्वारा वे हममें भरे गये। इन संघटित संस्कार-पद्धतियों के भिन्न-भिन्न नाम हैं। हिन्दुओं की संस्कार पद्धति, फिर हिन्दुओं में भी कितनी सारी जातियाँ और उनकी संस्कार पद्धतियाँ हैं ! मुसलमान, सिख, ख्रिश्चियन, धर्म-विमुख एवं धर्म-अभिमुखों की - ऐसी कई पद्धतियाँ हैं।

किन्तु मूल मुद्दा ऐसा है कि ये जो संस्कार किये जाते हैं उन्हें समाज, विद्वज्जन, शास्त्र एवं शासकों की मान्यता मिली हुई रहती हैं, तब प्रायः सर्वमान्य ऐसी यह संस्कारपद्धति संघटित ढंग से हममें संस्कारों को संक्रांत करती है। विचारपद्धति, आचारपद्धति, मूल्यांकन तथा परंपराओं के द्वारा पिढ़ी-दर-पिढ़ी ये संस्कार प्रविष्ट होते रहते हैं; उनका इस साढ़े तीन हाथ लँबे शरीर में अलग-अलग ढाँचा निर्माण होता है। जैसे शरीर का ढाँचा रहता है, वैसे शरीर के अंदर जो संस्कार घुसे हैं, उनकी भी एक रचना बनती है और उनकी अभिव्यक्ति तथा संरचना की भी एक शैली होती है। तब designs of expressions अलग-अलग बनते हैं। किन्तु उस रचना से जो अभिव्यक्ति होती है, वह तो होता है सामूहिक संस्कारों का परिणाम ! यदि हम सचमुच यह सहयात्रा कर रहे हैं, तो इन बातों का निष्कर्ष क्या है, यह हमारी समझ में आयेगा; वह यह है कि 'व्यक्तिगत मन' नाम की कोई वस्तु है ही नहीं।

व्यक्तिगत मन अस्तित्व में है ही नहीं

There is nothing, no entity which could be called an 'individual mind'. Mind is collective. It's a product of collective, organized, standardized effort of conditioning the

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

body and the brain and various energies flowing in the body. इसके अतिरिक्त जिसे 'मन' कहा जाता है, ऐसा व्यक्तिगत कुछ नहीं। यहाँ आघात पहुँचता है - मंदिरों, मठों में ग्रंथ पढ़े हुए, सुने हुए रहते हैं और - (वास्तव में) व्यक्तिगत मन ही नहीं ? याने फिर व्यक्तिगत जीव या अहंकार भी नहीं ! तो फिर व्यक्तिगत मुक्ति भी नहीं ! जिस समय मान्यताओं को आघात पहुँचता है, तब मनुष्य चौंकता है और आगे सुनने की बुद्धि की तैयारी हो, तो भी भीतर से सूक्ष्म प्रतिकार या सहयात्रा की अनिच्छा जागृत होने लगती है; एक resistance (प्रतिकार भाव) बनने लगता है। Resistence-free listening, without accepting (स्वीकार किये बिना भी प्रतिकारमुक्त) - इसमें बहुत बड़ा बल रहता है। 'कहना' यदि कला हों, तो 'सुनना' या 'श्रवण करना' - यह उससे भी बहुत बड़ी व अधिक मूल्यवान कला है और वह शक्ति भी है।

तो, मुझे यह कहना है कि हमारे शरीर को आकार है; इसलिए व्यक्तित्व है; रंग-रूप है, ऊँचाई-मोटापा है - वज़न है; अतः वहाँ हम 'व्यक्तित्व' या 'identity', 'personality' - इन शब्दों का उपयोग कर सकते हैं, किन्तु इस शरीर के अंदर जो घटनाएँ होतीं रहतीं हैं, वे सब सामूहिक संस्कारों के परिणाम हैं और सामूहिक या संघटित संस्कारों की अभिव्यक्ति के अलावा उन घटनाओं का कुछ महत्त्व नहीं।

बंधन और मुक्ति की भाषा - देखो, कैसे उड़ जाती है ! फिर उस मन को जीतना है, उसको दबाना है, उसको पराजित करना है - इसकी कोई आवश्यकता ही नहीं, तथा जिसे 'आध्यात्मिक जिज्ञासा' कहा जाता है, उसकी भी कोई आवश्यकता नहीं, देखो न, यह भी कैसे ध्यान में आता है ! कारखाने में बनीं हुईं जो वस्तुएँ होतीं हैं, उनका एक brand होता है। उसी प्रकार मन के भी brands हैं। Hindu mind, Muslim mind, Christian mind, Communist mind - फिर उनकी शाखाएँ, उपशाखाएँ ! कपड़ों के नहीं होते हैं क्या ? इचलकरंजी (महाराष्ट्र का एक गाँव) के designs अलग, नागपुरी वस्त्रों के अलग, दक्षिण के कपड़ों के अलग ! अजी ! सूत वही, रंग बूनकरी भी वैसे ही, केवल designs अलग-अलग ! उन पर का कौशल्य भिन्न-भिन्न !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तो 'व्यक्तिगत मन' यह भ्रम है । The collective human mind, if you would like to call it a 'Global human mind', one does not have any objection.

फिर अब प्रश्न कौन-सा आया ? 'मेरा मन', 'मेरी वासनाएँ', 'मेरे विकार', 'मेरे विचार' - यह जो स्वरूप उसे दिया गया था या 'मैं' भी कोई हूँ तथा उस 'मैं' के सभी विचार-विकार हैं; उसकी समस्त शक्तियाँ या कमियाँ हैं, - यह जो सारा माना गया था, वह ताश का बंगला जैसे ऊध्वस्त होकर गिर जाता है न, वैसे ऊध्वस्त हो गया; फिर आत्मजिज्ञासु का स्वरूप क्या रहता है ? यही कि यह जो सामूहिक मन है, इसका एक नमूना, sample मेरे शरीर में भी है । इसको 'मेरा' कहना पड़ता है । इस शरीर को दिया हुआ जो नाम है, उसके संबध में 'मैं' - यह शब्द का उपयोग करना हो, तो उसे औचित्य भी है; शरीर की जो आवश्यकताएँ हैं, उन्हें 'मेरी' कहा, तो भी उचित है । शरीर में जो गुण-दोष हैं, उसके संवर्धनार्थ व उपचारार्थ यदि 'मैं' और 'मेरा' ऐसे शब्दों का प्रयोग करें, तो उसे अर्थ है, औचित्य है; किन्तु इस भौतिक सृष्टि के परे, पदार्थों के रंग, रूप व नामों के (परे या) भीतर कोई भी तो 'मैं' नाम की identity है, 'The Ego', 'The Self', 'The Me' जिस पर समूचा मनोविज्ञान निर्भर है, उस 'मैं' को व्यक्तिगत रूप में अस्तित्व नहीं, यह कटु सत्य तथा विदारक तथ्य यथार्थतः आपके सम्मुखं प्रस्तुत करने का साहस मैं कर रही हूँ ।

ये जो संघटित और सामुदायिक संस्कार हैं, वे क्या हैं ? उनका स्वरूप क्या है ? यह देखना अभी बाकी है, केवल 'मेरे' कहे नहीं, पर समूची मानव जाति के - हम सबके समझकर अब उनकी ओर देखना है । जब ऐसे देखते हैं, तब एक तटस्थता से उनकी ओर देखा जा सकता है । An objective perception and understanding of the faculty of mind. मन का याने संस्कार-राशियों का और इन संस्कारों की स्पन्दनात्मक गतियों का क्या स्वरूप है, उनकी कार्य करने की कैसी पद्धति है, यह निहारने की एक वस्तुनिष्ठ दृष्टि आ जाती है; फिर ऐसा दिखाई देता है कि ये संस्कार करने की मानवजाति को आवश्यकता इसलिये निर्माण हुई, क्योंकि उनमें जो संवेदनशीलता है वह, उनमें अन्य प्राणियों, पक्षियों व वनस्पतियों से कुछ विशेष थी और है । इस संवेदनशीलता में - स्वसंवेदनशीलता होने के कारण, ('स्वयंवेद्यता - स्वसंवेद्यता'-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञानदेवजी के शब्द का प्रयोग करना हों तो -), यह एक शक्ति होने के कारण केवल क्रिया या प्रतिक्रिया - पदार्थ या व्यक्तियों से - करने में इति कर्तव्यता रही नहीं; किन्तु इसे नाम या संज्ञा देना, (नाद से जैसा भाषा का जन्म वैसे भाषा से संज्ञा और संकेतों का जन्म-फिर उसे नाम या संज्ञा देना), identification, naming and identifying the objects, यह प्रारंभ हुआ। शेष सृष्टि में यह naming and identification की प्रक्रिया नहीं है। उपलब्धि होगी, पर प्रक्रिया नहीं - यह प्रारंभ हुआ; तथा संवेद्यता के कारण विषय और इन्द्रियों के संबंधों से, संपर्क से, संपर्क के उस पार से, सहवास से, सहनिवास मेंसे भी जो सुख या दुःख होने लगे, संवेदनाएँ होने लगीं, उनको कुछ संज्ञा देना, पदार्थों को, बाहर उठनेवाली संवेदनाओं को जैसे नाम देना, वैसे ही भीतर उठनेवाली संवेदनाओं को भी नाम देना - याने identification of the inner process यह शुरू हुआ। पूरी सभ्यता और संस्कृति का यदि कोई आशय होगा, तो वह है identifying, comparing, evaluating - नामकरण, तुलना, मूल्यांकन तथा उसमेंसे कुछ निष्कर्ष ! यानी फिर क्या हुआ ? यह जो perceptual world, हमें दिखता था, जिसका हम अवलोकन करते थे, उस पर हम मानो किसी और एक सृष्टि की निर्मिति कर रहे हैं। We are grafting a conceptual world on the perceptual objective world.

कल्पनासृष्टि

इन वस्तुओं, पदार्थों से निर्मित जो सृष्टि है उस पर मानव ने ब्रह्मदेव जैसी एक नई सृष्टि निर्माण की। इस नामकरण से या संज्ञा देने से, मूल्यांकन से, तुलना से, निष्कर्ष से एक सुंदर सृष्टि बन गयी। इसे सघनता है केवल स्पंदनों की। इस नामकरण व मूल्यांकन में आप नादशक्ति का उपयोग करते हैं और नादशक्ति या नाद की ऊर्जा में प्रकाश भी है। तो जहाँ नाद का उपयोग किया गया वहाँ, ऊर्जाएँ तो आ गईं; अतः आपने वस्तुसृष्टि पर यह जो कल्पना सृष्टि - संज्ञा, संकेत व नामकरण की सहायता से - बनायी, उसका अस्तित्व कैसा है ? उसे आप 'psychological fact - मानसिक तथ्य' - ऐसा कहना है, तो कह सकते हैं; किन्तु उसे पदार्थ-सृष्टि जैसी सघनता नहीं। पदार्थ क्या होता है ? solidified energy है ! तो (उस मानसिक तथ्यरूप सृष्टि में) सघनता नहीं। वे स्पंदन हैं भीतरी, उसे गति है पर सघनता नहीं। मैं इसके आगे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाना नहीं चाहती हूँ, क्योंकि body is nothing but solidified thought vibrations। मैं आपको इन चार-पाँच दिनों में इस विषय तक ले जाना नहीं चाहती, यह विषय बहुत ही abstract हो सकता है। वह पारमार्थिक - जो अंतिम मुक़ाम है - उस विषय को आज के प्रवचन में मैं नहीं ले रही हूँ।

आज हमें जो देखना है, वह यह है कि मन सामुदायिक है और उसका स्वरूप क्या है ? और इस स्वसंवेद्यता की शक्ति के संस्कार क्यों करने पड़ें ? क्या कारण रहा, कौन-से प्रेरक-बल रहे, इस संस्करण-चेष्टा के पीछे ?

मर्यादा का निश्चित अर्थ क्या है?

जो देखा जाता है, इसका विश्लेषण करनेवाली, नाम देनेवाली, हमारी बुद्धि होने के कारण एक सहज जीने की प्रक्रिया बन गई मानव की और उसने एक मनःसृष्टि बनाई; अतः जिसे हम 'संसार' कहते हैं, वह एक conceptual world है, जी ! पदार्थसृष्टि पर हमने वह graft किया। लदा हुआ या imposed (थोपा हुआ) नहीं कहती हूँ मैं। किन्तु जैसे हम वृक्ष को क़लम बाँधते हैं वैसे ही लगभग यह प्रक्रिया है; अर्थात् उस वृक्ष पर विकसित होनेवाला जो पुष्प या आनेवाला फल है उसका स्वाद, रंग व रूप कुछ भिन्न रहता है। मूल वृक्ष, उस पर बंधी हुई क़लम, इनके संयोग मेंसे व उस संयुक्त रसग्रहण तथा रसधारणा से वह एक नया पुष्प या फल निर्माण होता है न ! वैसे ही ये संस्कार स्वसंवेद्यता से बने और एक मर्यादा आयी उस स्वसंवेद्यता को। Naming and relating creates a limitation ! यहाँ मर्यादा का अर्थ बंधन नहीं है, जी ! 'मर्यादा' शब्द का प्रयोग तथ्यों की यथार्थता बताने के लिए कर रही हूँ। Every limitation is not a bondage. जिस समय इस 'मर्यादा' पर आप अमर्याद होने का आरोप करेंगे, तब वह बंधन बन सकता है।

'मर्यादा'ओं का भी शृंगार रहता है, जी ! मानवीय संस्कृति और सभ्यता ने बनायी हुई 'मर्यादा' तो एक तरह का प्रसाधन है ! यह शब्द संस्कार के लिए है। Every conditioning is a limitation. संस्कार 'मर्यादा' बनाता है और इन 'मर्यादा'ओं में हमें जीना है; क्योंकि हमने समाज निर्माण किया है। समाज में जीना याने एक-दूसरे के साथ जीना, साथ जीना याने शब्दों का आदान-प्रदान, विचारों का लेन-देन, कुछ लेना और कुछ देना। इसमें ही समस्त मानवीय संबंधों का जन्म है। इसके लिए शब्द चाहिए, संकेत चाहिए,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसके लिए मूल्य चाहिए, 'मर्यादायें' चाहिए। मेरी दृष्टि में 'मर्यादा' एक तरह का ऐश्वर्य है, यदि उन 'मर्यादा'ओं का परिचय कर लिया हो, तो ! नहीं तो किसी कवि ने कहा, शब्द-प्रयोग किया - 'करकमल' और आप देखेंगे तो 'कमल' दिखेगा ही नहीं, हाथ ही दिखेगा। कहा - 'मुखचन्द्र' किन्तु चन्द्र तो दिखता नहीं, मुख ही दिखता है। 'मुखचन्द्र' कहने में जो सूचित करना है, जो nuances हैं - अर्थों की छटाएँ हैं, वे यदि हम नहीं देखें तो ? सप्तस्वरों से अनेक राग व रागिनियों का उद्भव हुआ है तथा प्रत्येक राग-रागिनी का अपना व्यक्तित्व है, उनके द्वारा जागरण और भाव-संचरण करने की शक्तियाँ भिन्न- भिन्न हैं, अर्थात् 'मर्यादा'ओं का ऐश्वर्य है - किन्तु "किसलिए सुनें ये राग और रागिनियाँ ? सा-रे-ग-म-प-ध-नि-सा ही तो हैं न ? अन्य तो कुछ नहीं न उसमें ?" - ऐसा यदि कोई कहे तो फिर तो 'अरसिकेषु कवित्वनिवेदनम्' होगा !

तो मानव समाज-निर्माण कर के रहने लगा; साथ रहने में, देन-लेन में, बाँट लेने में - sharing में, सहयोग करने में, संघर्ष करने में, सख्य - relationship में, companionship में, संबंधों में मानव को एक प्रकार की संतृप्ति मिली, मिलती गयी इसीलिए ये संस्कार किये गये और इसीलिए हमारे शरीर में संस्कारराशियाँ हैं। अनेक प्रकार के संस्कार हैं, अनेक प्रकार की उनकी गतियाँ हैं, जो गतियाँ आपस में आघात-प्रतिघात करतीं रहतीं हैं। देश-देशांतरों में उनके अनेक नमूने हैं। आफ्रिका में गये तो एक प्रकार के, दक्षिण अमेरिका में दूसरी तरह के, उत्तर अमेरिका में और अलग प्रकार का, हमारे यहाँ, तमिलनाड़ में जाओ तो अलग – खानपान अलग, वेशभूषा अलग, रहन-सहन, शिष्टाचार इत्यादि-इत्यादि।

इसीलिए कल कहा गया था कि विविधता, विचित्रता, विलक्षणता - यह समस्त जीवन का ऐश्वर्य है और हमें उसीमें जीना है। कहीं भी अटके बिना, भटके बिना, कहीं भी कुंठित हुए बिना इसमें जीना यह अध्यात्म सिखाता है। तो, सबमें 'लीलया संसार तरिजे रया' ऐसे रहना यह अध्यात्म सिखाता है, इसीलिए यह संस्कार संक्रमित करने की पद्धतियाँ आईं; शिक्षण भी और क्या है ? संस्कार-सिञ्चन ही तो है ! साहित्य, संगीत, कला, नाट्य और सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक-संरचना - structures - इन सबके द्वारा वे संस्कार होते हैं। तो, हमें अब विचार-विकारों के नाम से, पसंद-नापसंदों के नाम से,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन मूल्यों के नाम से जो कुछ हैं, जो कोई सामुदायिक और संघटित मर्यादाएँ हैं, उन्हें पहचानना है; जिन्हें आप काम-क्रोधादि षड्विकार कहते हैं, वे सब nothing but neuro-chemical patterns of behaviour, common to the human race हैं। पूरी मनुष्यजाति में दिख पड़नेवाले ऐसे कुछ cerebral patterns of behaviour - मस्तिष्क की कुछ काम करने की पद्धतियाँ हैं; नाडी-तंत्र की, रसायन-तंत्र की पद्धतियाँ हैं। कब इन शब्दों के कारण क्रोध आयेगा, किन शब्दों से कामविकार जागृत होगा, किस पदार्थ से इर्ष्या सजग होगी, द्वेष जगेगा - अलबत्ता, अलग-अलग देशों में इसके भिन्न-भिन्न प्रकार होंगे; किन्तु ये समस्त संस्कार नाडी-तंत्र व रसायन-तंत्र में भरे हुए हैं। कहीं कामी विकार 'आपका' या 'मेरा' ऐसा नहीं हैं।

ये जो मर्यादाएँ या संस्कार हैं, उन्हें अंतिम सत्य समझकर जीना है या वे मर्यादाएँ हैं, यह जानकर उनके कारागृह से बाहर निकलना है, इस बारे में हर-एक को अपना-अपना निर्णय करना है। यदि उन मर्यादाओं में ही एक व्यवस्था निर्माण कर, सुसंवाद द्वारा मानव को जीना है; रजोगुण व तमोगुण से निकलकर सत्त्वगुण में ही स्थिर होना है; सात्त्विक, सुंदर, सभ्य नागरिक बनकर जीना है; बुद्धिमान, ज्ञानी, विद्वान या सदाचारी, सेवाभावी समाजसेवक बन के जीवन बिताना है, तो आदमी वैसे भी जी सकता है, और उसमें कोई अनुचितता है, ऐसा भी नहीं।

तो, यह चाहिए या फिर इन मर्यादाओं के पार जाने की वासना हो, आकांक्षा हो और जो विस्तीर्ण, असीम, अमर्याद है, उसमें तद्रूप होकर, मर्यादीकरण से आई हुई जो सुरक्षा या संरक्षण है, उसे त्याग कर चिर-असुरक्षित, अनिश्चित - ऐसा जो विश्वव्यापी-वैश्विक है, वह प्राप्त करना है ? - इसकी आप परीक्षा करके देखिये। यह जो विश्वव्यापी है, उसमें निश्चय कैसा ? जो वैश्विक है, उसमें योजना कैसी ? जो सर्वव्याप्त है, वहाँ choice - (पसंद) कैसा ? समस्त में जो ओतप्रोत है, वहाँ 'तेरा' और 'मेरा' कैसा ? सर्वव्याप्ति में एक बार गये, तो वृत्ति से सर्वाकार ही होना पड़ता है।

यदि मानव को मर्यादाओं में रहना है, तो फिर नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, मनोविज्ञान आदि जो अनेक शास्त्र हैं, उनके आश्रय से जीना चाहिए। तो वह सामाजिक प्राणी के रूप में अत्यन्त सुख से जी सकेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किन्तु सुख व दुःख, नाम व रूप - इनके पार जाना है; शान्ति का अर्थ मन का गुण नहीं, किन्तु मौन ! उस 'मौन' को यदि देखना है, 'ध्यान' का निरीक्षण करना है, 'समाधि' नाम का आयाम खोजना है, यह जो वैश्विक चेतना है उसमें यदि जीना है, तो फिर यह जो संघटित, सामुदायिक मन है - जिसका नमूना आपके और मेरे शरीर में कार्य करता है - उससे जो संबंध है, उसके स्वरूप में परिवर्तन लाने का प्रयत्न करना चाहिए, मतलब - यह जो शब्दों द्वारा किया हुआ वर्णन सुना है कि मन व्यक्तिगत नहीं, सामुदायिक है, संस्काररूप है, स्पन्दनात्मक है - यह सब सत्य है या असत्य, इसका परीक्षण करना पड़ेगा। (अरे, जाँच किये बिना चार पैसों की वस्तु भी आप बाज़ार मेंसे लेते नहीं ! सब्जी फल बताने पर तो हाथ में उलटा-पलटा कर के उपर-नीचे निहार कर देखते हो; तब) ऐसे गंभीर विषय से संबंधित जो शब्द सुने जाते हैं, उनमें तथ्य है या नहीं यह स्वयं आत्म-निरीक्षण कर के देख लें !

"देखना" - तीन पड़ाव

अगर यह पूछा जाय कि हम यह कैसे देख सकेंगे, भाई ? तो उत्तर है 'मन की गति की ओर देखने का अभ्यास कर के'। अभी हम मन की ओर मुड़े नहीं। सुबह यहाँ बैठते ही इसलिए हैं कि मन की गति का निरीक्षण कर सकें; क्योंकि निरीक्षण करना हम जानते ही नहीं। 'पाहातां पाहाणें नुरोनिया ठेलें'। 'देखतां देखतां देखणें नुरालें।' देखने के तीन टप्पे। पहला पड़ाव है देखने का अभ्यास करना आए, विशुद्ध द्रष्टृत्व साध्य हो, इसलिए दिन के २४ घंटों मेंसे समय निकालें तथा एकान्त के लिए कोई कमरा, कोना, उद्यान, कोई खेत या वृक्ष के नीचे बैठें; उसके लिए समय व स्थान निश्चित करें। शरीरशुद्धि साध्य कर के बिलकुल शान्ति से आसनस्थ होइये, कुर्सी पर बिराजिये, जिनके शरीर की जैसी अवस्था हो, उस प्रकार आधार लेकर बैठिये। आधार दिवार का लें, तख़्ते का लें - ये बातें गौण हैं। अभ्यास के लिए समय निकालना और बैठना यह मुख्य है। क्योंकि यह क्रिया नहीं, प्रक्रिया नहीं, इसमें कोई हलचल के बिना शरीर की स्थिरता साधना है। अतः समय निकालें और शान्त स्थान में बैठें। शान्ति का अर्थ यहाँ 'मौन' नहीं।

शान्ति गुणात्मक है और मौन का सत्त्व - यह नया आयाम है। Silence is the dimension of life, peacefulness and quietness

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

can be attributes of the mind. इस अंतर को समज लेना, जी ! नहीं तो आपको आगे उलझन होगी ।

मन की गति सूक्ष्म है और वह अपने भीतर है, इसलिए आँखें खोलकर बाहर देखने की आवश्यकता नहीं । आँखे मुँदने से सहायता होगी । यह कोई technique नहीं है, जी ! आँखे खोलें व पदार्थ की ओर न देखें - ऐसा यदि साध्य हुआ, याने पदार्थ और आपके मध्य के आकाश व अवकाश में आपकी दृष्टि यदि स्थिर रह सकी, तो आँखे मुँदने की आवश्यकता नहीं; परंतु सामान्यतः आँखे मुँदे तो बेहतर, जिससे बाहर के पदार्थ दिखते नहीं, उनके साथ उनके नाम याद आते नहीं और फिर नाम के साथ गतकाल की स्मृति या स्मरण जागृत हो, यह भी नहीं होगा । आँखे मुँदने से ऐसे अनेक तरह से मदद होती है । आँखे मुँदने से आप और जिसे 'आपका मन' कहा जाता है वह - इतना ही रह जाता है । The movement of inner energies - देखने की शक्ति अर्थात् अंदर की हलचल, भीतर की घटनाएँ - इतना ही रहता है अब !

आपने अब घंटा, आधा घंटा ऐसा निकाला है, जिसमें आप बाहर के समस्त दायित्वों, संबंधों से बिलकुल अलिप्त रह सकते हैं । आप जब कुछ सीखने के लिए; तैरने, संगीत सीखने के लिए gymnasium में जाते हैं, तब समाज की समस्त समस्याओं का कुछ विचार नहीं करते । जब आप सीखते हैं तब सारा चित्त, समस्त शक्तियाँ उस सीखने पर ही एकाग्र रहती हैं, फिर वह विषय कोई भी हों ! उसी प्रकार हम यहाँ सीखने बैठे हैं । किस कारण सीखना पड़ता है ? क्योंकि हमारे पास 'कर्तृत्व' और 'भोक्तृत्व' से मुक्त ऐसा द्रष्टृत्व आज नहीं । हमारा देखना एक प्रकार के कर्ताभाव और भोक्ताभाव में मिल गया, लथपथ हो गया । वह pure perception नहीं है, bare cognition नहीं है; क्योंकि जहाँ कुछ दिखता है, वहाँ उसका नाम, मूल्यांकन, उसका ग्राह्य अथवा त्याज्य होना, अनुकूलता, प्रतिकूलता, 'यह चाहिए', 'नहीं चाहिए' ऐसे सब तरह के भाव तीव्रता से उछलते हैं; अर्थात् देखने का जो कर्म होना चाहिए, उसके बजाय उसे देखने की क्रिया में गतकाल की सभी प्रतिक्रियाएँ मिली हुई रहतीं हैं और पूरी तरह देखने के पहले ही आपको चाहिए या नहीं चाहिए, 'स्वीकृत या अस्वीकृत' - ये सभी निर्णय हो जाते हैं । 'कर्ता' व 'भोक्ता' भावों से लिप्त ऐसा जो देखना है, उसे 'द्रष्टृत्व' कह नहीं सकते । कोई भी प्रतिक्रिया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं, मूल्याकंन नहीं, ग्राह्य-त्याज्य भाव भी नहीं । केवल देखना होता है और साथ में नाम भी नहीं उठता - इसे कहते हैं देखने का अभ्यास । The equipping oneself for the state of observation.

तो, पहले मुक़ाम पे हमने क्या देखा ? यह कि हम स्वस्थ बैठे और हमारे श्वासोच्छ्वास द्वारा शरीर की जो कुछ समस्त क्रियाएँ हैं, वे शांत ढंग से चल रही हैं, उनमें कहीं विक्षेप, अंतराय या विघ्न नहीं प्रारंभ हुआ, भीतर के भाग में और आपके आँखे मुँद लेने पर 'दिखना' प्रारंभ होता है । या तो चित्र दिख पड़ते हैं - याने चित्रात्मक रहता है - या ध्वन्यात्मक अथवा शब्दात्मक रहता है । जिन्हें हम 'हमारे विचार' कहते हैं, 'विकार' कहते हैं, 'अनुभव' कहते हैं या 'ज्ञान' कहते हैं, जो शरीर में संचित रहता है, वह सब दिखने लगता है; किन्तु वह जो दिखने लगता है तथा हमें आभास होता है - 'मैं देखता हूँ', 'मेरी स्मृतियाँ जागीं हैं', 'मेरे मातापिता के जीवन के प्रसंग सामने आये' - तो, 'मैं देख रहा हूँ' इसका भान है तथा जो दिख रहा है, उसका नाम, रूप, मूल्यांकन - समस्त हमारे स्मरण में हैं । याने The act of perception has created an identity as a perceptor. The obseration has created an observer. शुरु शुरु में निखिलता से देखना नहीं होता - 'केवल देखना ही' जिसमें है, केवल the energy of seeing कार्य कर रही है - ऐसा नहीं होगा । पहले मुक़ाम में ऐसा लगेगा कि - मैं देख रहा हूँ, मुझे मेरा क्रोध नज़र आया, क्रोध ठीक नहीं - ऐसा समझा जाता है, वह जाना चाहिए । कई वर्षों से वह है, पर जाता ही नहीं । मुझे मेरी ईर्ष्या दिखाई दी । किन्तु शान्त होती नहीं - याने जो दिख रहा है, उससे मेरा ममत्व का संबंध है । 'वह मेरा है' इस भावना से देखा जाता है और फिर वह संकटरूप है, समस्यात्मक है - ऐसा लगता है; फिर उस समस्या को सुलझाने के लिए 'मैं' जो कोई है, उसे कुछ तो करना चाहिए - ऐसा भी लगने लगता है - ऐसा 'देखना' सदोष है, जी ! यह polluted perception है, क्योंकि ऐसे देखने में त्रिपुटी है - देखनेवाला, जो देखा जा रहा है वह दृश्य और वह देखने की क्रिया याने दर्शन - तो वह रहा पहला पड़ाव ! फिर स्मरण होता है, अरे ! हमने पढ़ा था, सुना था कि यह जो दिखता है वह 'मेरा' नहीं है । यह तो पूरी मानव-जाति में ही सामान्य स्वरूप है । सभी के बारे में यही स्थिति है, यह ही होता है ! फिर अब क्या करना चाहिए ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विचार-विकार सामूहिक ही होते हैं

यहाँ निरीक्षण का दूसरा पड़ाव प्रारंभ होता है कि दिनभर की क्रिया में, आपके और अन्यों के व्यवहार में; फिर वे व्यवहार शरीर के हों, वाणी के हों, मन के, दृष्टि के या संकेत के हों - सभी आ जायें, जी ! उसमें कोई common factors हैं क्या ? आपको विकारों से कष्ट होता है, वैसा ही अन्यों को भी होता है क्या ? इस तरह का निरीक्षण शुरू हो जाता है। प्रथम आपने बैठकर देखा। अब हिलते, चलते, समाज में व्यवहार करते समय (अवलोकन की क्षणों में) 'देखा है' इस तरीक़े से अगर देखा गया, तो आपकी समझ में आता है कि अरे, सचमुच ! यह तो सबके लिए सामान्य है ! अलग-अलग जातियों में, धर्मों में, संप्रदायों में, भिन्न-भिन्न देशों के लोगों में वही है। उनका जीवन भी ऐसे ही चलता है; तो यह सबमें जो कुछ सामान्य है, वह काम करता है, याने क्या करता है ? इसका भी हमें निरीक्षण करना चाहिए। यह दूसरा पड़ाव चल रहा है।

व्यवहार में, संबंधों में, दिनभर की जागृति में यह अभ्यास चलता रहता है। प्रातःकाल में, सायंकाल में बैठकर मन की गति की ओर देखने का अभ्यास तो चल रहा है ही, किन्तु अन्य जो व्यवहार का समय है, उसमें भी हम देखना प्रारंभ करें, तो फिर समझ में आता है कि अरे ! क्रोध आता है याने एक आवेग आता है - impulse and the movement of impulse - कैसे आता है वह आवेग ? तो ज्वर जैसे समस्त शरीर में व्याप्त रहता है, सर में आया और पैरों में आया नहीं, ऐसा कभी नहीं होता, सारे शरीर को व्याप होता है; वैसे ही यह क्रोध समस्त शरीर में एक आवेग निर्माण करता है। उस पर संयम रहता नहीं, जी ! एक बार आया, व्यक्त हुआ, और मैं यह मुझ में और अन्यों में भी देखता हूँ। अगर हमारा अभ्यास चल रहा है, तो क्या समझते हैं ? यह कि जिसे हम 'विकार' कहते हैं - 'impulses' कहते हैं, उसकी एक repetitive और mechanistic गति है। उनका पुनरावर्तन चलता ही रहता है। एक बार, दो बार, दस बार, आकर वह ख़तम नहीं होता, समाप्त नहीं होता, उसका अंत नहीं होता। ईर्ष्या, मत्सर, असूया, द्वेष कुछ भी समाप्त नहीं होता। वह चलते ही रहता है। तब उनका पुनरावर्तन repetitiveness समझमें आता है; उनकी यांत्रिकता समझमें आती है। यांत्रिकता कैसी ? और क्यों समझमें आती है ?...

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यांत्रिकता ऐसी है कि मुझे मालूम हुआ है कि यह क्रोध बहुत बुरा है, क्रोध आना बुरा है - यह सब मेरी समझ में आ रहा है। और मेरी कतई इच्छा नहीं कि वह आये ! किन्तु वह आता ही है। उद्भूत होता ही है ! अनेक ग्रंथ पढ़ लिए, वेद-वेदान्त सुन लिए, प्रवचन श्रवण किये, सबकुछ देख लिया, किन्तु वह बेटा जाता ही नहीं; याने उनकी गति मेरी इच्छा या अनिच्छा पर निर्भर नहीं है। ये जो विकार हैं, उनकी एक स्वतंत्र गति है और जीवनभर वह चलती ही रहती है; तब यह बात समझ में आती है कि ये हममें डाले गये, संक्रमित किये हुए जो विकार हैं, वे स्वयं अपनेआप चलते ही रहते हैं। उनकी यांत्रिकता उनकी स्वायत्त गति-गति याने पुनरावर्तन – हमने देखा।

भक्ति में कहते हैं न कि 'उठता बैसता ध्यावे हरिचे नाम' इसका मतलब यह नहीं कि आपस में बातें करते-करते 'हरि-हरि' कहना है ! पीसते, कूटते, उठते, बैठते, हँसते, रोते, घर में, द्वार में - हरि का नाम लीजिये याने उस हरि से 'विभक्त' न होइये। प्रभुसत्ता का जो ज्ञान-भान रहता है, उस सभानता से एक श्वास भी हमारा अलग जाने न पाये यही कहना है न शास्त्र को ! उसी तरह मुझमें या मेरे मन में उठनेवाले विकार और अन्यों में उठनेवाले विकारों को देखने का जो अभ्यास मैं कर रहा हूँ, वह अनुसंधान छूट न पाये।

'मैं' किसलिए जोड़ते हो ?

एक बार हमारी समझ में आया कि अजी, यह सब 'mechanistic और repetitive movement' है और इसके साथ 'मैं' को संलग्न करना और 'मुझे होनेवाला आनंद', 'मुझे न होनेवाला आनंद', 'मैं जीतनेवाला', 'मैं हारनेवाला', 'मुझे ज्ञान हुआ है', 'मुझमें ये समस्त अनुभूतियाँ हुई हैं' - ये सभी निर्माण करना, यह सब सचमुच बड़ा ही ग़लत उद्योग है और यह समझ में आने पर वह उपद्व्याप करना (उत्पात-ऊधम) छूट जाता है। जब यह खूब फैला हुआ उपद्व्याप बंद होता है, तब शेष क्या रहता है ? - **The movement of knowledge without creating a knower, The movement of experiences without creating an identity as the experiencer, the movement of conditioning without imagining an identity that is conditioned** - यह शेष रहता है। ऐसा नहीं कि मन के स्वरूप का, उसकी यांत्रिकता का, पुनरावर्तनात्मक गति का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बोध होने पर संस्कार नष्ट होते हैं; परंतु इसके साथ जुड़ा हुआ ममता का, तदात्मता का संबंध - identification with the process वह समाप्त होता है। इस गति के कारण वह 'गति धारण करनेवाला कोई मैं' हूँ और वह भी इस शरीर के अतिरिक्त, ऐसा जो भ्रम था - संभाला हुआ, पालन किया हुआ – जैसे हम कुत्तों को पालते हैं, वैसे हम भ्रमों को भी पालते हैं कि जिनसे सुख प्राप्त हो, जिनसे परिश्रम न करना पड़े, ऐसी आदतें जो लगी हुई होती हैं – वह जाता है। .... तो, अब वह तदात्मकता चली गयी। संस्कार हैं, तदात्मता गई, ममत्व-भाव गया। 'उन्हें संभालना हैं' - यह भाव गया। 'वह बंधन है' - यह भाव गया। मर्यादाएँ हैं - मानव-जीवन की, मानवी-शरीर की ! यदि उनको 'मर्यादा' कहकर पहचानें तो वे बंधनरूप नहीं रहतीं; और वे किसी पर लादने की आसुरी इच्छा भी नहीं होती। मर्यादाओं का आग्रह नहीं रहता।..... बदल गया न ! संबंधों का स्वरूप बदला ! व्यवहार में आचरण करने का यह दूसरा पड़ाव यदि आपकी समझ में आ गया हो, यदि मैं आपको वह समझा सकी हूँ, तो आइये हम आगे निकलेंगे।

'देखनेवाले' के बिना ही 'देखना' शेष रहा

अब तीसरा पड़ाव। हम बैठे हैं और इस शरीर में रहा हुआ ज्ञान, अनुभूति आदि जो संस्कार हैं, उनकी हलचल दिखती है; 'वह किसे दिखती है ?' यह प्रश्न रहता नहीं, क्योंकि उस दिखनेवाली गति के कारण 'मुझे दिखता है' कहने जो 'मैं' ठगराया गया था, वह धरातल हो गया। अजी ! वह था ही नहीं, किन्तु वास्तविक उसे भूल से माना था ! वह गया। और उसके जाने पर ? फिर शेष क्या रहा ? जो द्रष्टृत्व शेष रहा, उसके पीछे कोई द्रष्टा नहीं। The energy of Intelligence, The enerygy of sensitivity, the energy of perceptive sensitivity, वह जो स्वसंवेद्य ऊर्जा है, दिखना उसका स्वभाव है; अतः वहाँ देखने की क्रिया नहीं। उस संवेदनशीलता की सत्ता में 'दिखना' यह उपादान ही है, स्वभाव ही है। सूर्य में प्रकाश कैसा रहता है ! प्रकाश यह सूर्य का गुण नहीं, प्रकाश यह सूर्य का उपादान है। सूर्य हमें प्रकाश 'देता' नहीं, देने का भाव नहीं, देने का कर्तृत्वपन भी वहाँ नहीं; वहाँ केवल 'है-पना' है; अर्थात् यह जो दिखना है, जो द्रष्टृत्व है, वह अपने 'है-पन' से संबंधित है, इस जीवन के 'है-पन' से संबद्ध है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह जो समग्र जीवन हमारे आसपास में है और वैसे ही हमारे भीतर है, 'ब्रह्माण्डी ते पिण्डी, पिण्डी ते ब्रह्माण्डी' ('ब्रह्माण्डे सो पिण्डे।', 'पिण्डे सो ब्रह्माण्डे।') - यह जो 'होनापन' है, जिस 'होनेपन' में 'मैं' या 'मेरा' - ऐसे भ्रमों के बुदबुदे जो हमने निर्माण किये थे, उन बुदबुदो ने तरंग रूप धारण किया और हमें संकटों का भास होने लगा; उन तरंगों से आगे चलकर बड़ी-बड़ी लहरें हो गईं। हमें ये सब प्रश्न और समस्याएँ लगने लगीं और उनसे भय लगने लगा। वे लहरें, वे तरंग, वे बुदबुदे, वे बिन्दु - identitiness, I-ness - यह सब अब विलीन हो जाता है और द्रष्टा बिना द्रष्ट्टत्व, observation without the observer, the movement of perception without any solidified perceptor - ऐसा एक नया आयाम खुल जाता है।

पहले दो पड़ावों में जो देखने का अभ्यास किया गया, उसका परिणाम यह हुआ कि देखनेवाला समाप्त हुआ, उसका विलोपन हुआ। प्राप्त कुछ नहीं किया, बल्कि जो था, वह गया ! हमारे यहाँ ऐसा कहा जाता है कि - 'द्रष्ट्टत्व' यह आत्मा का स्वभाव है, क्रिया नहीं, 'देखना' ऐसी कोई क्रिया नहीं है, जी ! वहाँ - रहना, देखना, समझना ये भिन्न-भिन्न कर्म नहीं है, जी। 'दिखना' यह भी उसका उपादान है। 'समझना' याने 'बोध' है - यह भी 'होनेपन' का ही अंग है। The Is-ness of life has its subtance, the 'seeing' and the understanding. तब तीसरे पड़ाव में देखनेवाला खो गया याने शब्द गुम हो गये। देखनेवाला नहीं रहा याने उन शब्दों की सहायता से जो सारे मूल्यांकन बने थे, वे भी सब ख़तम हो गये ! 'काल' का अंत हुआ, शब्द समाप्त हुए, गिनने-नापने के साधन उड़ गये ! रह गया सिर्फ़ 'मौन'। The dimension of silence which has neither the past nor the future. This is sheer (विशुद्ध, निरा, मात्र) Is-ness. Silence is 'timelessness'. Silence is 'soundlessness'. जब देखनेवाला रहता नहीं, तब शब्द भी शेष नहीं रहते, 'काल' भी समाप्त होता है। प्रतीक कैसे निर्माण होते हैं, वह हमने कल ही देखा था।

"मौन" नया आयाम

तो, मौन या silence - यह एक नया आयाम है। यह 'मन की शान्ति नहीं' है, जी ! मन और उसका शान्त रहना, मन और उसका स्थिर रहना याने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"मौन" नहीं। मन की मर्यादाओं या संस्कारों पर जो 'मैं-पन' लादा गया था, वह भी यह नहीं है। इसे लोग 'emptiness' कहते हैं। शब्द कुछ मीठा नहीं है, मन को भानेवाला नहीं है, पर इस 'मौन' के लिए 'शून्य' यह पारिभाषिक शब्द हमारे यहाँ (प्रचलित) है। आप 'शून्य' कहो या 'emptiness' कहो - उससे वहाँ एक प्रकार की रिक्तता है - ऐसी अभावात्मक कल्पना मन में आती है; किन्तु अब हम 'सत्ता' की ओर मुड़े हैं। वहाँ अभाव नहीं है। कुछ पदार्थ नहीं, अतः 'रिक्त' कहना हो, तो कहो, विचारों का कोलाहल या शब्दों के ध्वनि नहीं है, इस कारण 'शून्य' कहना हो, तो कहो; किन्तु उस स्थान में (उस स्थिति में) मानव-निर्मित समस्त संस्कारों की गतियों और मर्यादाओं का भान है, इसका पूर्ण लोप रहता है।

यहाँ तक यदि साधक पहुँच गया और उसने सचमुच अगर शब्दों का किनारा छोड़ दिया, शब्दों का जन्म देनेवाला वह स्वयं यदि खो गया; तो शब्दों की हलचल से व शब्दों से निर्मित चित्रों की हलचल द्वारा - नाड़ी-तंत्र पर जो कुछ दबाव - pressure या tension आता होगा, वह चला जाता है। आप 'मौन' का आशय समझ लें। **The dimension of silence is the dimension of total relaxation of the psycho-physical structure** - संपूर्ण विश्रान्त-विश्रब्ध अवस्था यह "मौन" का अर्थ है। सिर्फ़ न बोलना, यह मौन नहीं। हमारे यहाँ प्राचीन पारिभाषिक शब्द हैं संकल्प-विकल्प-मुक्त, विचार-विकार-मुक्त; याने क्या ? तो विचारों द्वारा, विकारों द्वारा जो pressure या tension आता है, वह निकल जाता है।

भाग्यशाली हैं वे लोग कि जिन्हें ऐसी, pressure-free, tension-free अवस्था की प्रतीति क्षणभर भी आयेगी ! ये दबाव व खिँचाव आता है हमारे नाड़ी-तंत्रों पर, रसायन-तंत्रों पर, neurochemical system में, जिससे कि हमारे जो अवयव हैं, वे सदा खींचे हुए, तने हुए रहते हैं। (रबर जैसा तनकर रखा जाता है, वैसे हम दिनभर जीते रहते हैं) ये दबाव, तनाव कोई संस्कारगत, कुछ आनुवंशिक होते हैं और कुछ हमने ही निर्माण किये होते हैं। इन सभी pressures और tensions के जाल में उलझकर हम जीते रहते हैं या tensions अथवा pressures को कम-अधिक करने को जीवन जीना मानते रहते हैं। अब इस "मौन" में यह सब कुछ विसर्जित हुआ। All the

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

pressures and tensions get liquidated, not eliminated. ये समस्त दबाव, तनाव पिघलते हैं। ये सब पिघल गये हैं - ऐसी जो शून्यावस्था है, जहाँ उस चेतना का कहीं, कुछ भी केन्द्र या परिध रहा नहीं; अतः वह वैश्विक चेतना, जो संस्कारमुक्त है - याने किसी भी प्रकार का संस्कार ही नहीं जहाँ, वह चेतना "मौन" की इस विश्रब्ध अवस्था जागृत होती है। यहाँ यांत्रिक और पुनरावर्तित गति का विसर्जन और नूतन सृजनशील गति का जन्म है, संचार है। Activation, activisation of unconditioned energy is total freedom from the past. इस संस्कारमुक्त चेतना को, गति को भूतकाल नहीं है, जी ! तो, शून्यावस्था में या मौनावस्था में अंतर्निहित उर्जा का अब जागरण और संचारण होता है ! इन दोनों का प्रारंभ हुआ ! अगर यह शुरू नहीं हुआ, तो फिर ऐसा हो सकता है कि अपने मन की जो शान्ति है, उस शान्ति को ही हम 'मौन' समझ रहे हैं।

फिर जहाँ हम दो घंटे मौन में बैठते हैं और उसके पश्चात् मौन से उठकर व्यवहार में लग जाते हैं, तब पहले का जो मन था, विचार-विकारों से दबा हुआ, उलझा हुआ, वही कार्यरत होता है। व्यवहार में परिवर्तन नहीं। इधर-उधर कुछ थोड़े सुधार होते हैं। changes of the fringes of consciousness - इतना होता है; किन्तु गुणात्मक परिवर्तन हो नहीं सकता। नहीं तो दस-दस घंटे मौन में बैठने पर एक प्रकार का आलस्य आता है, अभिक्रमहीनता, बधिरता आती है, callousness (कठोरता) आता है, ऐसा यदि हुआ, तो वह "मौन" नहीं। हम 'जीवन के विज्ञान' के विषय में कह रहे हैं, मौन तक पहुँचे और नई ऊर्जा का तेज नहीं ? ताजगी नहीं ?..... ऐसा हो ही नहीं सकता।

मुझे इतना ही कहना है कि आज प्रातः काल के सत्र में हमने देखा कि धर्म का और शास्त्रों का क्षेत्र क्या है तथा अध्यात्म का कौन-सा है। मर्यादाओं में पसंद-नापसंद के अनुसार मर्यादाएँ चुन लेना, selecting and choosing the conditionings और उसमें व्यवस्था निर्माण करना, यह शास्त्रों की मदद से हो सकता है। शरीर तथा बुद्धि की सुप्त शक्तियों को जागृत कर के अनुभूतियों के प्रकार अलग करें और इन्द्रियगत अनुभूतियों से स्वतंत्र non-sensory, occult, transcendental - ऐसी शक्तियों को जगाना, अनुभव लेना - यह सब शास्त्रों की मर्यादाओं में आता है। अगर यह चाहिए, तो आप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्यात्म की ओर मत मुड़िये, क्योंकि अध्यात्म याने क्रान्ति है; **In the quality of consciousness, in the content or contentlessness of consciousness,** ऐसी यह एक आंतरिक क्रान्ति है; यहाँ व्यवस्था नहीं, यहाँ **Compromise** - समझौता नहीं, यहाँ आपकी सुविधाएँ-असुविधाएँ देखी नहीं जातीं, यहाँ आधार, आलंबन देखे नहीं जाते । वह समस्त व्यवस्था धर्म-शास्त्रों में रहती है ।

तब आप यह परीक्षा करें कि आपको यह चाहिए या नहीं । नहीं तो चालीस-चालीस, पचास-पचास वर्ष भिन्न-भिन्न साधनों में हम बिताते हैं ! हमें संस्कारों को त्यागना नहीं हैं, आदतें छोड़नी नहीं है; हमें शब्दों के, ज्ञातों के किनारों से हटना नहीं है, संबंधों से निर्माण किया हुआ ममत्व, प्रियता, अप्रियता छोड़ने नहीं है और ऐसे रहकर शब्दों के पार, प्रतीकों के पार, मन-बुद्धि के पार, जो अगम्य, अगोचर, अतर्क्य, अचिंत्य है, वह भी देखना है ....!!! कैसे होगा घटित यह ? यदि वह देखना है, तो फिर आप मन का स्वरूप समझ लें । जो संघटित है, सामुदायिक है, जिसके नमूने आपमें और मुझमें हैं, उस पर 'मैं-पन' क्यों ढोयें ? जो यांत्रिक है और पुनरावर्तन यही जिसकी गति है, उससे सर्जनात्मक आकांक्षा कैसी ? वहाँ सर्जन की संभावना नहीं, प्रबंध की है, patterns में फेरफार करने की है, संस्कारों को बदलने की है ।

तो, संघटित और सामुदायिक - ऐसा जिसका स्वरूप तथा पुनरावर्तन और यांत्रिक ऐसी जिसकी गति है, वह यदि ठीक समझ में आ जाय, तो संबंध में परिवर्तन आ गया । तदात्मता गई ! ममता गई ! - तटस्थता आ गई ! - इन समस्त पड़ावों को हमने देखा ।

आप मुझे क्षमा करें कि मनोरंजन या बुद्धिरंजन किये बिना इस विषय को मुझे प्रस्तुत करना पड़ा ।

"युवक तो वर्तमान भारत का शिल्पी है, उसके हृदय में, उसकी आँखों में भारत का भविष्य छिपा हुआ है । अतः अतीत की स्मृति न ढोते रहें, वर्तमान के शिल्पी बनें और भविष्य के निर्माता बनें । आँखों में सपने रखें भारत-निर्माण ., तब कहा जायेगा कि वह युवक है । .... जो वर्तमान से जूझने को तैयार है, भविष्य का शिल्पी बनने का दायित्व उठाने को तैयार है, जो अतीत के शब को कन्धे से उतार देता है, वह युवक है । वही राष्ट्रनिर्माण कर सकता है ।"

["मानव-निर्माण - राष्ट्रधर्म एवं युगधर्म" - मेंसे]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन तृतीय
संबंधों के नये आयाम

प्रश्न : अहंकार का जीवन में क्या महत्त्व है ? यदि अहंकार नष्ट हुआ, तो जीवन निःसत्त्व नहीं हो गया क्या ?

उत्तर : 'अहंकार' ! यह प्रथम देखना होगा कि 'अहंकार' शब्द से आपको ठीक अभिप्रेत क्या है, - 'I' consciousness - 'मैं' यह तो कोई स्वतंत्र, जीवन की सर्वव्याप्त सत्ता से अलग, उस सत्ता से बाहर, सर्वथा पृथक् - ऐसी व्यक्ति है ऐसी यदि भावना हुई हों, तो उसे 'अहम्' कह सकेंगे। जैसे आप ज्यामिति-भूमिति में कहते हैं कि supposing there is a point और कागज़ या बॉर्ड पर एक बिन्दु निकालते हैं; फिर विद्यार्थी पूछता है कि यह आपने क्या लिखा है ? इस बिन्दु की व्याख्या क्या है ? आप कहते हैं कि - जिसे length भी नहीं, weadth भी नहीं, ऐसा है यह बिन्दु। इस supposition पर संपूर्ण ज्यामिति-भूमिति शास्त्र टिका हुआ है, इंजीनियरिंग स्थिर है; त्रिकोन, चौकोन, काटकोन आदि सब कोन बनाते हैं। इस supposition पर सब खेल हैं। सुंदर खेल है। भूमिति व इंजीनियरिंग में बिन्दु का जो स्थान है, वही हमारे सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन में 'अहम्' या 'अहंकार' का है।

'अहम्' यह माना हुआ बिन्दु है

एक से नौ तक अंक है, उनके परस्पर संबंध हमारे पूर्वजों ने निर्धारित कर रखे हैं। उन्होंने कैसे निर्धारित किया ? उसके पीछे क्या आधार थे ? वह हमें ज्ञात नहीं। किसी वराहमिहिर को ही ज्ञात होगा; परंतु इन अंकों पर और अंकों के जो संबंध हैं; - number - 1 to 9 and their numerical relations हैं, - उन पर संपूर्ण अंकगणित खड़ा है। बीजगणित का भी यह आधार है और उन अंकों का संबंध समस्त जीवन के सभी क्षेत्रों में फैला हुआ है। उन अंकों की सहायता से हम नाप-तौल करते हैं। आप की सरकार जब बजट बनाती है, अर्थनीति-अर्थतंत्र निश्चित करती है, उस समय सरकार को इन अंकों की ही सहायता लेनी पड़ती है। तो, समूचे व्यापारों में मानव-निर्मित, बुद्धि-निर्मित - ऐसा जो अंकों का महत्त्व है, वही महत्त्व 'अहंकार' का जीवन में है। यह जो साढ़े तीन हाथ का शरीर है, वह बाकी सृष्टि से अलग है, यह समझ में आता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। हमारे आसपास रहनेवाले व्यक्तियों के शरीर से इस शरीर की सत्ता पृथक् है; क्योंकि इसे रूप है, रंग है, आकार है, नाम दिया गया है। वह नितान्त पृथक् है कि नहीं, नितान्त स्वतंत्र और निरुपाधिक ऐसा उसका अस्तित्व है या नहीं, यह शास्त्रीय विषय है, हम उसमें न जायें। हमारे शरीर में होनेवाले पञ्च-महाभूतों में और बाह्य पदार्थ-सृष्टि के पञ्च-महाभूतों में गुणात्मक फ़र्क ज़्यादा नहीं है, तो इस दृष्टि से बिलकुल भिन्न या पूर्णतः एक - ऐसे भी नहीं कह सकते, ऐसा अनिर्वचनीय स्वरूप है; तो, जैसा बिन्दु हम मानते हैं, वैसी इसकी याने अहं की स्वतंत्रता, Identify, व्यक्तित्व है, ऐसा गृहित कृत्य हम मानेंगे। 'एक मनुष्य' इस नाते से व्यवहार करने के लिए यह एक Presumption है, - The 'I-consciousness' - the 'ego' - the 'me' - the 'self' having an identity and personality - यह जो इसका स्वरूप है, वह यदि समझ में आया हो, तो आओ आगे चलेंगे ! फिर इसका स्थान क्या है ? इसका महत्त्व क्या है ?

शरीर की आवश्यकताएँ

इस शरीर का एक अलगपन है, इसे आकार है, इसकी आवश्यकताएँ है, - इसे खाने को चाहिए, पीने को चाहिए, पहनने को चाहिए, रहने को कहीं ठिकाना चाहिए - इन सबकी पूर्तता के लिए जैसे आप बिन्दु की कल्पना का उपयोग करते हैं या संख्या का अथवा संगीत में सप्त स्वरों का प्रयोग करते हैं, वैसे इस अहंकार के अलगपन की जो अनुभूति हममें संक्रान्त की गई है, उसका उपयोग करके जीवन की आवश्यकताओं की पूर्तता के लिए हम उपाय-योजना करते हैं। इस अनुभूति में कौन-कौन-सी शक्तियाँ हैं - शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक - यह देखकर उनका विकास करने के लिए व उसीके साथ दैहिक व्यापार में, जो दैहिक संबंध बनते हैं, उदाहरणार्थ - विवाह हुआ, अब मकान चाहिए, परिवार चाहिए और उपजीविका का साधन चाहिए आदि, आदि - रिश्तों-नातों की भाषा - यह सब संभालने के लिए भी इस अहंकार के अस्तित्व का उपयोग होता है।

अतः इस शरीर में - अर्थात्, इसमें मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार के साथ 'स्थूल' और 'सूक्ष्म' का भी समावेश हुआ; याने उसमें जो संभावना - potentials - हैं, उनके विकास के लिए भी अहं की अनुभूति का उपयोग होता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। यह अनुभूति मानव-निर्मित है और इसका अस्तित्व है काल्पनिक। देह में रहना, देह द्वारा रहना तथा दैहिक सृष्टि में काम करना; उसी प्रकार मानसिक व बौद्धिक सृष्टि में विचरना; - क्योंकि मन और बुद्धि की सहायता से ही समाज की रचना होती है ! विचारों की सहायता से साहित्य, संगीत, कला, समाज-शास्त्र व अर्थ-शास्त्र का विकास होता है ! - ऐसा यह हमारा सारा मानसिक, बौद्धिक जगद्व्यापार है, छोटी बालिकाएँ जैसे 'घर-घर' खेलतीं हैं वैसा ! उसमें हमारे अलगपन की संवेदना को लेकर हमारी समस्त संभावनाओं का, शक्तियों का विकास करके, जो कुछ समाज को दे सकते हैं वह देना, जो आवश्यकताएँ हों, उनकी पूर्तता करना; यहाँ तक इसका उपयोग है। The movement of thought structure as the 'I' and the 'me' has not only relevance but treatmendous utility in the material and the psychological world. तो, अहंकार की संवेदना का पूर्ण विकास करके उसकी मर्यादाएँ पहचानना, वह संवेदना कैसे बनी, वह देखना और उसका सम्यक्, सुंदर, सुरुचिपूर्ण उपयोग करना - यह (कर्तव्य) होता है और उतना ही सम्यक् विनियोग भी करना होता है।

पृथक्ता के आभास को लपेटकर दूर रखो

जिस क्षण में जिज्ञासा जागृत हो जाती है, जो-जो कुछ हमें दिखता है, हम देख रहे हैं, शब्दों के द्वारा जिसका संकेत किया जा रहा है, उसके उस पार और कुछ है क्या ? - ऐसी यदि जिज्ञासा जागृत हुई और अगर उसकी खोज करनी हों, तो अन्य गृहीत-कृत्य लपेटकर दूर रखने पड़ते हैं; वैसे ही मानव-निर्मित व काल्पनिक अस्तित्व में रही पृथक्ता की – फिर यह पृथक्ता सापेक्ष क्यों न रहे ! – अनुभूति लपेटकर दूर करनी पड़ती हैं। अहंकार नष्ट नहीं होता। पदार्थों का भी संपूर्णतया नाश नहीं होता; रूपांतर होता रहता है। कागज़ या कपड़ा जलाया गया, तो राख होती है, राख ज़मीनमें डाल दी, तो उसकी मिट्टी बनती है, उस मिट्टी का ही खाद बनता है, उस खाद मेंसे वनस्पतियों को पोषण मिलता है; अर्थात् फिर से वह राख, वह मिट्टी वनस्पति का आकार धारण करती है। "सर्वं अनित्यम्" याने वस्तुतः "सब कुछ परिवर्तनशील" है। रूपांतर होता है और उनके साथ-साथ नामांतर होता है। रूप बदलता है, नाम बदलता है; अतः एक ही रूप के और एक ही नाम के साथ हमारी समस्त भावनाओं को आसक्त करके उन्हें ही गले लगा के, उस एक ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूप को, एक ही नाम को चिपक के मत रहिये; ऐसा विद्वान लोग कहते हैं। तो यह (अहं की) संवेदना लपेटे रखिये; क्योंकि इसीको लेकर यदि आगे का प्रवास प्रारंभ किया गया, तो उस सर्वव्यापी सत्ता का स्पर्श होने के लिए, जो स्वतंत्रता व विश्रब्धता-विश्रान्ति आवश्यक होती है, वह प्राप्त नहीं होती। इस अहंकार की अनुभूति को ऐसा प्रशिक्षण प्राप्त हुआ है कि हरएक को कोई न कोई नाम देकर, संज्ञा देकर, उसका मूल्य-मापन करके, उसकी परीक्षा कर लेने की आदत उसे पड़ गयी है तथा 'उसमेंसे मुझे क्या मिलता है और क्यों नहीं मिलता' इसका हिसाब वह करती है; किन्तु यहाँ तो प्राप्त करना कुछ है ही नहीं। Learning is not an aquisitive movement and learning can result only 'understanding' which is not an aquisition of the brain, which can be assimilated by your Totality only.

ज्ञान का अर्जन हो सकता है, परंतु कभी अर्जित नहीं हो सकता, उसे कभी कमाया नहीं जाता। तो, परमात्मा क्या है, जीवन का अंतिम सत्य क्या है, मूलतत्त्व क्या है, इसको खोजना है, तो समस्त मनोनिर्मित संस्कारों के वेष्टनों में - आवरणों में अटकी हुई यह जो संवेदना है, उसकी हलचल का उपयोग नहीं होता, वह संवेदना काम में नहीं आती; वह नष्ट नहीं होती, परंतु वह दूर रखनी पड़ती है। जब यह अहंकार शांत हो जाता है तथा प्रज्ञा जागृत होती है, यह पार्थिव ऊर्जा नहीं, वह चैतन्य का स्वभाव है - तो वह प्रज्ञा जागृत होने पर आप निःसत्त्व कैसे हो जाओगे, भाई ! अरे ! पूरी तरह प्रज्ञा जागृत हुई हो, ऐसी व्यक्ति भी खुद के निर्वाह के बारे में बुद्धि का प्रयोग करेगी ही ! शरीर का, इन्द्रियों का उपयोग होगा ही ! उसमें भी अहंकार की संवेदना का सहज उपयोग होगा ही; परंतु वह संवेदना अब किसीकी मालिक या स्वामी नहीं, उस पर किसीकी प्रभुता नहीं और स्वामित्व भी नहीं, फिर यह स्वामित्व कैसे आता है, वह अब देखते हैं।

विकार ही मालिक बनता है

अगर ऐसा कुछ हुआ है जो अप्रिय है, मन को भानेवाला नहीं है अर्थात् आंतरिक उद्विग्नता है - हम कहते हैं न, 'मैं बहुत उद्विग्न हूँ, चिंतित हूँ'- यह क्या होता है ? तो अंदर की पूरी समग्रता में जो चिंता, विषाद, चिढ़, संताप या जो है, वह मानो ऊपर आया है। ऐसे समय पूरे शरीर की अवस्था भी बदल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाती है। दृष्टि बदलती है; पूरे शरीर में एक प्रकार का tension निर्माण होता है; शरीर पर एक प्रकार का बोझ आ जाता है ! ऐसे समय आँखे खोलकर यदि आप किसीकी ओर, जगत की ओर भी देखें, तो वह देखनेवाले 'आप' नहीं होते, यह तो आपकी उद्विग्नता, आपका संताप देखता है; वह जो अप्रियता है, कटुता है, वह देखती है; याने उस समय उस अहंकार की संवेदना की जो प्रतिक्रिया रहती है, वही उस क्षण को इन्द्रियों द्वारा देखती है, इन्द्रियों का उपयोग कर के ! इन्द्रियों को काम में जुटाकर के ! वे विकार-विचार, वे ध्येयों के-आदर्शों के आग्रह, अपनी रुचियों के आग्रह, वे देखते रहते हैं; अतः वे मालिक रहते हैं, उनकी मालकियत होती है और स्वामित्व भी रहता है हम पर। The wholeness of the psycho-physical structure is victimised by the emergence of reactions; किन्तु मौन के अभ्यास में, अहंकार की इन सभी चालों को, उनके सूक्ष्म पहलुओं को निहार लेने से उनकी अपने पर मालकियत नहीं रहती। अहंकार नष्ट तो नहीं होता ! नष्ट होने के लिए उसके पास कोई substance नहीं। It has no factual content, so it cannot be destroyed.

मिथ्या का मिथ्यात्व पहचानना, उसको ही 'नाश' कहना हो, तो आप कह सकते हैं, परंतु वह 'नाश' नहीं है, वह सापेक्ष सत्य है यह 'पहचानना' है। उस पर 'absolute truth' का आरोप करना नहीं और उसे 'निरपेक्ष सत्य' कहना नहीं, फिर काम पूरा हो गया ! बड़े महत्त्व की बात है ! बुद्धि का और बुद्धि में जो संस्कार समाये हुए हैं, उनका उपयोग एक-दूसरे के साथ रहते समय; सख्य के, मैत्री के, सहयोग के तथा सह-जीवन के लिए कैसे करें और वह भी एक-दूसरे का शोषण न करते हुए, यही तो वास्तविक परीक्षा है; किन्तु मानव-समाज को वह अब तक साध्य नहीं हुआ ! उसका कारण मन यह 'स्वामी' है और हम उसके दास हैं, अतः मन में भरी हुई मान्यताएँ, धारणाएँ व मूल्यों के आग्रह इतने रहते हैं - कि आप यदि prophet महम्मद के संबंध में कुछ लिखेंगे - सादा उपन्यास ही क्यों न हो - फिर भी वह नहीं चलेगा। 'हम समाप्त करेंगे लेखक को और उसके लिए पाँच-सात-दस लाख डॉलर्स का पुरस्कार भी देंगे'। - यह बीसवीं सदी है, वैज्ञानिक युग है, तो भी - religious fundamentalism, political fundamentalism किस हद तक जाता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, वह देखो ! यह हुआ समाज का ! परिवार में अपने व्यक्तिगत आग्रह, अभिनिवेश, व्यक्तिगत fundamentalism चलते ही रहते हैं । उससे निर्माण होनेवाली हिंसा, शोषण - यही अपने आज के संसार के प्रश्न हैं, दूसरा क्या ?

उपाय बाहर नहीं

जब तक मन का स्वामित्व समाप्त नहीं होता, तब तक अहंकार की मर्यादाएँ पहचानी नहीं जातीं और उन्हें पहचानकर उनके क्षेत्र में ही उनका उपयोग सीमित नहीं किया जाता, तब तक व्यक्तियों की व समाज की समस्याएँ या प्रश्न नहीं सुलझेंगे । इसके लिए उपाय बाहर नहीं है, उपायों का आरंभ अंदर ही होना चाहिए । 'The crisis is in the content of individual consciousness (Let me withdraw the word 'individual') **- the crisis is in the consciousness of the collective'.**

तो, अहंकार की मर्यादाएँ समझकर, जब वह अहंकार शांत हो, तब अपने क्षेत्र में वह अपना काम ज़िम्मेवारी से करता है और जहाँ उसका क्षेत्र नहीं, वहाँ वह मौन रहता है । ऐसा होने पर ही नई ऊर्जा, नई प्रज्ञा, a new perceptive sensitivity - इससे कार्य होता है, जीवन में तेज और ओज बढ़ता है; निःसत्त्व कैसे रहेगा जी, वह ?

मौन, निद्रा और ध्यान

प्रश्न : मौन में या मन के उस पार जो व्यक्ति गई होगी, उसकी उस अवस्था में मस्तिष्क काम करता है या नहीं ? यदि समस्त संस्कार व संस्कारों की गतियाँ शान्त हुई होंगी, तो फिर उस मस्तिष्क में, brain में, क्या होता रहता है ? क्या मौन और ध्यान की अवस्था और निद्रा, ये दोनों एक ही हैं ? मौन और निद्रा में क्या अंतर है ?

उत्तर : मौन और निद्रा में यह साम्य है कि अहंकार की संवेदना कार्य नहीं करती । कोई व्यक्ति गहरी निद्रा में है और आप उसे अचानक हिलाकर जगाएँ, तो एक क्षण के लिए, उस व्यक्ति को 'मैं कहाँ हूँ' यह भी मालूम नहीं होता । 'मैं कहाँ हूँ ?', ऐसा प्रश्न उस जगे हुए व्यक्ति के मन में उठता है, अर्थात् 'मैं-पन' की संवेदना सुषुप्ति में नहीं रहती । वह शांत तथा किसी और स्थिति में लीन हुई रहती है, **merged into something else** - ऐसी यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

conditioned energy या मर्यादित शक्तियों की संवेदना लीन होते ही संस्कारमुक्त अथवा unconditioned energies शरीर में काम करने लगती हैं। इसलिए नींद से जागने पर मनुष्य को चुस्ती महसूस होती है, ताज़गी लगती है, उत्साह महसूस होता है, स्फूर्ति आती है - यह सब होता है। मौन व ध्यान के आयाम में इससे ज़्यादा विशेष क्या होता है, वह देखें -

सोने के लिए आपको बिछौना, ओढ़ना चाहिए। एक स्थान में शरीर को स्वस्थता से सुलाये रखने की सुविधा चाहिए। मौन के आयाम में आपको एक ही स्थान में बैठे रहने की अथवा स्वस्थ सो जाने की आवश्यकता नहीं रहती। आप जागृत हैं, घूमते-फिरते हैं; किन्तु 'मैं-पन' की संवेदना नहीं। जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति - इनसे भी अलग 'तुरीय' अवस्था जागृत होती है - **A fourth dimension of consciousness** opens up - सुषुप्ति में वह जागृत नहीं रहती - एक योगी के अतिरिक्त किसी में भी; याने एक तो शरीर को एक ही स्थान में अटक के रहना नहीं पड़ता और शरीर के सारे व्यवहार चलते रहते हैं। भोजन बनाना हो, कार्यालय में काम करना हो, आदि, आदि समस्त शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक क्रियाएँ, परिस्थिति के अनुसार हम करते रहें, तो भी 'ध्यान' के आयाम को बिलकुल धक्का नहीं लगता। यह बहुत बड़ा अंतर (ध्यान व निद्रा की स्थिति में) होता है।

तो 'इस अवस्था में मस्तिष्क का क्या होता है' - ऐसा आपने पूछा है। तज्ञ लोग ऐसा कहते हैं कि समूचे मस्तिष्क का उपयोग, brain का उपयोग आज भी हम नहीं करते। untapped, unexplored, unutilised, unconditioned parts of human brain ! अद्‌भुत है मनुष्य का मस्तिष्क ! बड़ा चमत्कार है ! उसमें अनगिनत ऊर्जाएँ - energies भरी हुई हैं, समाई हुई हैं; जिसका वर्णन कर नहीं सकते, ऐसी असाधारण गति से वे कार्य करती हैं। जैसे ही संवेदन पहुँचता है, वैसे ही तुरंत उसका अर्थघटन और अर्थघटन हुआ न हुआ, तब तक उस अर्थघटन के अनुसार प्रतिक्रिया और प्रतिक्रिया जैसा व्यवहार, यह समस्त वह मस्तिष्क कर लेता है। अद्‌भुत गति ! ये जो उसमेंसे ज्ञात ऊर्जाएँ हैं, गतियाँ हैं, उनका हम उपयोग करते हैं या उन्हें संस्कारों से गतियाँ देते हैं; किन्तु उससे स्वतंत्र, अज्ञात unconditioned energies भी विपुल हैं। उन्हें कोई भी लीक या पगडंडी नहीं है। उनका कोई भी structure या pattern नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तो, 'मैं-पन' की अनुभूति से, किसी भी लीक से - मुक्त, जिसे भूतंकाल ही नहीं, (क्योंकि संस्कार नहीं;) ऐसी वह ऊर्जा आपकी बुद्धि का उपयोग करते हुए व शरीर की इन्द्रियों का उपयोग करते हुए, ध्यानावस्था में कार्य करने लगती हैं; अर्थात् उसमें एक dynamism है। यह सब निद्रा के संबंध में कहा नहीं जा सकता। फिर उस 'ध्यान' के आयाम में स्मृति संग्रह बनता है या नहीं ? memory बनती है या नहीं ? स्मृति बनती है या नहीं ? - इसका और संस्कारों का संग्रह होता है या नहीं ? अति सुंदर प्रश्न पूछे हैं। यह शिबिर मौन, ध्यान के लिए ही है; अतः मेरे समीप जो जथाबंद (थोक) प्रश्न पड़े हैं, उनमेंसे ये प्रश्न मैं प्रथम लेनेवाली हूँ।

'मौन' - अनुभूति, अवस्था या आयाम ?

मज़े की बात यह है कि 'मौन'– यह अनुभूति न बनकर अवस्था बनती है - और अवस्था स्थिर होकर आयाम हो जाती है।

'अहाहा ! वहाँ कुछ भी नहीं था ! मैं पूर्णतः शान्त था ! संपूर्ण शून्यता थी !' - परंतु तूने अनुभव किया न कि वह शून्यता थी ! इसका मतलब 'तू' कहीं तो था, किसी कोने में; याने प्रथमतः 'शून्य' या 'मौन' की अनुभूति आती है। उसमें मनुष्य स्थिर होने लगा; तो वह 'अनुभूति' 'अवस्था' बनती है। दो-चार घंटे शांति से बैठे; याने वह मौन की दशा-स्थिति स्थिर रहती है। लेकिन बैठे रहे हैं तब तक ही ! व्यवहार करने लगे तो "ये रे माझ्या मागल्या। शिळ्या भाकरी चांगल्या" याने रास्ते पर ही पहलेवाली गाड़ी आकर अटकती है; फिर वही स्वभाव, वे ही आदतें, प्रतिक्रिया, वह राग, द्वेष सारा संसार-व्याप खड़ा होता है; किन्तु यदि पाँच-दस घंटे बैठोगे, एकान्त में रहोगे, तो फिर वह अतीत आपको कोई कष्ट नहीं देगा, सताएगा नहीं। यही हुई 'अवस्था' ! अनुकूल स्थिति रही, तो वह टिकी रहती है, प्रतिकूलता में वह टिक नहीं पाती; यहाँ तक वह 'अवस्था' है।

किन्तु यदि यही अवस्था ही 'शील' बन गई, 'स्वभाव' बन गई, 'सहज' हुई, अनुकूलता-प्रतिकूलता, सम्मान-उपेक्षा, यश-अपयश का उस पर कोई परिणाम ही नहीं, ऐसी बनी, तो फिर वह 'अवस्था' नहीं रही। जो खंडित नहीं होती, च्युत नहीं होती, उसे क्या कहोगे ? 'आयाम'- 'Dimension'.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'Experience', The 'State of Consciousness' and then The 'Dimension of Consciousness' - इनमेंसे हरएक का स्वरूप अलग-अलग है ।

तो, जिस समय from the 'state of meditation' you grow into the dimension of meditation' - ध्यान यह 'अवस्था' न रहकर 'आयाम' बन जाता है जीवन का; तब जागृति के समस्त क्षणों में और समूचे व्यापारों में वह आयाम अव्यक्त रूप में अनुस्यूत रहता है; जैसे गंगा-जमुना के साथ सरस्वती अदृश्य, अव्यक्त होकर भी एक आंतर-प्रवाह बन के जैसे रहती है वैसे, किन्तु मज़ा यह है कि life is relationship - आप घर में, परिवार में, समाज में रहते हैं, कुटुंब-परिवार न रहा तो हो सकता है संस्था-संघटनों में, पर कहीं तो रहते हो - उद्योग-व्यवसाय-नौकरी करते हो; याने बाल-बच्चों के साथ वा अन्य मनुष्यों के संग जीना तो होता है ! इस तरह जीते समय व्यवहार में, संबंधों में शरीर द्वारा होनेवाले व्यापार या वाणी द्वारा कहे गये शब्द - इनका परिणाम समझ में आता है । इसके कारण होनेवाला सुख या दुःख अर्थात् अनुकूल या प्रतिकूल संवेदन, यह भी होता है; क्योंकि psycho-physical structure है आपका, जिसमें आप जीते हैं, रहते हैं, वह निवास (abode) है आपका । तो सुख-दुःख की पलभर, क्षणभर तो अनुभूति होगी ही !

अब यहाँ से ध्यानावस्था में जीनेवाला व्यक्ति और ध्यान के आयाम में जीनेवाला व्यक्ति - इनमें अंतर पड़ता है । मन के स्तर पर जीनेवाला व्यक्ति, सुख होने पर सुखों के संवेदन पर प्रियता का आरोप और दुःख के संवेदन पर अप्रियता का आरोप करता रहता है, तो ध्यान के आयाम-**dimension** में जीनेवाला व्यक्ति, प्रियता या अप्रियता की ओर मुड़ेगा ही नहीं ! झाँक कर देखेगा भी नहीं ! सुख हुआ, दुःख हुआ, उस क्षण को तो जी लेता है; किन्तु यह नहीं उसमें कि 'दुःख मुझसे सहन नहीं होता' । सुख होगा, दुःख होगा; किन्तु प्रियता और अप्रियता, ऐसा उसमें कुछ नहीं; इसीलिए राग नहीं, द्वेष नहीं और इसलिए अनुभूतियों की ग्रंथियाँ (knots) भी नहीं बनतीं । सिर्फ़ सुख-दुःख होने से कहीं अनुभूतियों की ग्रंथियाँ नहीं बनतीं; किन्तु हम राग-द्वेष की गाँठें बाँध-बाँधकर जीते रहते हैं; ग्रंथियाँ बनाते हैं । हमारे जीवन के वस्त्र को ऐसी अनंत गाँठें रहतीं हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्यान के आयाम में जीनेवाले व्यक्ति को psycho-physical level पर यदि घटनाओं के रूप में सुख-दुःख हो गये, तो भी वह व्यक्ति उस सुख और दुःख को उस क्षण में इतनी समग्रता से, उत्साह से, सहृदयता से जीता है कि अगले क्षण वह सुख और दुःख शेष ही नहीं रहता। वह सुख और दुःख वह व्यक्ति यूँ जी लेता है कि as events on the biological and psychological level they do not get registered as 'good' or 'bad', as 'desirable' or 'undesirable' - फिर 'स्मृति' बनेगी कैसे ? - 'मुझे भाता है', 'मुझे भाता नहीं', यह 'मेरी' अनुभूति, 'मेरा' दुःख, 'मेरे' जैसा सुख किसीको मिलता ही नहीं ! - यह भाषा वहाँ नहीं आती। वह भाषा समाप्त होती है। अनुकूल-प्रतिकूल संवेदनों का, घटनाओं का परिणाम बाह्य शरीर पर दिखाई दिया तो भी, अंदर उसकी 'स्मृति' नहीं बनती। What is memory ? The risidue left behind, the events that you lived through, and if the registration of the events does not enter the brain as an experience, but is left at the psycho-physical level of being, just an event of life, then memory formation comes to an end. बड़ी समझ लेने जैसी बात है यह ! ध्यान के आयाम में रहनेवाली व्यक्ति कितना भी अधिक जनसंपर्क में रहे, तो भी तथा कितने भी कर्मों का व्यापार उसके प्रारब्ध में हो, तो भी अंदर कहीं भी स्मृति का लवलेश भी नहीं रहता। यह अंतर है "मौन" और "निंद्रा" में।

ध्यान का आयाम चिरतरुण होता है। चिर-यौवन रहता है वहाँ ! भूतकाल वहाँ बनता ही नहीं और भविष्यकाल की कल्पना भी नहीं होती है। भूतकाल और भविष्य दोनों न रहने से, चिरतारुण्य रहता है। The timelessness in which a person living in meditation, happens to live. There is an indescribable freshness of the brain. मस्तिष्क थकता नहीं। उसका कारण है - उस बुद्धि का, प्रज्ञा का लावण्य ! उस ध्यान के आयाम का तारुण्य, लावण्य ! अनादि, अगम्य परतत्त्व !

सत्य की जिज्ञासा

प्रश्न : यदि मौन या ध्यान करने में कुछ हेतु हो और प्रयोजन पर आधारित वृत्ति हो, तो कहते हैं कि 'मौन' नहीं होता; किन्तु जिस वृत्ति में उद्देश्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही नहीं, वह तो मन के स्तर पर संभव नहीं; फिर यह जो दुष्ट चक्र (visicious circle) है, वह कैसे टूटेगा ?

उत्तर : प्रश्न पढ़ने पर उसका अर्थ में जो समझ रही हूँ, उस प्रकार हम प्रश्न की ओर देख रहे हैं । 'हेतु' किसे कहते हैं ? 'मुझे, मेरे लिए कुछ exclusively चाहिए, उसे हम स्वकेन्द्रित हेतु कहेंगे; मुझे सीखना है, संतों का साहित्य पढ़ना है, आत्मानुभवी जनों की वाणी सुनना प्रिय लगता है - ऐसा कहने पर प्रश्न पूछा जाता है कि फिर सीखने से तुम्हें क्या प्राप्त हुआ ? कितना बड़ा गट्ठर बाँध लाये हो ? या कुछ भी लाये नहीं घर को ? परंतु यह अत्यन्त गौण है । तो, सीखने की इच्छा, सत्य क्या है यह समझने की जिज्ञासा, प्रेरणा यह कोई स्वकेन्द्रित उद्देश्य नहीं । The desire to learn is not an aquisitive motivation. शब्द का प्रयोग किया है प्रश्न करनेवाले ने; फिर इस सीखने की इच्छा का अर्थ – मौन याने क्या ? ध्यान याने क्या ? समाधि याने क्या ? यह जीवन याने क्या ? मृत्यु याने क्या ? – ये सारे रहस्य उद्‌घाटित होने में परिणत होने चाहिए । इन सबका अर्थ समझमें आना चाहिए । The whole business of living and relationship, the meaning behind all this - यह मुझे विदित होना चाहिए - ऐसा अगर बार-बार महसूस होता रहा, तो उसे 'हेतु' न कहें, तो क्या कहें ? ऐसा यदि आप मुझसे पूछेंगे, तो मैं कहूँगी कि 'The desire of supreme intelligence contained in the unit - as 'you' - the desire of the supreme intelligence to unfold itself - यह जो विश्व के पीछे अनंत घटनाओं के पीछे, अंतर्निहित व्यवस्था और प्रज्ञा स्थित है, उसकी व्यक्त होने की इच्छा है । खुद का ज्ञान-स्वरूप, बोध-स्वरूप, चित्-स्वरूप, आनंद-स्वरूप देखें – ऐसी एक इच्छा ।

"स अकामयत् - एकोऽहं बहुस्याम् प्रजायेय ।
स एकाकी न रेमे ।"

वह जो सत्ता है उसे खुद का रूप देखने की इच्छा हुई, अतः उसने अपनी एकता से अनेकता निर्माण की और उस अनेकता के दर्पण में वह एकता अपना रूप देखने लगी, ऐसा हमारे देश का cosmogenesis (विश्वोत्पत्ति शास्त्र) कहता है, जी ! तो, सत्, चित्त, आनंद का अर्थ समझ लेना, उन्हें देखना, ऐसी इच्छा कोई aquisitive motivation नहीं है, जी ! कुछ न कुछ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राप्त करना, कमाना और जो प्राप्त हुआ, जो कमाया हुआ है, उसको साधन बनाकर उसका कुछ और उपयोग करना - ऐसा कुछ इसमें नहीं होता है ।

जिज्ञासा अत्यन्त पवित्र होती है । जानने की इच्छा और 'वैसे ही जीने' की इच्छा 'जिजीविषा' । 'जिजीविषा' का अर्थ सामान्य तौर से जो किया जाता है, उस अर्थ से मैं इसका उपयोग नहीं कर रही हूँ । तो, 'जीने की इच्छा', - जो जीवन है उसको प्रकट करने की इच्छा; Unfoldment - आपके Physics की भाषा में कहना हो तो, 'The implicate order by unfolding itself wants to become explicate, and where was the implicate order concealed ? In the emptiness - शून्य के स्फोट से, विस्फोट मेंसे इन अनंत ब्रह्मांडों का निर्माण हुआ; "infinite universes मेंसे" - ऐसे शब्द का उपयोग किया है, जी ! ऐसा पदार्थ विज्ञानवेत्ताओं का कहना है । 'The infinite universes are the by-products of the explosion in the emptiness itself ! हमारे वेदान्तियों से भी रहस्यमयी यह भाषा है ।

तो, मौन क्या है ? ध्यान क्या है ? ये आयाम हैं भी, तो कैसे हैं ? बुद्धि और संस्कारों के पार जीवन है क्या ? "यह" जानने के लिए और "वह" जीने के लिए अर्थात् जिज्ञासा और जिजीविषा की प्रेरणा से यदि हम ध्यान व मौनादि का, शब्दों की सहायता से, निरीक्षण की मदद से, विचार करने लगेंगे और साक्षात्कार कर लेने लगेंगे और यदि साक्षात्कार के पश्चात् वह आया हुआ प्रत्यय इन्द्रियों के स्तर तक उतारकर उसे साक्षात् जीने लगेंगे, तो उसमें कोई भी 'उद्देश्य' था, ऐसा कह नहीं सकेंगे । छोटे बालक खेलते हैं, तब उनका कोई प्रयोजन रहता है क्या ? कोई हेतु रहता है क्या उस खेलने में ? They are in the bliss of eternity. भूख का भान नहीं, नींद की सुध नहीं ! वैसा, इस अमृतमयी सत्ता में स्वयं को देखने का, खुद का जो होनेपना है, उसे निहारने का खेल याने "मौन" ।

प्रश्नकर्ता ने 'वृत्ति' शब्द का प्रयोग किया है, उसकी ओर देखना आवश्यक है, नहीं तो उलझन होगी । वृत्ति याने चित्त में उठनेवाले तरंग । स्मृति-सागर, संस्कार-राशि या memory - इन पर उठनेवाले तरंग; फिर वह प्रवृत्ति रहे या निवृत्ति । 'मैं शरीर हूँ' - ऐसा कहना यह जैसे एक वृत्ति, वैसे ही 'अहं ब्रह्मास्मि' कहकर 'मैं शरीर हूँ' इस अनुभूति का काँटा यदि हम निकाल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकें, तो कोई आपत्ति नहीं; फिर उस 'अहं ब्रह्मास्मि' नाम की वृत्ति को ही यदि परम सत्य समझें और 'ब्रह्म' भाव में ही उलझ गये, तो ऐसा होगा कि हम तमोगुण-रजोगुण से छूटे पर सत्त्वगुण की सुनहरी जंजीर में बँधे गये !

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।"

संस्कार-राशि में, स्मृतिसागर में कोई भी तरंगें नहीं उठतीं, कोई भी क्षोभ नहीं रहता; याने कि वृत्ति उठती ही नहीं; तो मौन या ध्यान के आयाम में प्रवृत्ति-निवृत्तिओं का त्याग है, ऐसा नहीं, पर उन दोनों की जड़ों में जो 'वृत्ति' रहती है, उसका छेद करना - उसे मिटाना आवश्यक है; याने शरीर-धारणा के लिए, समाज में समाज का एक अंग हैं इस रिश्ते से जीने के लिए, जो भी शरीर का व शरीर की इन्द्रियों का और संचित ज्ञान-अनुभूतियों का उपयोग करना पड़े, वह उपयोग तटस्थता से करना और उसके आगे, उससे कुछ प्राप्त करना है, 'अर्जन' करना है, ऐसा कुछ भी नहीं।

नौकरी करना, पैसे कमाना, परिवार को सहारा देना - यह सब जीवन में करना पड़ता है; किन्तु मेरे एक वाक्य पर आप ध्यान दें कि - सुख-दुःखों की घटनाओं में व्यक्ति, पदार्थ, परिस्थिति - इन पर यदि आप प्रियता-अप्रियता का आरोप करेंगे नहीं और राग-द्वेषों की ग्रंथियाँ नहीं बनेंगी, तो - इस समस्त कर्म-व्यापार में चित्त की समता एवं इन्द्रियों का संतुलन स्थायी रह सकता है, वह हमारा 'शील' बन सकता है। अध्यात्म यह जीवन की ओर देखने की नई दृष्टि है और जीवन जीने की एक नयी शैली है ! संस्कारों का उपयोग, वे 'संस्कार' हैं - यह समझकर और प्रतीकों का उपयोग, वे 'प्रतीक' हैं - यह जानकर करना चाहिए। उसमेंसे यदि आग्रह उड़ जाएगा और आग्रह के साथ आनेवाले आवेश और अभिनिवेश पिघल जाएँगे और आसक्ति, विरक्ति, द्वेष - इन सबका लोप हो जायगा, फिर उसके बाद जो मनुष्य रहेगा और उसके जो पारस्परिक संबंध बनेंगे और उनसे जो समाज बनेगा, उसमें सिर्फ़ मानवोचित व्यवहार ही होते रहेंगे।

आज का समाज मानवोचित संबंधों का नहीं है। आकृति मनुष्य की किन्तु वृत्ति पाशवी - animal insticts - पाशवी प्रेरणा, the hangover of the animal insticts, ऐसा है ! अहंकार की जो संवेदना है, उसे कैसे इस्तेमाल करें ? उसका उपयोग कैसे करें ? इसकी शिक्षा पाठशालाओं में, घरों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में न मिलने के कारण मनुष्य चकरा जाता है। अध्यात्म में ऐसा होता है कि जो सापेक्ष है, उसकी सापेक्षता पहचानी जाती है और उस क्षेत्र में सावधान रहकर उसका प्रयोग किया जाता है और जो निरपेक्ष सत्य है, जो केवल प्रतीत होता है, किन्तु जिसे शब्दों में ढाला नहीं जा सकता, जिसे संघटित नहीं किया जा सकता, जहाँ द्वैत न रहने से संबंध बनाए नहीं जा सकते, ऐसे निरपेक्ष सत्य का भान रहता है, अवधान रहता है। **A quality of awareness envelops your whole being** - तो, निरपेक्ष सत्य का भान या अवधान और सापेक्ष सत्य में शरीर, मन, बुद्धि से होनेवाले कर्म-व्यापारों की वे "सापेक्ष-से हैं" कहकर उपेक्षा नहीं करना - इस प्रकार मनुष्य, निरपेक्ष सत्य (**Absolute Truth**) व सापेक्ष सत्य (**Relative Truth**) - इन दोनों से संबंधित रहता है।

संवेदनशीलता को जो प्रतीत होता है, वह जीवन का निरपेक्ष सत्य, जो प्रतीकों के और शब्दों के परे है; जो नाम, रूप, दिक्, काल - इनके परे है, उसकी प्रतीति है - अनिर्वचनीय, अनिर्वर्णनीय ! 'प्रतीति हुई' - इतना ही कह सकेंगे; बहुत ही कहना हो, तो 'उस प्रतीति में प्रकाश का आभास हुआ' - ऐसे कह सकेंगे। अरे, किन्तु कैसा था प्रकाश ? सूर्य-प्रकाश के समान ? चन्द्र-प्रकाश के समान ? अष्टमी की चाँदनी जैसा ? - 'नहीं, व्यक्त करने नहीं आता। 'वह प्रकाश पदार्थगत न रहने से और वह सत्ता का स्वभाव ही रहने से आपके एक इन्द्रिय से दिखनेवाले व प्रतीत होनेवाले ये जो प्रकाश हैं, उनके साथ उसकी तुलना नहीं हो सकती', इतना कह सकेंगे। तो, एक ओर उसकी प्रतीति, उसमें आनेवाली सभानता, सजगता, सावधानता और दूसरी ओर जो नाम-रूप-दिक् - काल, इनकी चौखट में व्यक्त होकर 'भूत' होकर, (भवति-भूतः) रहता है वह - इसका भान ! दिक्-काल की चौखट में - frame work में जो आया, उसे 'भूत' कहते हैं; प्राणों से धारणा होती है, इसलिए 'प्राणी' कहते है और अनेकानेक गतियाँ होने के कारण 'जगत' कहते हैं।

जीवन की शैली

तो, सापेक्ष का सौन्दर्य भी देखें और निरपेक्ष का अवधान खोने न पाएँ, ऐसा एक इन्द्रियगत संतुलन व चित्तगत समता - ऐसा आयाम,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

- dimension of consciousness and the new dynamics of relationship with the limited, with the conditioned world - हममें जागृत होता है, देखो ! 'The awareness of the unconditioned and the capacity to be with the conditioned, without stimulating the relationship of ownership and possession and developing patterns of reactions towards it' - ऐसी जीने की एक अलग-सी, निराली-सी शैली निर्माण होती है ।

तो, 'ध्यान' कहो, या ध्यान स्थिर होने के पश्चात् रहनेवाली 'समाधि' कहो, ये समस्त जीने की नई शैलियाँ हैं; चेतनाओं के नये आयाम, संबंधों के नूतन आधार व जीने का नया ढंग ! - और आज हमें यही चाहिए है न ! नया मनुष्य चाहिए, नया मानव चाहिए ! A new quality of human being चाहिए ! इसका मतलब क्या है ? चेतनाओं का नया आयाम ! पश्चिम के विचार पूर्व से तथा पूर्व के विचार पश्चिम से ऐसा कुछ जोड़कर, जुटाकर यह निष्पन्न नहीं होगा ! A patch-up integrated whole करने पर भी कुछ नहीं होगा ! आज आवश्यकता है - **A 'homogeneous wholeness of life', A 'homogeneous wholeness of beingness' and the 'dynamics of wholeness'** - की; इसीलिए यहाँ इकट्ठे होते हैं, अध्यात्म के संबंध में बातें करते हैं । उस 'मौन' मेंसे या 'ध्यान' मेंसे कुछ छोटी-मोटी शक्तियाँ जागृत होतीं हों, शरीर या मन की अनुभूतियाँ आतीं हों, उनका मादक सुख, मोहक सुख यही यदि निष्पन्न होनेवाला हों, तो यहाँ आकर उसकी चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है, जी ! तंत्र-शास्त्र, हठ-योग, कर्म-योग तथा भक्ति-योग - इन पर लिखे हुए ग्रंथ हैं, उनके निष्णात लोग हैं, उनकी क्रियाएँ-प्रक्रियाएँ हैं, वे सब आप जाकर देख सकते हैं, शक्तियाँ जागृत कर सकते हैं, अनुभव प्राप्त कर सकते हैं ।

किन्तु, हम अनुभूति व अनुभविता, इनके भी परे होनेवाला विश्व निहारने निकले हैं; अतः यहाँ आकर अध्यात्म की चर्चा और समस्त गतियों का शमन होने के बाद, वे सब शांत होने पर, होनेवाला ऊर्जाओंका प्राकट्य -

" तुरियेचे तारुण्य, उन्मनीचे लावण्य,
अनादि अगम्य परमतत्त्व । "

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञानदेवजी ने कहा है - वह उन्मनी का सौन्दर्य, तुरीया का तारुण्य, अनादि-अगम्य जो तत्त्व है, उसका प्राकट्य - यही आयाम है। **The state of meditation is the unpolluted menifestation of the beingness of the cosmos, of the Is-ness of life** अतः उस संबंध में कहना है।

मुझे अति आनंद होता है कि कल से इस वैज्ञानिक विषय पर मैं कह रही हूँ, फिर भी आप अत्यन्त शांत भाव से श्रवण कर रहे हैं तथा 'सर्वांगाचे करूनी कान ! अवधान दीजे' - ऐसी मन की समग्र एकाग्रता आपने लगाई है, इससे बड़ी प्रसन्नता हुई। आप सबको प्रणाम !

"उस वैश्विक चेतना का धर्म है शिष्यत्व धारण किये हुए व्यक्ति को सहाय देना, जैसे सूर्य का धर्म प्रकाश है। ऐसे गुरुपद में स्थित व्यक्ति से शिष्यत्व की दशा- -वाले व्यक्ति का मिलन घटित होता है, जीवन वह करा देता है। या तो उस व्यक्ति को आपके दरवाजे पर ले आये जीवन, या आपको वहाँ पहुँचा दे। संयोग होता है, सम्पर्क आता है। कभी उपस्थिति-मात्र से, कभी वाणी के शब्दों से, कभी स्पर्श से, कभी चर्चा से - आपकी जो कुण्ठा थी, जहाँ आप रुक गये थे, ठिठक गये थे, वहाँ से आपको आगे बढ़ा देता है जीवन, उस संयोग के परिणामस्वरूप। आपके हाथ में दीपक था, बत्ती थी, उसमें तेल भी भरा था, (उन्मुख चेतनावाला देह था ही) कमी थी बस प्रज्वलित दीपक की लौ के स्पर्श की ! – नन्हीं-सी वह लौ (शिखा) – छुई न छुई – ज़रा-सा छूते ही वह केवल बत्ती भी शिखा हो जाती है। इसी तरह गुरुपद में स्थित व्यक्ति से चेतना का स्पर्श होते ही रुकावटें दूर हो जाती हैं, यह चेतना की अवस्थाओं का मिलन है। (The learning & the understanding is taking place between the two.) उसी पलभर के मिलन में इन दो चेतनाओं के बीच यह सीखने-समझ लेने की घटना घटित होती है।"

["जीवन सौरभ" मेंसे]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन चतुर्थ

राष्ट्र, समाज व साधना

प्रश्न : आज की राष्ट्रीय व सामाजिक परिस्थिति अंत:साधना के लिए अनुकूल नहीं, प्रतिकूल हैं, ऐसी स्थिति में आत्मोन्नत व्यक्ति के चित्त में एक द्वन्द्व खड़ा रहता है कि समाज की समस्याओं और प्रश्नों के लिए संघर्ष करें या अंतर्मुख होकर साधना करें ?

विदेशों में साधना के अनुकूल परिस्थिति

उत्तर : यह सत्य है कि भारत से ज़्यादा युरोपियन या अमेरिकन देशों में या फिर ऑस्ट्रेलिया, न्यूझीलॅण्ड जैसे जो देश हैं, वहाँ आत्मसाधना के लिए परिस्थिति अनुकूल है। कारण अनेक हैं। भौतिकवादी दर्शन, भोगवादी मनोदशा और अहं-केंद्रित व्यक्तिगत जीवन - इन सबके दुष्परिणाम और उनमें रहनेवाले अंतर्विरोध - यह सब उन देशों के सुज्ञ लोगों की समझ में आया है और विशेष रूप से युवा-समाज की समझ में प्रकर्ष से आया है।

दूसरा कारण ऐसा है कि विज्ञान और यंत्र-विज्ञान के लोभ से, उन्होंने जो समाज-रचना, अर्थ-नीति, अर्थ-तंत्र तथा राज्य-व्यवस्था निर्माण की है, उन सबके दुष्परिणाम उनकी समझ में आये हैं; अतः बुद्धि के परे कुछ है क्या ? - इसकी खोज वे लोग प्रामाणिकता से कर रहे हैं। विज्ञान, यंत्र-विज्ञान का प्रयोग करने पर सृष्टि, पर्यावरण - इनसे सुसंवादी संबंध जोड़ने नहीं आया। यंत्रशक्ति का, औद्योगिक शक्तियों का केन्द्रीकरण, आर्थिक व राजनैतिक सत्ता का केन्द्रीकरण - इनके कारण जो पद्धतियाँ आईं; उनमें शोषण और विषमता अंतर्भूत हैं, यह उनकी समझ में आ गया है। तो प्रश्नकर्ता के प्रश्न में थोड़ा-सा तथ्य है।

अन्य देशों में आत्म-जिज्ञासा, ब्रह्म-जिज्ञासा, सत्य-जिज्ञासा, वैकल्पिक जीवन-पद्धति की जिज्ञासा - यह सब देखने को मिलता है। आपको आश्चर्य लगेगा (या शायद नहीं भी लगेगा) कि पूर्व युरोपियन देशों के लिए हमारे जो ध्यानकेन्द्र पोलॅण्ड में हैं, वहाँ शिबिर होते हैं, और उस समय युगोस्लाविया, झेकोस्लोवाकिया, रूमेनिया, रशिया आदि देशों से जिज्ञासु आते हैं। तो, पूर्व युरोपीय, पश्चिम युरोपीय देशों में अनुकूलता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब हम भारत की तरफ देखते हैं । अंतःसाधना के लिए भारत में परिस्थिति प्रतिकूल क्यों है ? प्रश्नकर्ता कहते हैं कि राष्ट्रीय एवं सामाजिक परिस्थिति असुरक्षित है । किस कारण आई यह राष्ट्रीय असुरक्षितता ? अध्यात्म को बुद्धि की अड़चन नहीं है । जहाँ तक बुद्धि ले जाती है, वहाँ तक वह ले जायें । और जहाँ तक शब्द साथ दे सकते हैं, वहाँ तक उनकी संगत स्वीकारना हमारा धर्म है ।

असुरक्षितता के कारण : देश को गिरवी रखा जाना

राष्ट्रीय असुरक्षितता का कारण देश के बाहर देखना हो, तो प्रमुख कारण यह है कि सन् १९४७ के पश्चात् देश के विकास के लिए, पंचवार्षिक योजनाओं के लिए यह देश भीख माँगता फिरा । इस देश की सरकार, जो औद्योगिक नेता हैं वे, कोई कंपनियाँ होगीं वे, - सब भीख माँगते रहे । पचास हज़ार करोड़ रुपयों से अधिक कर्जा है इस देश के सर पर ! दस हज़ार से बारह हज़ार करोड़ रुपये प्रति वर्ष ब्याज में भरने पड़ते हैं और यह ब्याज भर नहीं सकते, इसलिए ब्याज भरने के लिए नया ऋण हम लेते जा रहे हैं । पूरा देश मानो गिरवी रखा गया है विकास के नाम पर ! लेकिन अमेरिका, दक्षिण अमेरिका - इनकी भी यही स्थिति है, और कहीं इन्हीं की कतार में जाकर हमें भी बैठे रहना पड़ेगा नहीं न, ऐसा भी भय लग रहा है ।

असुरक्षितता का दूसरा कारण है कि अपने देश का उद्योग-व्यवसाय - Private sector, public sector - ये सब multinationals के हाथों में लगभग जा ही चुके हैं; किन्तु इससे भी भयानक बात यह है कि हम जिसे International Mafia कहेंगे, उसका प्रवेश केवल लोक-सभा और विधान-सभाओं में lobbies बनाने तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि जितने भी economic concerns हैं, उद्योग-व्यवसाय हैं, उन सभी में उनका प्रवेश हुआ है । यह एक नागचूड़ हैं ! महाभयंकर नागपाश है यह, International Mafia का !

विदेशी दबाव

असुरक्षितता का तीसरा कारण है, हमने अपना एकमेव हितकर्ता रशिया को माना है । उसकी आकांक्षा है कि अमेरिका चीन से मैत्री कर के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विश्वशान्ति की प्रस्थापना करे। जब मिखाईल गोर्बाचेव 'पेरेस्त्रोईका' व 'ग्लासनोस्त' के संबंध में कहता है, तब वह प्रामाणिक है और उसका भगीरथ पुरुषार्थ हमारे देश में भी चल रहा है; किन्तु अमेरिका और चीन से मैत्री रहने के कारण, पाकिस्तान और चीन के साथ अपमानास्पद रहा तो भी, भारत समझौता व सुलह करे - ऐसा pressure भारत-सरकार पर गत दो वर्षों से रशिया ला रहा है, यह आप ध्यान में रखें। मुझे यहाँ विदेशनीति के संबंध में कहना नहीं है किन्तु राष्ट्रीय असुरक्षितता का स्वरूप कितना गंभीर है, यह संक्षेप में आपके निदर्शन में लाना है।

आइये, अब हम अपने देश में प्रवेश करेंगे।

गरीबी की व्याप्ति

असुरक्षितता है याने क्या ? इसका आशय तो समझ में आना चाहिए, implications समझ में आने चाहिए, जिसके बाद उसमें क्या अनुकूलता और क्या प्रतिकूलता है, इसको ढूँढ निकाल सकते हैं ! स्वतंत्रता के ४० वर्षों के पश्चात् इस देश में ४५ प्रतिशत लोगों को गरीबी-रेखा के नीचे जीना पड़ता है, below the poverty line, merely on starvation line, ४१ प्रतिशत लोगों को पीने का पानी नहीं मिलता; कईं करोड़ युवा और अन्य लोग बेकार हैं; दो करोड़ से भी अधिक किं बहुना, ४ करोड़ लगभग लोगों को रोज़ी-रोटी मिलती नहीं। ऐसे देश में राष्ट्रीय एकता और सुरक्षितता टिकेगी कैसे ? ऐसी परिस्थिति में ८० करोड़ जनसंख्या के इस देश में ४० करोड़ की यदि सेना बनाएँ तो भी व्यवस्था व शान्ति - law and order टिकना संभव नहीं।

एकता व अनेकता का समन्वय

असुरक्षितता का एक और कारण ऐसा है कि हज़ारों वर्षों से अनेक धर्म व धार्मिक संप्रदाय एक-दूसरे के साथ इस देश में रहते आये हैं। भाषाएँ जीतीं रहीं, प्रादेशिक अस्मिताएँ जीतीं रहीं। यह जो प्रादेशिक अस्मिताओं की, भाषिक (भाषागत) अस्मिताओं की, संप्रदायों की, संघटित धर्मों की विविधता है, इस विविधता को राष्ट्रीय एकता से कैसे बाँधें और वह भी यह समझ-बूझकर की राष्ट्रीय एकता का भी नुकशान न हो और इस विविधता की विशिष्टताओं का भी ह्रास न हों ! पर अब तक ऐसी कोई युक्ति नहीं मिली। एकता और विविधता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में विरोध का कोई कारण नहीं है। एक-दूसरे का नाश करने की कोई आवश्यकता नहीं है। 'unity is diversity ! इस विविधता को नष्ट करो, uniformity निर्माण करों' -ऐसा अगर कोई कहें या यह आकांक्षा अगर कोई रखता हों; तो यह इस देश में संभव नहीं। हमें वैचारिक व भावनात्मक स्वाधीनता की बड़ी आदत और लालसा भी है, उसको त्याग कर uniformity का डंडा यदि कोई हमारी पीठ पर मारने लगे, तो वह हमें सहन नहीं होगा। इस एकता और अनेकता का मेल करना, समन्वय करना अभी तक बाकी है; अतः एव (इसके कारण भी) असुरक्षिततता है।

'पक्षसत्ता' का अर्थ 'लोकशाही' नहीं

हमारे पूर्वजों ने बहुत सोच-विचार किया और प्रातिनिधिक जनतंत्र की स्थापना घटना (रचना) - परिषद ने की; किन्तु विचार ही नहीं किया गया कि 'जन' याने क्या ? 'जन' को कैसे निर्माण करें ? 'प्रतिनिधि' याने क्या ? उनकी जिम्मेदारियाँ क्या हैं ? वे लोगों के संबंध में अपना दायित्व कैसे निभाएँ ? राजनैतिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण कैसे करें ? - इन चीजों का मूलतः विचार ही नहीं हुआ, और जन-प्रतिनिधियों का तो ठिकाना ही नहीं ! चुनाव शराबियों के अड्डे समान सट्टा और जूआ खेलने के अड्डे बन बैठे ! राजनैतिक पक्ष राष्ट्रीय नहीं रहे, उनमे गुट बनें और गुटों की हुकूमत रही, पक्ष की नहीं ! और गुटों में व्यक्तियों की, घरानों की सत्ता; यह सब प्रारंभ हुआ। पक्ष-सत्ता और प्रतिनिधि-शाही याने 'लोकशाही' नहीं। तो, लोकतंत्र खड़ा रहना चाहिए। अभी भी anti-people economy, anti-poeple adminsitration चल रहा है; तो सुरक्षितता आएगी कहाँ से ?

शिक्षा-पद्धति अभारतीय है

चौथा कारण है अभारतीय शिक्षण-पद्धति। राजकीय स्वतंत्रता के पश्चात् मुख्य बात जो होनी चाहिए थी, वह यह थी कि लॉर्ड मेकॉले द्वारा प्रारंभ की गई शिक्षण-पद्धति तत्काल बंद कर देनी चाहिए थी। जैसी घटना (रचना) -परिषद (संविधान-परिषद) पहले बनी थी, उसी प्रकार इस देश की 'भारतीय-संस्कृति' वास्तव में क्या है ? इस संस्कृति ने दिये हुए मानवी मूल्य कौन-से हैं ? उन मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा जनता में करने के लिए शिक्षण-पद्धति कौन-सी रहे ? विद्यालयों का स्वरूप क्या रहे ? शिक्षक व विद्यार्थियों के संबंध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कैसे रहें ? - इन समस्त बातों का पुनर्विचार प्रारंभ में ही होना चाहिए था, पर वह हुआ नहीं ।

अभारतीय शिक्षण-पद्धति और अभारतीय संस्कृति अभी भी चल रही है । भारतीय-संस्कृति भोगवादी, पदार्थ-परायण तथा भोग-परायण नहीं । वह जीवनपरायण संस्कृति है । वहाँ मानव का स्थान सर्वश्रेष्ठ है । 'मानुषात् परम' कुछ नहीं । 'न मानुषात् परं किञ्चित् ।' जीवन के आविष्कार व अभिव्यक्ति में, यह जो मानवाकार अभिव्यक्ति है, यह सर्वश्रेष्ठ है । उसमें रहनेवाली संभावनाएँ अगणित व अतर्क्य हैं, अगम्य हैं । मानव की मानवता, उसमें रहनेवाली संभावनाओं का विकास, परिपोष और विनियोग योग्य रूप से हों, ऐसे मानवीय मूल्यों के आधार पर समाज-रचना, शासन-व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था खड़ी होनी चाहिए; किन्तु कहीं भी हुईं नहीं; अतएव आज देश में भौतिकवाद के दर्शन पर आधारित भोगवादी मनोवृत्ति और अभारतीय संस्कृति - ये एक तरफ, और दूसरी तरफ भारतीय संस्कृति की सनातन का जिन्हें भान है तथा उसके निहित मानवीय मूल्य और मानवों का स्थान - इनकी जिन्हें समझ हैं - ऐसी दो मनोदशाओं की टक्कर है । दो संस्कृतियों का संघर्ष चल रहा है इस देश में !

भौतिकवादी, भोगवादी संस्कृति के पीछे इस देश की राज्यसंस्था का sanction खड़ा है; मान्यता, सहायता, प्रोत्साहन खड़ा है और दूसरी ओर भारतीय संस्कृति चाहिए, उसपर आधारित शिक्षण-पद्धति आनी चाहिए, ऐसा चाहनेवाले जो लोग (लाखों होंगे) हैं, वे संघटित नहीं हैं । 'सत्यमेव जयते' सच बात है, परंतु सत्य की संघटित शक्ति प्रकट नहीं हुई, तो सत्य की विजय नहीं होगी ।

शक्ति बिना सत्य की विजय नहीं होती

सत्य को संघटित होकर असत्य से सामना करना पड़ता है । अधर्म की, अन्याय, अनीति की शक्ति संघटित है और जो सज्जन हैं, वे इधर-उधर बिखरे हुए, छितरे (बिखरे) हुए, विश्रृंखल ! धर्म-निष्ठ, अध्यात्म-निष्ठ, सज्जन, सदाचारी, सन्निष्ठ, भगवत्-परायण - ऐसे नागरिक कम नहीं होंगे इस देश में, किन्तु वे संघटित नहीं हैं । अपने-अपने स्थानो में तड़पते हैं, घुटघुट के जीते हैं, दुःखी रहते हैं, हताश-निराश होते हैं; उनमें किसीसे टकराने की शक्ति नहीं है और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शक्ति के बिना मुक्ति नहीं। असुरक्षितता का यह एक और कारण है।

हमने संक्षेप में राष्ट्रीय व सामाजिक असुरक्षितता के कारण देखें। मैंने आपको असुरक्षितता, अनिश्चितता का अर्थ मालूम हो, इसलिए यह विस्तार किया। हमारी दृष्टि से अध्यात्म जीवन की समग्रता को अपने आश्लेष में लेता है। जीवन के किसी भी भाग का विचार करना, उसके प्रश्न सुलझाना यह अध्यात्म-विरोधी नहीं है। आत्म-साधना का ही वह एक अविभाज्य हिस्सा है और उसकी अनिवार्य ज़िम्मेदारी है।

ऐसी यह परिस्थिति अंत:साधना को अनुकूल नहीं; मान्य करती हूँ। अर्थात् It is not supportive, encouraging or appreciative - साधना के लिए इस स्थिति की कोई सहायता नहीं, उसमें साधना की क़दर होनेवाली नहीं और प्रोत्साहन मिलेगा नहीं; तो फिर क्या आप राह देखते रहनेवाले हैं? या ऐसा कोई आत्म-साधना का वेयक्तिक व सामूहिक माध्यम एवं पद्धतियाँ हम ढूँढेंगे कि, जिसमें आत्म-साधना और समस्याओं का निराकरण - ये दोनों समाविष्ट किये गये हों! - यह एक बहुत बड़ा आह्वान है, challenge है।

आह्वान यह संकट नहीं होता; challenge are not problems. मनुष्य के लिए मृत्यु के पश्चात् उसे कोई भी आह्वान नहीं रहता, समस्या, प्रश्न नहीं रहते। प्रतिदिन नये प्रश्न! यह तो जीवित मनुष्य का लक्षण है! जीवितता को यह आह्वान है और इसलिए ऐसे आह्वानों को संकट मत समझिये तथा इस कारण हताश अथवा निराश मत होइये। एक बार उन्हें 'संकट' या 'समस्या' कहें तो 'संकट', 'समस्या' इन शब्दों का बोझ चित्त पर रहता है। The word 'problem' creates its own neurological pressure and chemical depression in you. और यदि उसे 'आह्वान' कहेंगे तो it provokes the creative energies; अत: शब्दों को चाहे-जैसे उछालने से नहीं चलता। शब्दों का प्रयोग सावधानी से करना चाहिए।

आत्मा प्राप्तव्य वस्तु नहीं

क्या करना चाहिए, जी! अंत:साधना या आत्म-साधना में? आत्मसत्ता या परमात्मा यह कोई प्राप्त करने की वस्तु नहीं है। जो स्वयंभू, स्वयंसिद्ध, सहजसिद्ध एवं अनादि काल से है ही; 'थी' और 'नहीं' ऐसे क्रियापद जिसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लगा नहीं सकते, ऐसे इस वैश्विक प्रज्ञात्मिका सत्ता के 'होनेपन' को हम 'परमात्मा' कहते हैं। उसे प्राप्त करना नहीं है या ढूँढना भी नहीं है, क्योंकि वह कहीं छिपा हुआ नहीं है। जैसे ब्रह्मांड में सत्ता है, वैसे ही वह पिंड में, शरीर में भी है। आप निद्रा को लाते नहीं, वह आती है। स्वासोच्छ्वास आप करते नहीं, वह प्रक्रिया जन्म के क्षण से ही है ! आपने विचारपूर्वक, संकल्पपूर्वक उसका प्रारंभ किया हुआ नहीं है। आप उसके साथ प्राणायाम को जोड़ेंगे, breathing exercises करेंगे। Permutation and combination करेंगे, वह आप की इच्छा का प्रश्न है। आप अन्न को पचाते हैं क्या ? आप अन्न खाते हैं, व्यवस्थित खाने की कला साध्य होगी, तो ठीक चबा-चबाकर शान्ति से खाते हैं, केवल निगलते नहीं। इतने में ही आपका पुरुषार्थ है, प्रयत्न है; किन्तु उसके पश्चात् शरीर की प्रज्ञा - It takes over - वह अन्न को पचाती है, रसों का पृथक्करण करती है, उससे रक्त बनता है, धातु बनते हैं, रस बनते हैं, आँखों में तेज आता है, शरीर में उष्णता का संचार होने लगता है, रुधिराभिसरण ठीक चलने लगता है, पञ्च प्राण कार्यरत होते हैं - यह सब क्या हम करते हैं ? खोज करो न ! कर्तव्य कितना रहता है हमारा, जीवन में ? इस घट में किये हुए विचार, संस्कार, ज्ञान, अनुभूति हमें प्राप्त होते हैं। कुछ समाज ने दिया हुआ, कुछ आपने एकत्रित किया हुआ, इसमें आपका पुरुषार्थ मानना हो, तो मान लो; किन्तु भूतकाल ने दिया हुआ, समाज ने दिया हुआ- ऐसे 'प्रदत्त' अनुभव, संस्कार, ये जो सब हैं, वे भी कार्य करते ही हैं।

'प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति' - इस वचन का गर्भित अर्थ है - संस्कारों में, ज्ञान में, शब्दों में, विचारों-विकारों में जो समाई हुई गति है, वह हमने नहीं निर्माण की, वह व्यक्त होती है, उस समय उसे दिशा देना, उसे channelise करना, परस्पर विरोधी गति हों, तो उसका समन्वय करना - यह अपना पुरुषार्थ है; यह तो ठीक है, परंतु ब्रह्मांड में जिस प्रकार सर्वव्यापिणी वैश्विक प्रज्ञा कार्य करती है, उसी प्रकार वह हमारे शरीर में भी कार्यरत रहती है। आजकल organic intelligence को लोग जानने लगे हैं। शरीर में एक organic intelligence है, brain के अतिरिक्त ! और यदि brain को कुछ धक्का लगा हो, कुछ damage हुआ हो, तो भी वह organic intelligence कार्य कर सकती है, काम करती है, ऐसा डॉक्टरों के देखने में आया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अंत:साधना में हमें आत्मा या 'परमात्मा' को प्राप्त करना तो नहीं है। अरे, जो है ही, उसे प्राप्त कैसे करें, जी ? उसका 'होनापन' पहचानना है; तो अंत:साधना क्या रह गई, जी ? शरीर की आवश्यकताएँ, अपेक्षाएँ जानकर, वैज्ञानिक दृष्टि से उन अपेक्षाओं की पूर्ति करना- कैसा आहार लेना, कितना लेना, कब लेना, किस ऋतु में क्या लेना, अपना जो आर्थिक उपार्जन है, उसमें ही यह सब कैसे बिठाना - क्योंकि अन्न से सत्त्वसंशुद्धि होनेवाली है, अन्न से पिंड बननेवाला है - अत: ऐसी साधना करनी है। अब इस साधना में बाह्य समस्याएँ या प्रश्न जो हैं, प्रतिकूलताएँ हैं, उनका ज़्यादा संबंध आता नहीं; किन्तु शिक्षा प्राप्त कर के, नौकरी करनी है या व्यवसाय करना है, कृषि करना या मजदूरी करना अथवा व्यापार करना - दुकान चलाना है, तो वह अकेला चलाए या दो-चार व्यक्ति मिलकर team work से चलाए, यह सब तय करना पड़ता है; आयोजन, संयोजन करना पड़ता है उसका। कहाँ रहना, कैसे रहना, यह सब निश्चय करना पड़ता है।

समाज आपकी साधना की क्यों क़द्र करेगा ?

यह जो समाज अन्याय, अधर्म पर खड़ा है, उससे हम अपेक्षा करते है कि यह हमारी साधना की क़द्र करे, समाज हमें सहायता करे ! उसे हिंसा-अहिंसा की, न्याय की, नीति की, धर्म की कुछ भी क्या पड़ी है ! अजी, देश के नेताओं को, धर्मगुरुओं को, विश्व-विद्यालयों में बैठनेवालों को, उन्हें चलानेवालों को, शाला-शिक्षकों को उसका कुछ भी नहीं ! तो, आप यह जो जीवन के शुद्धीकरण की साधना कर रहे हैं - 'प्रत्यवायविक्षेपनिवारणार्थे साधना, न तु प्राप्त्यर्थे'। - इस संबंध में किसीने कहा नहीं है कि साधना प्राप्ति का विषय है। .... हाँ ! अगर आपको सिद्धि, शक्ति, प्राप्त करनी हो, अनुभूतियाँ पानी हों; तो फिर वह क्षेत्र अलग; वे फिर ऐहिक अनुभूतियाँ हों, अतीन्द्रिय अनुभूतियाँ हों; उनसे धर्म का-अध्यात्म का कोई संबंध नहीं। वह अहंकार की क्रीड़ा का क्षेत्र है, साहस का क्षेत्र है। जिनकी साहस करने की इच्छा हो, वे करें। कोई आपत्ति नहीं। उसमें जो संकट है, वह समझकर करें। Dangers and risks involved - उन्हें समझकर जिन्हें इस क्षेत्र में साहस करना हो, वे करें। जैसे हम कहते हैं - मकान निर्माण कर देखें, विवाह कर के देखें, पैसा कमाकर देखें - वैसे ही अतीन्द्रिय शक्तियाँ प्राप्त कर, जिन्हें देखना है, वे देखें, - फिर उससे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्माण होनेवाले नाडी-तंत्र के , मन के जो असंतुलन हैं - The various imbalances - Every power stimulated creates an imbalance until it is assimilated by your total being and every imbalance causes impurity, - इसका भी विचार करें। ये शक्तियाँ, ये सिद्धियाँ प्राप्त करना, यह तो अग्नि से खेलना है, जी ! यदि करना है तो कर के देखें। उसका अध्यात्म से, धर्माचरण से कोई भी ताल्लुक़ नहीं है। तो, अंतःसाधना या आत्म-साधना के लिए समाज की स्थिति प्रतिकूल है, इसका अर्थ इतना ही है न, कि आप ऐसी कुछ शुद्धीकरण की साधना करने लगे हैं, काया, वाचा, मन की शुद्धि साध्य कर रहे हैं; तो इस समाज पर अधिक से अधिक आपको अवलंबित रहना न पड़े; इस पर कम के कम अवलंबित रहना पड़े, ऐसी कोई पद्धति आप जीवन में लाए, सादगी लाए, आवश्यकताएँ कम करने लगें, तो लोगों को यह पागलपन लगेगा ! इधर समाज कहता है कि- आवश्यकताएँ बढ़ाओ, आवश्यकता बढ़ाना यह आपकी प्रगति का लक्षण है ! Deficit budgeting का यह जैसा 'National Progress' का लक्षण, वैसे, आवश्यकताएँ बढ़ाने से वस्तुतः व्यक्ति के जीवन में भी deficit budgeting आता है और यह जो साधक है, वह कहता है कि शोषण-मूलक पद्धति से मुझे कम से कम संबंध रखना है। I will take from society as per my needs and I will give to the society as per my capacity. समूचा समाज जब यह सूत्र स्वीकारेगा, तब ही सही बात होगी ! किन्तु लोगों को, समाज को यह पागलपन लगता है ! वे कहते हैं कि अजी ! आप पैसा नहीं कमातें, भ्रष्टाचार नहीं करते, किसीकी ख़ुशामद नहीं करते ?!

आज जहाँ मनुष्य का महत्त्व पैसों से नापा जाता है, सत्ता से गिना जाता है, मनुष्यों को बाज़ार में खड़ा किया गया है, उसका रूप, गुण, बुद्धि, उसकी विद्या – फिर वह स्त्री हो, पुरुष हो – सभी बिक्री की वस्तुएँ हैं; 'commercialisation of whole life' – हुआ है, वहाँ यह साधक commercialisation को छोड़कर दूसरी एक पद्धति अपना रहा है। मैंने कहा उस प्रकार, संस्कृति का संघर्ष है। यह भोगवादी, भौतिकवादी संस्कृति कैसे आपको प्रोत्साहन देगी ? आप कह रहे हैं, उसकी क़द्र वह कैसे करेगी ? तो अंतःसाधना यदि करनी हो, तो परिवार या समाज से प्रोत्साहन की अपेक्षा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न रखें। क़द्र होगी इसकी अभिलाषा न रखें। क़द्र हुई तो प्रभु की कृपा ! प्रोत्साहन मिला तो पूर्व पुण्योदय ! किन्तु यदि परख न हुई, तो वह भी बिलकुल स्वाभाविक ही है !

समय को बाँट लीजिये

अब चलिये प्रश्न के तीसरे भाग की तरफ मुड़ेंगे। इस भाग में ऐसा कहा गया है कि द्वन्द्व है। बाह्य परिस्थितिगत समस्याओं, प्रश्नों से संघर्ष करना है या यह अध्यात्म करना है ? (मैं कहूँगी) दोनों एक ही समय करें। Either this or that नहीं। First this and then that ऐसा भी नहीं। एक साथ दोनों मोर्चों पर काम करना आना चाहिए ! गुजरात में कुछ कार्य होते हैं। आबू में रहती हूँ। वहाँ ९० प्रतिशत लोग गुजराती हैं, संयोग से गुजरात में मेरा संबंध अधिक; तो कई सत्सङ्गी, साधक-मंडली है; जो कार्यरत हैं। उन्हें मैं ऐसा कहती हूँ कि दिन के २४ घंटो मेंसे १२ घंटे आप परिवार व समाज के लिए दे दो व शेष बारह धंटे आप स्वयं के हेतु रखो। रात के ९ बजे से प्रातः ९ बजे तक, नहीं तो रात ८ से प्रातः ८ - यह समय आपके स्वयं के लिए। इसमेंसे सात-आठ घंटे सोने में जाएँगे, शेष तीन-चार घंटे एकान्त के लिए। स्वाध्याय, चिंतन, मनन, भजन, जप व मौन - इनमेंसे जो मार्ग स्वीकार हो, उसके लिए उनका उपयोग करें। निर्धार करना चाहिए कि १२ घंटे समाज-परिवार के लिए; फिर स्नान, भोजनादि, नौकरी, अन्य लोगों से मिलना-झुलना -यह सब इन बारह घंटो में करो, किन्तु शेष १२ घंटे सुरक्षित रखें। ऐसा यदि समय बाँट लेंगे, तो मन पर ज़्यादा भार नहीं पड़ेगा।

साधना का समय-पत्रक

आपकी जैसी रुचि हो, वैसी साधना प्रारंभ करें। प्रथमतः स्वाध्याय तो करोगे न ! अगर आप बुद्धि-प्रधान हो, ज्ञान-मार्ग की इच्छा हो, तो ज्ञान-मार्ग के ग्रंथो का स्वाध्याय करोगे। कोई ज्ञानी जन आसपास में, समाज में, देश में हों, तो उन्हें जाकर मिलोगे, चर्चा करोगे। यदि भक्ति-मार्ग को अपनाना हों, तो जहाँ आप खड़े हो, वहाँ से आरंभ करोगे न ! सन्त-साहित्य पढ़ोगे, 'सन्त चरित्रे परम पवित्रे !' सन्तो के चरित्रों का स्वाध्याय करोगे; कोई सन्त, भक्त आपने सुने हों, तो उनके दर्शन करोगे, सत्सङ्ग करोगे। यह सब करने के लिए समय तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चाहिए ही न ! अतः समय का प्रबंध करेंगे कि मैं १२ घंटे इसके लिए सुरक्षित रखूँगा; तो मन का भार निकल गया, द्वंद्व नष्ट हो गया।

दिन के ये १२ घंटे जैसे रखे हैं वैसे ही, ७ दिनों मेंसे ९ दिन रखें। परिवार को अच्छा लगे या न लगे, उन्हें सुविधा हो या असुविधा, उन्हें शायद जचेगा भी नहीं; यह सब पचाना पड़ता है, जी ! अंदर ही अंदर इसे समा लेना पड़ता है। आप पुरुष हों या स्त्री, आपकी आलोचना करेंगे, कुत्सितता से कहेंगे -बड़े आए साधना करने ! विवाह किसलिए किया ? यह सब करना था, तो विवाह उन्होंने क्यों किया ? किन्तु विवाह से पहले यह ज्ञात नहीं था, अब ज्ञात हुआ। जब से जगे रे भाई, तब से सबेरा ! अतः अब कर रहा हूँ, -ऐसा ठोस उत्तर देने आना चाहिए।

तब अंतःसाधना के लिए सप्ताह में एक दिन यदि निकाल नहीं पाते, तो पक्ष में-पखवाड़े एक दिन निकालें। साधना यह शुद्धीकरण की प्रक्रिया है। An illumination or enlightenment is the by-product of purification. Illumination या Enlightenment यह हमें करना नहीं है, जी; हमें साध्य करना है शुद्धीकरण; फिर इस शुद्धीकरण में आहार की मर्यादाएँ निश्चित करनी पड़ेगी, अतः हम निश्चय करें और कह दें कि मुझे यही साध्य होगा, अन्य कुछ नहीं सधेगा।

हमारे बचपन में हमारे नानाजी (माताजी के पिताजी) थे, और विवेकानंदजी के परम स्नेही ! पाँच सौ लोग घर में। छत्तीसगढ़ के जागीरदार। उनके छत्तीस ग्राम थे। बड़ा व्याप; किन्तु दशहरा, दीपावली, विवाह, मृत्यु, – परिवार में कोई भी प्रसंग रहे, नानाजी के आहार में मैंने कभी अंतर नहीं देखा। उनका जो मित-आहार रहता था, वही वे खाते थे। इसके अतिरिक्त कुछ नहीं; क्योंकि वे साधक थे। मैंने यह दृष्टांत इसलिए बताया कि गृहस्थी में रहकर भी यह किया जा सकता है। उनके चार पुत्रियाँ, दो पुत्र, दामाद, बहुएँ, पौत्र-पौत्रियाँ, सभी घर में रहते थे। कुछ करने पर भगवान के भोग में जैसा रखा जाता है, वैसा उनकी थाली में थोड़ा परोसा जाता था, वे उसको उंगली लगाकर चख लेते थे; किन्तु उन्होंने अपना आहार जो निश्चित किया था, उसकी मर्यादा के बाहर कभी कुछ नहीं लिया। अर्थात् एक Neuro-chemical rhythm in the body gets organized; और फिर शरीर की चपलता, तरलता, स्फूर्ति- इनमें कभी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अंतर नहीं पड़ता। आयु अनुसार परिवर्तन होता रहेगा; पर वह तो शरीर का धर्म है।

वैसे ही वाणी के बारे में : शुद्धीकरण में वाणी की शुद्धि भी करनी पड़ती है। जो मालूम होता है, समझ में आता है, उसे जीने का मैं प्रामाणिकता से प्रयत्न कर रहा हूँ, उतनी ही अन्यों के साथ बातचीत होगी (उससे ज़्यादा बिलकुल नहीं) 'कोरडे फुकाचे बोल न वेचावे'। उधार लाये हुए इधर-उधर के शब्द क्यों किसीको कहें ? बिलकुल न कहें, जो हुआ है वह सत्यता से कहें। मन में जो अभिप्राय हों, उस प्रकार वाणी, और वाणी से कहा हो, वैसा ही आचरण ! अतिशयोक्ति नहीं, अल्पोक्ति नहीं, अन्यथा वचन नहीं। सत्यनिष्ठा से वाणी की शुद्धि होती है।

यह अध्यात्म है, जी ! इस सत्य-धारणा का आपके जप, तप, भजन से भी अधिक महत्त्व है; क्योंकि उस परम सत्य का स्वरूप ही सत्यमय है, चिन्मय है, आनन्दमय है, हमें ऐसी प्रतीति आ जाती है।

सत्य के संबंध में, हमें कोई भी ग्रंथ पढ़े बिना, प्रेम और आदर क्यों रहता है, जी ? सत्याचरणी व्यक्ति के प्रति सहज आदर क्यों होता है ? वह इसलिए होता है कि हममें जो सत्ता है उसका उपादान है वह सत्य। वह जान लेने की, समझने की इतनी आतुरता क्यों होती है ? प्राण में वह जान लेने की अभीप्सा किसलिए ? भीतर का जो जानने और न जानने के परे जो चिन्मय रूप है, 'ज्ञान' व 'अज्ञान', 'विद्या' और 'अविद्या' - इनके परे जो कुछ चिन्मय, प्रकाशमय स्वरूप है, वह हमारी सत्ता का उपादान है; अतः ज्ञान की-आकलन की हमें इतनी पिपासा, अभीप्सा रहती है और आनंद तो कभी-कभार हमारे जीवन में हमारे सर्वांग को भिगो देता है ! सुख और दुःख की चौखट में हम जीते रहें, तो भी अभावितता से (यकायक ही), हठात् किसी समय आनंद उभरता है, अकारण उछलता है और उस आनंद के आलोक से, उसकी प्रभा से, समस्त जीवन अभिभूत हो जाता है।

शुद्धीकरण

तो, हमें साध लेना है- वाणी की शुद्धि - शुद्धीकरण। विचारों से, विकारों से औतप्रोत, लथपथ, शब्दों के कोलाहल में लिपटी हुई, ऐसी जो चेतना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, उसका शुद्धीकरण होता है, मौन से। यह करने के लिए समाज क्यों प्रतिकूल लगता है, जी ? यहाँ समाज की परिस्थिति से हमें कहाँ असुविधा होती है ? आओ ! एक मिनिट में देख लेंगे। इस शुद्धीकरण के लिए जो कुछ करना है, वह सबकुछ हमें ख़ुद को ही करना पड़ता है। ज्ञाताओं-ज्ञानीओं की सहायता उनके शब्दों से होगी, सन्तों का साह्य (सहने को प्रवृत्त करनेवाला सहयोग) उनके प्रेम से होगा ! किन्तु करना पड़ता है स्वयं हम ही को। स्नान स्वयं को ही करना पड़ता है; भोजन स्वयं को ही करना पड़ता है। माता, पिता, पत्नी- हों, वे अगर आपके बजाय भोजन करें, तो आपका पेट नहीं भरता। तो, जैसे स्नान, भोजन हमें खुद को ही करना पड़ता है, वैसे शरीर को शुद्ध रखने तथा जीवन की समस्त शुद्धि के लिए जो प्रयत्न करना पड़ता है, शिक्षा लेनी पड़ती हैं, वे परिश्रम शिक्षणात्मक ही रहते हैं और वे स्वयं को ही करने पड़ते हैं। उनको हम 'साधना' कहते हैं। वे सिद्धि के लिए नहीं रहते।

तो, व्यक्ति गृहस्थी न हों, तो सप्ताह में एक दिन निकालें; गृहस्थी हो, युवा हो और सप्ताह में एक दिन सधता न हो तो, पक्ष में एक दिन निकाले। उस दिन पानी पीके रहे, यदि संभव न हो, तो दूध पीकर रहे, मौन रखे, अकेले रहे। घर के बाहर, जहाँ कोई आपको 'पति', 'पत्नी', 'बहन', 'भाई', 'पुत्र' - ऐसा संबोधन करनेवाला ही न हो; कोई दायित्व नहीं, संबोधन नहीं, ऐसे किसी भी वातावरण में अकेले, या यदि मित्रवर्ग like-minded-persons ऐसे जिज्ञासु हों, तो दो-चार मिलकर जायें। कहीं नदी किनारे, सरोवर तट पर, पर्वतों की तलहटी में, वन-उद्यान में - ऐसे किसी स्थान में जाकर बैठें। यदि उपवास साध्य न होता हो, तो साथ में थोड़ा-सा उपाहार रखें। स्वाध्याय करें, मौन में बैठें, सृष्टि के साथ एकरूप हाइये। सृष्टि से रहे हुए संबंध को भी जगाना पड़ता है ! उससे पोषण प्राप्त करने जैसा अवसर शरीर को देना पड़ता है; मौक़ा देना पड़ता है। अब मुझसे कहो कि इस साधना में राष्ट्रीय सुरक्षितता व सामाजिक परिस्थिति का द्वन्द्व बीच में नहीं आया न ?!

सामाजिक कर्तव्य

समस्याओं का परिहार करने के लिए, प्रश्नो कों सुलझाने के लिए समय देना होता है। समाज़ से हम अन्न, वस्त्र, आच्छादन, आरोग्य, शिक्षा - यह सब लेते हैं। तब मुझे लगता है कि सख्यमूलक, सहयोग-परायण, संघटित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुरुषार्थ ही हमें साधना के लिए अनुकूल ऐसी समाज सेवा करने देगा। आज परंपरागत पद्धति से कार्य करनेवाली जो संघटनाएँ हैं, इनके द्वारा यह होना संभव नहीं; क्योंकि व्यक्ति-निष्ठ, संप्रदाय-निष्ठ, प्रभुत्ववादि, धनाधारित संघटनाएँ हों, तो वे एक structure निर्माण करती हैं, इनका एक ढाँचा खड़ा होता है और हमें उसके साथ अपने आपको बाँध लेना पड़ता है, इतना ही नहीं तो, कोई न कोई आदर्शों से और ध्येयों से बँधीं हुईं जो सघटनाएँ, संस्थाएँ होतीं हैं, they expect from you exclusive loyalty to their selected chosen aims and objectives, their mechanical methodology of functioning and the relationship based on employer and employee. क्योंकि पश्चिम से हमने इसे लिया है। पहले इस देश में यह नहीं था। मुगलों के, मुसलमानों के ज़माने तक सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी तक भी यह नहीं था। उसके पश्चात् पिछले दो-तीन वर्षों से यह संस्था-संघटनाओं के द्वारा समाज-सेवा की कल्पना हमने अपनाई! यह परंपरा मिटानी पड़ेगी। मालिक, स्वामी और सेवक - ये संबंध आज की युवा पीढ़ी स्वीकार नहीं करेगी।

'यह संस्था मैंने प्रारंभ की, मैंने पाँच लाख रुपये या पाँच करोड़ रुपये दिये; इसलिए मेरी इच्छानुसार, मेरे कहने के अनुसार होना चाहिए। मेरी जो राजनैतिक अभिसंधि हों, उसके अनुसार होना चाहिए' - ऐसे प्रकार यहाँ होते हैं। मुझे ऐसा लगता है कि व्यक्ति-निष्ठ, संप्रदाय-निष्ठ व ध्येय-निष्ठ संस्थाओं के दिन अब ख़त्म होने को आए हैं organization and institutions have had their day, they have had it. अतः सामूहिक पुरुषार्थ जो करना है, उसकी नई कार्यशैली हमें ढूँढनी है। उदाहरण के लिए कहती हूँ आपको। इस देश में शोषणमूलक अर्थ-नीति और अर्थ-तंत्र है तथा यह जो भ्रष्टाचार चलता है, रिश्वतखोरी चलती है, इसका भी हमें अंत करना है; तो फिर हमें अर्थात् ऐसे साधकों को एकत्र होकर संयुक्त उदरनिर्वाह का ऐसा साधन ढूँढना पड़ेगा कि जिसमें घूस लेने-देने का सबंध नहीं आयेगा। हमें unearned income नहीं चाहिए! हम रिश्वत नहीं लेंगे। भ्रष्टाचार की जो पद्धति है, उसे हाथ नहीं लगाएँगे, - अतः श्रीमंत बनने की वासना का हम त्याग करेंगे; ऐसा उन्हें निश्चय करना पड़ेगा।

वैराग्य, त्याग इनके अर्थ भी सामाजिक संदर्भ के अनुसार बदलते रहते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं और बदले हुए अर्थ को जान लेना - समझ लेना चाहिए। सिर्फ़ गेरुए रंग के कपड़े ड़ालने से वैराग्य या त्याग नहीं होते; 'पैसे माँग कर, बड़ी-बड़ी रकम एकत्रित करके, collecting funds, धनाधारित होकर, हम हमारा कार्य चलाएँगे' - यह अब नहीं चलेगा, 'धनाधार' कम करके 'जनाधार' बढ़ाना। सख्य के आधार पर लोग एकत्रित हों, व्यक्ति-निष्ठा के आधार पर नहीं और psychology of co-operation, not of competition and confrontation - इस तरह के विचार लिख कर अति सरल, सादी भाषा में ग्यारवीं-बारहवीं कक्षा में पढ़नेवाले बालकों से कहना प्रारंभ करें। इससे भी छोटे बालकों से प्रारंभ करना मुनासिब हों, तब तो और भी अच्छा ! विचार ले के जाएँ लोगों तक। मनुष्य के पास आत्मशक्ति के पश्चात् यदि कोई शुद्ध शक्ति है, तो वह विचारों की है। विचारों के द्वारा आत्मशक्ति भी जागृत हो सकती है। तो, विचारों का प्रचार करें, प्रयोग करें। Dodging the state and the state agencies, not opposing them, neither begging from them; ऐसा यदि करने आया, तो मुझे लगता है कि उस अंतःसाधना या आत्मिक-साधना में कहीं कोई बाधा नहीं आयेगी।

सफलता-विफलता को महत्त्व नहीं देना है

हम प्रतिकूल परिस्थिति में कार्य कर रहे हैं, अतः उसके परिणाम हमें अल्प समय में नहीं दिख सकते। साधकों के जीवन में 'सफलता-विफलता' ये शब्द नहीं रहते; क्योंकि उसके लिए यश की एक ही कसौटी रहती है कि मेरी चित्त-शुद्धि हुई या नहीं ? मेरे जीवन की शुद्धि हुई या नहीं ? मेरा साथ देनेवाले लोगों की जीवन-शुद्धि के बीच तो मैं आया नहीं न ? इनका तो कहीं मेरी ओर से अहित नहीं हो रहा है न ? यश व अपयश की कसौटी कार्यकर्ताओं की अलग और जीवन-साधकों की अलग ! वह जीवन का साधक है। उसे सामाजिक संबंधों के वैकल्पिक आधार खोजना है और व्यक्ति की वैकल्पिक मनोदशा ढूँढनी है। जो आज अहं-केन्द्रित, भय-ग्रस्त, महत्त्वाकांक्षा से ग्रस्त मनोदशा है, इसकी जगह एक वैकल्पिक पद्धति खोजनी है, जो प्रसन्न व भयरहित रहेगी, और इसी कारण जो प्रशांत रहेगी। चित्त की जैसी दशा होती है, वैसी वह कार्य में प्रतिबिंबित होती है। कार्य की गुणात्मकता कार्य करनेवाले व्यक्ति की चित्त-दशा से अत्यन्त निगूढ रीति से जुड़ी हुई रहती है; तब साधकों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को अपने यश का मूल्यमापन अपनी अंतर्दशा से लगाना पड़ता है ।

जीवन-शुद्धि व चित्त-शुद्धि के लिए हम जो कुछ करते हैं, उसकी मानसिक फलश्रुति प्राप्त हो, ऐसी फलासक्ति भी साधक के जीवन में नहीं रह सकती । कर्म करने को मिलता है यही **fulfilment of life. The opportunity to act, the opportunity to unfold your inner being, your concern for the people, for the underdog, for the down - trodden** (पिछड़े-दलितों) **, for the exploited** (शोषितों)**. The opportunity to work is the grace of the Divine on you.** फिर अगर यह है, जीवन का अनुग्रह है कि ऐसा काम करने की प्रेरणा मुझे हो रही है, मेरी बुद्धि में वैसी शक्ति है और मेरे चिंतन में वह बल है - इतना बड़ा यदि जीवन का अनुग्रह रहा, तो फिर उस कर्म के पश्चात् लोग मेरी प्रशंसा करें, मुझे प्रतिष्ठा मिले, यह मन में आयेगा ही कैसे ?

प्रत्येक कर्म प्रभुपूजा का पुष्प है !

यह 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' रहने से, कहीं भी, किसी के लिए भी काम करते रहें, तो भी वह ईश्वरार्पण ही है । प्रत्येक कर्म यह प्रभुपूजा का पुष्प ही है । प्रेम से मैं जो भी सत्य-कथन करता हूँ, सत्य को धारण करता हूँ, यह सब मेरा भजन, पूजन व अर्चन ही है ! Do you see a different dynamics ? उससे - जीना और जीने का कर्म - **it becomes its own fulfilment.** कर्म में ही परितृप्ति रहने से उसके परिणामस्वरूप हमें क्या प्राप्त होता है और क्या नहीं, यह मन में आयेगा ही कैसे ? किसीको ईर्ष्या होती है, किसीको द्वेष होता है; यह सब होनेवाला ही है । विविधता, विलक्षणता, विचित्रता - इन सबको पोंछ नहीं सकते । ये सारा मनुष्य की चेतना में रहेगा ही । संस्कारों की भिन्नता रहेगी ही । क्या आप steam-roller चलाकर करोड़ों मनुष्यों की चेतना एक ही समय में, एक जैसी, एक ही कक्षावाली करना चाहते हैं ? ऐसा नहीं हो सकता । अत: सॉक्रेटीस को ज़हर पीना पड़ा, नाझरेथ के उस युवक-येशु को सूली पर चढ़ना पड़ा; दादा धर्माधिकारी, विनोबा, जवाहरलाल, जयप्रकाश - इन्हें जीवन के १४-१४ वर्ष कारावास में बिताने पड़े । दिन में एक ही समय भोजन करके रहना पड़ा । आगरकर, तिलक, गोखले, डॅक्कन एज्युकेशन सॉसायटी निकालनेवाले - सब कैसा जीवन बिताते थे ? किन्तु उन्हें वह प्रतिकूल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लगा ही नहीं । तो, standard of living, the fulfilment in terms of wealth and prestige, fame etc., the acknowledgement by people, appreciation by people, ये समस्त जो आज के मूल्यांकन हैं न, वे बहुत दूर, कचरे की टोकरी में जा गिरते हैं ।

भक्ति के लिए राजा का उपहार लौटानेवाला तुकाराम भी क्रान्तिकारी था । एक सौ आठ बार शरीर पर थूक कर एक सौ आठ बार स्नान करने को मज़बूर करनेवाला यवन एकनाथजी के जीवन में आया, तब उनकी जो शान्ति व अक्रोध की शक्ति थी, इस अक्रोध-शक्ति से ही उन्होंने प्रतिकार किया । एक बार थूका । दूसरी बार स्नान करना प्रतिकार ही था । प्रेम से जो प्रतिकार होता है न, उसकी भाषा हमें अवगत नहीं । हमें लगता है कि एक गाली देने पर दस गालियाँ पलटकर देना यही प्रतिकार हुआ; किन्तु प्रेममूलक, करुणामूलक प्रतिकार अत्यन्त भिन्न रहते हैं । वह १०८ बार थूका तो नाथजीने १०८ बार स्नान किया । और जब वह चरण छूने लगा, तो उन्होंने कहा, 'अरे ! मैं तो प्रतिदिन एक ही समय स्नान करता था ! किन्तु आज तूने १०८ बार स्नान कराया, तूने अत्यन्त उपकार किया !' एकबार भोजन की पंक्ति बैठी थी । गिरिजाबाई परोस रही थी, तब उनकी पीठ पर कोई एक उद्दण्ड मनुष्य जाकर चढ़ बैठता है, देखना चाहता है कि कैसे नहीं आता नाथजी को क्रोध ? Motivation of anger कैसे नहीं होता, वह तो देखूँ ! पीठ पर चढ़ा हुआ देखकर नाथजी कहते हैं - "देखो, जी ! पीठ पर बालक बैठा है !" और वह भी नाथजी की ही पत्नी ! कहती है - "चिन्ता न करो, जी ! हरि को मैंने नौ मास पेट में रखा था । क्या इसे (इस बेटे को) एक घंटाभर भी पीठ पर रख नहीं सकती ?"

वैकल्पिक जीवन-पद्धति है यह ! इससे चित्त की दशा में परिवर्तन होता है, जीवन की शैली बदल जाती है। इसमें जो गरिमा, गौरव है - वह यदि समझ पायें तो लगता है कि अध्यात्म-साधना का अर्थ आपके ध्यान में आयेगा। आज हमने विषय को अलग पद्धति से सुलझाया है ।

समग्रता की दृष्टि

अध्यात्म यह जीवन की ओर देखने की नयी दृष्टि है । जीवन की समग्रता को स्वीकार कर, वह दृष्टि उसे अपने आलिगंन में, आश्लेष में लेती है । समग्रता के स्वीकार में ही एक अभिनव पद्धति से, वैकल्पिक पद्धति से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चित्तवृत्ति में, चित्त की दशा में भी परिवर्तन होता है। चित्त की दशा में परिवर्तन होने पर सृष्टि,पदार्थ व व्यक्ति, इनके साथ रहनेवाले संबंधो के आधार भिन्न होते हैं और उसमेंसे समाज के पोत के गठन में - उसकी बुनावट में फेरफार होता है। The texture of human relationship, which is the content of social fibre, goes through a radical change. तो, व्यक्ति की साधना और सामाजिक कर्म में विरोध नहीं है। वैयक्तिक या संघटित कार्य यदि हमें करना हो, **social action** हमें लेनी हो, **परिवर्तन** की आकांक्षा हो, **क्रान्ति की ज्योत** यदि हृदय में हो -(ज्वाला नहीं जी; द्वेष, ईर्ष्या व क्रोध से ज्वाला सुलगती है। प्रत्येक के हृदय में हमें क्रान्ति की ज्वाला नहीं सुलगाना है !) - तो वह क्रान्ति का दीपक प्रकट हो, जिसमें शान्ति, स्नेह रहे व जिसे हम 'समझ' understanding कहते हैं, आकलन कहते हैं, उसकी बाती रहे, ऐसे दीप जलाने हैं।

अत: आज भले 'अमावास्या की' रात ही प्रतीत होती हो, तो भी हम उस अमावास्या की रात्रि को 'दीपावली' की रात बनाएँगे। व्यक्तिचेतना - परिवर्तन व समाज-व्यवस्था-परिवर्तन, ये हमारे आत्मिक साधना के उपकरण बनने चाहिएँ, वाहन बनने चाहिएँ। 'कार्य, कार्यकर्ता, नेता' - इनके बदले अब -'जिज्ञासु, सत्संगी, साधक व साधकों का सामूहिक पुरुषार्थ' - ऐसे जीवन साधनों से एक नया समूह, एक नवीन समुदाय, इस भारत में बन जाए, इतनी प्रभु से प्रार्थना कर के आज का प्रात:कालीन प्रवचन समाप्त कर रही हूँ।

"यह जो अध्यात्म-साधना है याने जीवन के चरम सत्य की खोज है, वह कहाँ होगी ? कैसे होगी ? घरबार छोडकर ? ब्रह्मचर्य लेकर ? शादी की हो, तो घर से भागकर संन्यास ले करके ? नौकरी-धन्धा छोड़कर ? मानवीय सम्बन्धों से दूर हटकर ? नहीं। सारा जीवन ही सत्य की साधना का क्षेत्र है। जीवन के चरम सत्य की खोज हम जहाँ हैं वहाँ करनी है, मानवीय सम्बन्धों के द्वारा करनी है। उस साधना के लिए अलग कोई क्रिया-कांड़ नहीं खडा करना है, कर्म-कलाप नहीं फैलाना है, विशिष्ट परिस्थितियों का निर्माण नहीं करना है, जो परिस्थिति-प्राप्त सम्बन्ध हैं, अपने गुण और शक्ति-सापेक्ष दायित्व है, अपनी वृत्ति, इच्छा-अभिरुचि के अनुकूल जो कर्मक्षेत्र हमने चुने हैं, वहाँ रहते हुए; उन सब के द्वारा यह सत्य की खोज करनी है। यह अध्यात्म कहता है कि मानवीय सम्बन्ध ही मुक्ति की उपलब्धि के अवसर हैं।"

["अध्यात्म का पाञ्चजन्य" - मेंसे]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन पञ्चम

साधना की आंतरिक समस्याएँ

अनिवार्यता महसूस होनी चाहिए

प्रश्न : बाह्य व आंतरिक कारणों से मौन-साधना सातत्य से करनी नहीं आती। मौन, ध्यान सातत्य से कैसे करने आयेगा - इस विषय में मार्गदर्शन करें।

उत्तर : किसी भी बाह्य व आंतरिक कारणों से प्रतिदिन निद्रा लेना टलता है क्या ? प्रतिदिन का भोजन त्यागते हैं क्या ? वह कैसे नियमितता से होता है, जी ? इसका कारण है। जिस समय शरीर में 'क्षुधा' नाम की, 'भूख' नाम की जगदंबा प्रकट होती है, उस समय वह चैन पड़ने नहीं देती, रोम-रोम में वह व्याप्त होती है और कुछ न कुछ आहार लिए बिना हमारे शरीर को, मन को, बुद्धि को चैन नहीं पड़ता; वैसे ही नींद लिये बिना हमारा नहीं चलता। किन्तु जिसमें मन की समस्त गतियाँ शांत होती है और जहाँ विचार-विकारों का अस्त होता है, ऐसे नये आयाम की हमें भूख लगती है क्या ? उसकी हमारे प्राणों को प्यास लगती है क्या ? उसके सिवा जीवन में तेज अथवा ओज नहीं, आनंद नहीं, यह आभास होता है क्या ? यदि यह मालूम होता हो, तो फिर सातत्य आयेगा ! तो, सातत्य आने के लिए उसकी अनिवार्यता महसूस होनी चाहिए। कई बार केवल बौद्धिक उत्सुकता रहती है कि इसके परे क्या है, वह देखें तो ! कई बार समाज में रहते समय जो खिँचाव होता है, थकावट होती है, मान-अपमान सहन करना पड़ता है, यश-अपयश आता है, उससे आदमी तंग आ जाता है ! उद्वेग आता है उसे, और फिर उद्वेग के कारण, उस बेचैनी के कारण, वह मौन की ओर, ध्यान की या जाप की ओर, तप की ओर मुड़ जाता है। तो यह एक negative energy है। 'ऊबने से मुड़ना' यह 'वैराग्य' नहीं है, जी ! 'वैराग्य' का अर्थ बहुत भिन्न है। प्रभुसत्ता के बारे में विशेष अनुराग और उस अनुराग से विषयों में लगनेवाली मिठास घट जाना, मिट जाना यह वैराग्य का अर्थ है। 'माझिये ढार्यीं अनुरक्ति। हेचि विषयीं विरक्ति'। आनुषंगिक परिणाम है वैराग्य ! तो, (दुनिया से) ऊब जाते हैं, इसलिए जो लोग इस अध्यात्म या आत्मसाधना की ओर मुड़ते हैं, उनमें सातत्य कैसे रहेगा ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किसी दिन मन की मर्ज़ी के अनुसार कुछ बात बन गई हो, तो फिर जप, तप, साधना, पूजा -दो मिनिटों में कैसे भी जल्दबाज़ी में कर के निकले ! तो, बौद्धिक उत्सुकता होने पर भी तो सातत्य नहीं रहता है। ऐसे उद्वेग के कारण साधना होती हो, तो उसमें सातत्य नहीं रहता। और तीसरी महत्त्व की बात ऐसी है कि हमें स्वतंत्रता की-स्वायत्तता की आदत नहीं है। कोई भी हमसे करा लें (उदा.) पाठशाला जाना है, नौकरी पे जाना है, उठना ही चाहिए। तो, The compulsion in the situation obliges us to react - परिस्थिति ही हमसे प्रबलता से करवा ले, एक प्रकार का दबाव हम पर आये और फिर प्रतिक्रिया करें, ऐसा होता है।

हमारा जीवन प्रतिक्रियाओं का है

हम जिसे 'जीवन' कहते हैं, it is chain of reactions. There is nothing like 'Action', personal, first hand action ! हमारे जीवन में स्वायत्त कर्म का कहीं भी पता नहीं, लेश भी नहीं। प्रतिक्रियाओं में हमारा जीवन बीतता है; अलग-अलग प्रकार की, भिन्न-भिन्न स्तरों की - किन्तु होती हैं सब प्रतिक्रियाएँ ही ! वे भी हमारी अपनी नहीं। वे भी कहीं से उधार लायी हुईं, नक़ल की हुईं, अनुकरण व अनुसरण की हुईं - ऐसी होती हैं। वे भी second-hand, third hand ! तो अगर compulsion न होगा, compulsion का चाबुक न होगा, तो हमारे हाथों कुछ भी नहीं किया जाता। और यहीं मौन व ध्यान में बैठने के लिए हमें कौन ज़बरदस्ती करेगा ? कौन करवा लेगा हमसे ? फिर - 'कोई गुरु हो, वह करवा लें। वह व्रत दें, नियम दें और अगर उसका पालन न किया, तो पाप होगा - ऐसा कहें'। क्या करें ? उम्र बढ़ने पर भी चित्त में एक बचपना-सा रह जाता है।

बालकों को जैसे खेल में रुचि लगती है, कलाकार को जैसे कला की चाहत रहती है, वैसे यदि सहजता से अभिरुचि हों और इस मन के परे जो आयाम है 'ध्यान' नाम का व उससे होनेवाला जो परिवर्तन है हमारे जीवन में, उसकी अगर सहज भूख लगी हुई हो- बुद्धि से लदी हुई नहीं, सारे लोग कहते हैं, अतः हमें करना चाहिए, ग्रंथों ने कहा, अतएव करना चाहिए - ऐसा नहीं, किन्तु अगर अनुभूति हुई हो अपने को कि वे ही पुराने सुख और वे ही घिसे-पीटे दुःख, और वे ही पुराने विकार - इनको चर्वितचर्वण (जुगाल) करते-करते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहाँ तक जीना है मानव को ! वे ही राग, वे ही द्वेष, वही 'मेरा-तेरा', 'अपना व दूसरे का' ! तो सातत्य नहीं रहता इसके कई कारण हैं। परावलंबन की ही आदत पड़ गई है। कोई हमसे करा ले, ऐसा हमें चाहिए है; फिर - आश्रम में गये, घंटी बजी, तो हम उठे ४ या ६ बजे; फिर घंटी बजी तो बैठे ध्यान में। अब घर में घंटी कौन बजायें ? हम ही उठकर बजायें तो बजे !

आप मुझे प्रश्न पूछते हैं कि सातत्य रहता नहीं; आंतरिक या बाह्य कारणों से - घर में किसी की अपमृत्यु हुई; फिर, परमात्मा ने हमें ऐसा क्यों किया ? हम इतने सात्त्विक लोग ! हमने कभी किसीका कोई बुरा नहीं किया। किस कारण हमारे परिवार में ऐसा घटित हुआ। उस भगवान का अब हम नाम नहीं लेंगें ! - मत लो ! वह आपका नाम लेता रहेगा !

मित्रों, ध्यान व मौन यह एक आंतरिक क्रान्ति है। थोड़ा-सा जाप किया, मन को शान्ति प्राप्त हुई, मंत्र-जाप किया, कोई सिद्धि मिली या कुछ विकार, कुछ बीमारियाँ थीं, वे नष्ट हो गये - ऐसी मौन या ध्यान को कोई therapeutic value नहीं। मानसोपचार के लिए धारणा का अभ्यास - concentration का अभ्यास, इनका उपयोग होता है; किन्तु यह (जो मैं कह रही हूँ वह) तो 'मैं-पन' का केन्द्र जो है, उसे उड़ा देनेवाली, मिटा देनेवाली क्रान्ति है। उस चेतना का केन्द्र ही विश्व और परिधि भी विश्व - ऐसे वैश्विक स्वरूप की यह प्रज्ञा है। वह तब देह में संचार करने लगेगी ! इस क्रान्ति की कुछ भूख तो लगनी चाहिए !

मुक्ति का भय लगता है

अंतिम कारण कहती हूँ आप से। बुद्धि को इस क्रान्ति व इस मुक्ति की चाह है और चित्त को इस क्रान्ति व मुक्ति का भय है। ऐसा यह अंतर्विरोध हमारे जीवन में रहता है, सौ मेंसे ९०-९५ लोगों में ! Intellectual appreciation and aspiration for freedom, enlightenment, liberation or whatever..., and, the fear of freedom ! मुक्ति का भय लगता है; क्योंकि इस दुनिया में हम हैं, हम कोई तो हैं, कुछ भी तो हैं, यह सब (मुक्ति के बाद) निकल जाता है। you get reduced to nobodyness and nothingness you, become the emptiess of the cosmos; और उसमें जो ऊर्जाएँ कार्य करतीं हैं, वे आप की आज्ञा के अधीन नहीं होतीं आपके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुकुम से चलनेवाली नहीं है। शिक्षित व्यक्ति को यह पता चलता है, कि घंटा-दो घंटे हम मौन में बैठें और शान्ति प्राप्त हुई - इतना पर्याप्त है ! एक relaxation to the nervous system प्राप्त हुआ। चलो ! यह क़ाफ़ी है ! प्रकाश, नाद - इनके थोड़े दो-चार अनुभव आये, अनुभूतियाँ आईं, ठीक है ! पर, इसके आगे, उस शून्य का स्पर्श होने लगा, तो मनुष्य पीछे हट जाता है; क्योंकि वह somebody होकर जीना चाहता है। 'वैश्विक सत्ता से अलग अपना स्वतंत्र अस्तित्व है, अलग हस्ती है, हम कोई तो हैं !' - यह उसे प्रिय है; 'फिर मुझे ब्रह्म की अनुभूति भी हों' और 'वह मुझे हुई ऐसा कहने को मिले' यह भी चाहिए ! मैं मुक्त हुआ यह मुझे मालूम होना चाहिए और वह लोगों को सुनानें को भी मिलना चाहिए; याने वह 'मैं'-पन रखना है, केवल 'मैं-पन' के स्तर में थोड़ा-सा परिवर्तन वह चाहता है।

तो, सातत्य रहता नहीं इसका कारण, कहीं न कहीं छिपा हुआ यह भय है। हम किसीके भी नहीं, कोई भी हमारा नहीं, जात नहीं, पाँत नहीं, स्त्री नहीं, पुरुष नहीं, धर्म नहीं, देश नहीं, केवल निरुपाधिक होनापन है; फिर होगा क्या ? मालूम नहीं। यह जो 'मालूम न होने' की अवस्था है, वह हम नहीं चाहते ! हमें blue print चाहिए या पाठशाला के समय-पत्रक के समान time-table चाहिए कि इतनी प्रगति होने पर यह होगा, इतनी मुक्ति पर वैसा होनेवाला है। मुझे क्या होनेवाला है, यह सब पहले से ही मालूम होना चाहिए ! तो, यह बंधन की जाल में उलझी हुई जो चेतना है न, उसे मुक्ति का संपूर्ण नकशा-plan चाहिए है, blue-print चाहिए; और वह तो दे सकते नहीं ! The supreme Intelligence defies the human logic, human verbalisation, human calculations. It throws to winds all your concepts and symbols. तो, हम परिशीलन कर के देखें कि इसमें क्या कारण है, जिससे सातत्य नहीं रहता; यदि सातत्य रखने की वास्तविक इच्छा रही एवं इस परिवर्तन की ओर कदम बढ़ाने हों, तो आपने प्रातः जो सुना था, इस प्रकार अपने जीवन का प्रबंध करें ! Organize the life ! Organize the priorities ! और इसे ही यदि अग्रिमता रहेगी - इस चेतनात्मक परिवर्तन को - तो फिर, २४ घंटों मेंसे नौकरी के लिए समय निकालते हैं, भोजन के लिए, सोने के लिए, उसी प्रकार जो कोई घंटा या आधा घंटा आपके पास होगा, वह इस वैश्विक सत्ता के सांन्निध्य में बैठने के लिए, उस सत्ता के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्पर्श के लिए अलग रखें। आरक्षण कहते हो न ! वह करें। कुछ हो न हो; किन्तु एक घंटा हम भगवान के सन्निध हैं। हमारी सामान्य दैनंदिन भाषा में कहना हो, तो भगवान के समीप बैठे हैं। अपने खुद के पास ही बैठे हैं, कुछ भी न करते हुए बैठे हैं। कुछ भी न देखने के लिए, न करने के लिए, न कमाने के लिए ! अपने 'होनेपन' का प्रत्यय आने के हेतु बैठे हैं - अपनी ही इच्छा से ! 'अथ आत्मानुशासनम्', का आरंभ करें - ऐसा व्रत लें। व्रत याने जिसका स्वेच्छा से 'वरण' किया जाता है। जो लादा जाता है, वह 'व्रत' नहीं, जी !

मन पर अंकुश कैसे रखूँ ?

प्रश्न : शुचिर्भूत होकर, प्रसन्न चित्त से, संभवतः ब्राह्मी मुहूर्त पर या अन्य किसी भी समय पर मौन के लिए बैठना, यह तो ठीक है; किन्तु मन अंधाधुंध - आवारा जानवर की तरह भटकता है। यह जो मन का स्वाभाविक धर्म है, उसकी इस शरारत का निराकरण करने के लिए बुद्धि सामग्री के बल पर या अन्य उपायों से उस पर अंकुश रखना संभव है क्या ? नये अपक्व साधक को इस संबंध में मार्गदर्शन करें।

उत्तर : आपने कल देखा था कि मन यह वस्तुतः पूरे मानव-समाज की ओर से प्राप्त हुए संस्कार हैं। कई प्रकार के संस्कारों की कई पद्धतियाँ और 'संस्कार' कहने पर 'संस्कार' यह शब्द उच्चारने से उसमें ज्ञान आया, अनुभव आया, evalutions मूल्यांकन आये, कसौटियाँ आईं, प्रतिक्रियाओं के ढाँचे आये, व पद्धतियाँ आईं। इन सबको एकसाथ हम 'संस्कार' कहते हैं ; उसमें ध्येय, आदर्श ये सब कुछ आये। यह जो शब्दों के रूप में अंदर, रोम-रोम में समाया हुआ रहता है, वह उद्भूत होता है। मन की उद्दंडता, उसकी शरारत या चंचलता याने वास्तव में क्या ? हम उस पर दोषारोपण कर रहे हैं। वस्तुस्थिति ऐसी रहती है कि आपकी इन्द्रियों ने किसी भी विषय को स्पर्श किया, तो उस इन्द्रिय-विषय के संबंधों से, संपर्कों से संवेदन निर्माण होता है। यह physical fact है और यह जो sensation होता है, वह शरीर में एक electric impulse निर्माण करता है। वह मस्तिष्क तक - brain तक पहुँचता है और यह मस्तिष्क मानो इन समस्त neuro-chemical system का monitor है ! इस तरह उसमेंसे वे संस्कार जागृत होते हैं। नाम, रूप, मूल्यांकन, ग्राह्य-त्याज्य भाव - यह सब जागृत होता है। तो, यह जो मन की गति है, उसे हम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'चंचल' ऐसा क्यों कहें ? यदि हमारी समझ में आये कि यह जो मन की गति है, वह यांत्रिक है, हमने निर्माण नहीं की; तो, यह हमारे शरीर में – मानवजाति की हम संतान होने के कारण–संक्रान्त हुई है और मरते दम तक वह हमारे साथ रहनेवाली है। इस गति के साथ हमें रहना है; अतः उसका इस्तेमाल, विनियोग यदि हम ज़िम्मेदारी से करने लगें और जहाँ आवश्यक हो, वहीं पे, और जब आवश्यक हों तभी, यदि इन्द्रियों का और विषयों का संबंध आने दें - देखना, सुनना, कहना - ये सारी जो क्रियाएँ हैं, उनकी आवश्यकता यदि हम कम करते गये, इन्द्रिय-विषय संपर्कों के अवसर कम करते गये; तो फिर इस गति को हमारे शरीर में उधम मचाने का ज़्यादा अवसर मिल नहीं पायेगा। गति का उपयोग करना पड़ता है, बोलना पड़ता है, काम करना पड़ता है, भोजन करना पड़ता है; किन्तु उसमें scientific austerity आनी चाहिए। 'मितुलेचि बोलावे, मितुलेचि चालावे।' 'मितुलेचि' याने गिना हुआ, नापा हुआ, युक्त (अर्थात् प्रसंगोचित) ऐसे यदि सभी इन्द्रियों की क्रियाओं के संबंध में हम सावधान रहें तो, उस मन की गति को हम पर प्रभुत्व चलाने का मौक़ा ज़्यादा मिल ही नहीं पायेगा। एक ओर व्यवहार में वह 'मितुलेचि' बोलावे..... का पराक्रम और दूसरी ओर इस गति को शांत होने का अवसर देकर इस गति के परे कोई ऊर्जा जाग्रत हो रही है क्या, इसका exploration, experimentation - इसकी खोज करें, उसका प्रयोग करते रहें। इन दोनों तरफ से यदि प्रयत्न किया गया, तो इस मन का उधम मचाना या उसकी चंचलता का हमें उपद्रव नहीं होगा। आहार-विहार के संबंध में, वाणी के संबंध में और आपसी संबंधों के बारे में वैज्ञानिक दृष्टि आयेगी।

मुझे रुचि के अनुकूल लगा, तो फिर उसके पीछे लग गई, खाने का पदार्थ हो, तो पीछे पड़ी, कोई प्रिय लगा, तो उसके पीछे पड़ी - इस तरह जो भाता है, उसके पीछे दौड़ना, जो नहीं भाता, उससे दूर भागना; ये दो दिशाएँ हम पकड़ते हैं और उन दिशाओं की ओर भागते रहते हैं और मन का उपयोग उसीके लिए करते रहते हैं, वह यदि नहीं किया गया तो ! कल कहा गया था कि सुख व दुःख - इन पर यदि प्रियता-अप्रियता हमने super graft नहीं की, उनमें उस प्रियता, अप्रियता को यदि नहीं मिलने दिया, तो दशेन्द्रियों को होनेवाला जो विषयसुख है, उस विषयसुख की मिठास चित्त से निकल जाती है। आप कहेंगे कि ज्ञानेन्द्रियों को विषयसुख ? हाँ, जी ! शब्द यह विषय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है । शब्द का भाव, शब्द का अर्थ विषय ही है । काव्य, संगीत व कला - ये भोग्यविषय बनाये जाते हैं । ब्रह्मचर्चा, अध्यात्मचर्चा-भोग्य विषय बनाया जाता है । उससे सुख होता है । एक मादकता रहती है उसमें, intoxication रहता है; तब विचारों का नशा रहता है, भजन किया तो मस्ती चढ़ती है, उस मस्ती में मनुष्य डोलने लगता है; नाचने, हँसने, रोने लगता है । वह एक प्रकार का उन्माद ही है ! प्रथमतः नशीलापन होता है, तत्पश्चात् उन्माद चढ़ता है । यह उन्माद, यह उन्मत्तता अपने नीरस जीवन में हमें आकर्षक लगता है । देखो, जी ! उन्माद, और नशीलापन - इनसे आनेवाला असंतुलन या विकृति भी प्रिय लगने लगते है ! and that becomes a sophisticated escape from the movement of relationship and the responsibility to act; ऐसा हो सकता है; तो, यदि हम दशेन्द्रियों का, इन्द्रियों का, विषयों का - जहाँ आवश्यक है उसी स्थान में, अत्यन्त सुसभ्य ढंग से, वैज्ञानिक पद्धति से, — रससेवन विषयक संबंध बदल दिया तो, यह मन जो है, उसमें भरे हुए संस्कार और उनकी अनेक गत्यिाँ हमें ज़रा भी उपद्रव नहीं दे पाते । वे शरीर में पड़े रहते हैं ।

सुलगी हुई लकड़ी हाथ में पकड़ नहीं सकते, किन्तु वही लकड़ी जलकर राख होनेपर वह राख भस्म के रूप में सारे शरीर पर लगाते हैं । भस्मचर्चित काया - रूपकात्मक भाषा है हमारे देश में ! वासनाओं और भावनाओं मेंसे भाव जागृति होती है, तो, चंदनचर्चित काया और 'आत्मज्ञान, आत्मबोध से अहंकार नाम की अविद्या जलकर भस्म होने पर - भस्मचर्चित काया' । कहने के ये प्रकार हैं । इस देश में प्राचीन काल में रसिकजन रहते थे । हमें पूर्वजों के ग्रंथ और उनकी भाषा समझने में कठिनाई होती है । बुद्धिवाद से आई हुई जड़ता, भौतिकवाद से, भोगवाद से संवेदलशीलता को आई हुई बधिरता, इस कारण उसमें जो काव्य है, संकेत हैं, वे समझ नहीं पाते । हम उसे 'भस्म' अर्थात् 'स्थूल राख' ही समझते हैं; वही आँखों के सामने आती है, किन्तु 'भस्म' यह एक रूपकात्मक शब्द है । उसमें कुछ सूचित किया है, कुछ संकेत है ।

मुझे ऐसा कहना है कि संयम के बिन्दु पर यदि हमारा दैहिक जीवन, मानसिक व वाचिक जीवन आकर रहा, तो यह जो मन का उछलना-कूदना है, जो चंचलता हमें लगती है, वह कोई कष्ट नहीं देगा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैश्विक प्रज्ञा का साहाय्य (मदद)

प्रश्न : प्रवचन सुनते समय ऐसा भास होता है कि साक्षीभूत अवस्था में एकान्त का उपभोग कैसे लेना है, यह समझ में आया है; किन्तु उसके पश्चात् वर्षभर में वह सुख हाथ से निकल गया, ऐसा लगने लगता है। फिर एकान्त में मन लगता नहीं। उसे कोई न कोई बाह्य आलंबन देने की ज़रूरत लगती है। यह कैसे सुधरेगा ? और ज़ल्दी से ज़ल्दी आगे की अवस्था कैसे प्राप्त होगी ? यह कैसे साध्य होगा, इस संबंध में क्या आप मार्गदर्शन दे सकेंगी ? स्वयं के प्रयत्नों से ही यह होगा या अन्य किसी की सहायता से ?

उत्तर : सहायता करने विश्वंभर तो खड़ा ही है ! विश्व के रूप में यह विश्वंभर अनंत प्रकारों से मदद देने के लिए खड़ा ही है। उसकी सहायता कोई लेते नहीं यही तो प्रश्न है ! उसीकी सहाय लेकर आपके-हमारे पूर्वज जीवन बिताकर चले गये, जिन्होंने साधक बनने का प्रयास किया, उन पूर्वजों के मार्ग के पदचिह्न खोजते हुए, व्यासजी का अनुसरण करते हुए, मैं कह रही हूँ। हमसे पहले (प्रभु की कृपा से भारत में जन्म हुआ है) इस देश में वेद-उपनिषदों का जन्म हुआ, उदय हुआ, प्राकट्य हुआ है। षट्-शास्त्र हैं, भगवद्गीता है, भागवत् है और लाखों सन्तों के चरित्र हैं; जीवनचरित्र हैं। हमारा यह ऐश्वर्य अमेय है। तो उनकी सहायता कैसे नहीं होगी ? यदि लेना है, तो उनका सहाय लें; अतः केवल प्रयत्नों पर ही आधार है, ऐसा नहीं कहती; किन्तु प्रयत्नों से प्रारंभ करें। सहायता आपकी ओर दौड़ती आयेगी। प्रामाणिक यत्न हों, बुद्धि के चिंतन की पराकाष्ठा करें। शरीर द्वारा पुरुषार्थ की चरमसीमा करें, फिर यदि कहीं बुद्धि कुंठित हुई, शरीर की मर्यादा आई, तो वह जो वैश्विक प्रज्ञा है, वह किसी न किसी रूप में, कभी व्यक्ति के वेश में, कभी ग्रंथ के रूप में, कभी स्वप्न की अवस्था में, कभी दृष्टांत के रूप में कभी रास्ते से चलनेवाले, बस में प्रवास करनेवाले किसी व्यक्ति के अभावितता (जिसकी भावना न की गई हो, ऐसे) से कहे हुए वाक्य से भी मानो परदा दूर होकर जगमगाता प्रकाश आया हो, इस तरह से सहायता करती है। **At the core of the universe there seems to be a law of love, like the law of gravitation functioning in the orbit of the earth.** गुरुत्वाकर्षण का है कि नहीं कुछ नियम ? उस गुरुत्वाकर्षण के नियम जैसा ही यह कोई प्रेमाकर्षण का कानून,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्त्व-अंतर्भूत दिखता है इस विश्व में, और इसीलिए, जो जिज्ञासु होंगे, साधक होंगे, उन्हें सहायता मिले बिना रहती नहीं। किन्तु 'सहायता' करनेवाला कौन हों, वह मैं प्रथम ही निश्चित करूँगा, मुझे जैसी चाहिए वैसी ही सहायता करनी पड़ेगी, ऐसा सौदा हम करना चाहते हैं अथवा एसी ही व्यवस्था की इच्छा हमें रहती है; यानी कि जैसे हम store room में अनाज का stock रखते हैं, या बेन्कों में bank balance होता है, वैसे कोई 'सन्त-महन्त, ज्ञानी, योगी' मैं निश्चित करूँगा और जब मैं माँगूँगा उसी समय सहायता मिले – ऐसा हम चाहते हैं, लेकिन मज़े की बात यह है कि यह वैश्विक प्रज्ञा इस ढंग से काम करती ही नहीं ! और फिर हममें ही यदि प्रमाद रहा हो, तो ? हमने ही पुरुषार्थ में कुछ चोरी की हों, तो ? हमारे जीवन की जो अशुद्धियाँ हम दूर कर सकते हैं, वे अगर हमने दूर नहीं कीं हो, तो ? फिर कैसे सहायता मिलेगी ?

सत्सङ्गी लोग इकट्ठे आयें

'प्रवचन' सुनते समय जो आभास होता है कि वह साक्षित्व ही है ऐसा लगता है, वह एकान्त है, ऐसा प्रतीत होता है और फिर पश्चात् वर्ष-भर वह टिक नहीं पाता। - यह स्वाभाविक नहीं क्या ? हम जहाँ, जिस समय एकचित्त-सौ-सवा सौ लोग मिलते हैं - उनकी एक ही इच्छा, आकांक्षा व हेतु रहता है और सवा सौ लोगों की एक इच्छा की, आकांक्षा की जो ऊर्जा है, वह सभागृह में पूरी तरह भरी हुई है। All energies are focussed on one point, not necessarily the person. वह व्यक्ति कहती है, अतः वह माध्यम है; परंतु व्यक्ति के निमित्त से, शब्द सुनने के, समझने के निमित्त से हम किसी बिन्दु पर हमारी ऊर्जा को केन्द्रित करते रहते हैं, उस कारण एक शक्ति जागृत होती है। इस पूर्णतः भरे हुए surcharged atmosphere में ऊर्जा रहती है और उस ऊर्जा की सहायता होती है। - The whole atmosphere is supportive and encouraging - इसका अर्थ वातावरण के आधार के आलंबन की आवश्यकता होगी या आधार आवश्यक होगा। कुछ ही क्षण-भर हम दोनों को देखेंगे; किन्तु वातावरण का आधार हों, किसी भी व्यक्ति का आधार हों, व्यक्ति के शब्दों का आधार हों, तो वह प्रतीति आती है।

मुझे ऐसा लगता है कि प्रारंभ में यह स्वाभाविक ही है; इतना ही नहीं, तो आवश्यक भी होगा। किसी भी चीज़ का नयेपन से प्रारंभ किया हुआ रहता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, तब उसकी आवश्यकता रहेगी और मन को किसी न किसी आधार की आवश्यकता रहे, ऐसी ही हमारी जीवन-पद्धति रही है। पूर्व प्रश्न के उत्तर में आपने देखा कि compulsion न रहा, someone commanding, demanding of us, commanding from us, expecting at least from us, यह यदि न रहा और हम पूर्णतः स्वतंत्र एवं स्वाधीन भी रहे, तो भी हममें कोई अभिक्रम रहता नहीं, initiative ही नहीं। लेकिन प्रतिक्रियाओं की अवस्था ही हमारा जीवन व स्वायत्त कर्म ज़िम्मेवारी से, सहजता से, अपने ख़ुद के आकलनं के आधार से करने में हमें मज़ा नहीं आता, रुचि नहीं होती ! यह आलंबन हमें घर जाने पर नहीं प्राप्त होता - वातावरण भी नहीं मिलता, व्यक्ति भी नहीं मिलती, इतना ही नहीं, प्रतिकूलता का वातावरण मिलने की शक्यता है और यहाँ तो नौकरी नहीं, व्यवसाय नहीं, घर का ताप-संताप नहीं; किसी भी तरह का दायित्व नहीं। ऐसी सहुलियत पाँच दिन के उपरांत रहेगी नहीं ; तब वहाँ पर कुछ संघर्ष निर्माण होते है; आह्वान खड़े होते हैं। अन्य व्यक्तियों के चित्त की जो दशा है, उसका हमारे चित्त पर आक्रमण होता है। इन सभीसे संघर्ष करने के लिए चित्त में दृढ़ता, ताक़त आवश्यक रहती है। जैसा इस विषय में रस होना चाहिए, वैसे ही प्रतिकूलता से टक्कर लेने के लिए चित्त में शक्ति होनी चाहिए। प्रतिकूलता से संघर्ष करना पड़ता है और टिके रहना पड़ता है। इतनी शक्ति नहीं रहती; फिर इसका क्या उपाय ? है, इसका भी उपाय है। यदि करना हों तो, करनेवालों के लिए उपाय है। चलनेवालों के लिए मार्ग है। घर में बैठकर पूरी दुनिया का नकशा लेकर सात दिन तक उसका अभ्यास किया व आठवें दिन तो atlas रख दिया। आरामकुर्सी से उठे ही नहीं; तो फिर यात्रा कैसे होगी ? सुखझूले से ही नहीं उतरना है नीचे ! - ऐसा यदि नहीं है, तो फिर चलनेवालों को ज़रूर मार्ग मिलता है। पुरुषार्थ करनेवालों को सहायता मिलती है। गति व मति कुंठित हुई हो, तो वहाँ प्रेरणा व मार्ग बतानेवाले मिलते हैं। यह अवश्यंभावी है। ऐसा कर सकते हैं कि एक शहर में, एक गाँव में रहनेवाले यदि दो-चार जिज्ञासु जन हों, तो वे एकत्र आयें। बारी-बारी से एक-दूसरे के घर पे मिलें; यदि यह शक्य न हों, तो कहीं सार्वजनिक स्थान हों, उद्यान हो, बाग हो, वहाँ वे आयें। संभव हो, तो सप्ताह में एक बार साथ मिलें-बैठें और उस सप्ताह में जो भी आपने पढ़ा हो, वह साथ ले आयें और कहें कि - मैंने सप्ताह में यह पढ़ा, उसमें ये मुद्दे हैं, जो आपके उपयोगी लगते हैं। पाँच-छः लोगों की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसी यदि एक छोटी-सी team हो, समूह हो, तो वे एकत्रित बैठें। घर से कुछ खाने-पीने का और कुछ साहित्य ले जायें। दो-चार घंटे मिलकर बैठें; यह जो comeradeship, companionship है, वह यदि प्राप्त हुई तो, मुझे लगता है कि इस companionship से शक्ति में वृद्धि होगी, कस बढ़ेगा चित्त का। आपके घर में आपको क्या अड़चने आती हैं, मेरे घर में मुझे क्या रुकावटें आती हैं - यह एक-दूसरे को सुनाएँ; sharing करें। तो, ऐसे यदि छोटे-छोटे संघ बनें, तो फिर उसमेंसे शक्ति प्राप्त होगी।

अधीरता न रखें

इस संबंध में अंतिम मुद्दा यह कहना है कि तत्काल परिणाम दिखना चाहिए, ऐसी अधीरता न रखें। आप उम्र में पचीस, तीस या पचास वर्ष में प्रारंभ करते हैं; फिर ऐसी स्थिति में, चित्त की दशा में वे neuro-chemical changes, वे परिवर्तन होने में समय तो लगेगा ही ! बचपन में जितनी तीव्रता से पढ़ सकते हैं, उतनी तीव्रता से बड़े होने पर पढ़ नहीं पाते; तो, थोड़ी तितिक्षा रखें, थोड़ी सहनशीलता रखें। One should not be very harsh with oneself or a very cruel judge of oneself. अपने संबंध में हमारी एक धारणा, मान्यता रहती है कि मैं तो अत्यन्त धार्मिक व आध्यात्मिक व्यक्ति हूँ। मैं यदि एक चुटकी बजाऊँ तो यह काम होनेवाला ही है ! - और फिर वह भ्रम दूर होता है। पुस्तकें पढ़ने तक, अभिप्राय व्यक्त करने तक सब कुछ आसान लगता है। जिस समय जीने का कर्म आरंभ होता है, उस समय ठोकर लगती है; कभी साध्य होता है, कभी नहीं होता, कभी निकल जाता है, फिर से लौटता है - यह सब होनावाला है; क्योंकि आप वहाँ कुछ नया बीज बो रहे हैं। उसे अंकुर आने में, पौधा बढ़ने में, और वह बेल आकाश तक जाने में समय तो लगनेवाला ही है। तो खुद के बारे में बहुत बड़ी अपेक्षाएँ न रखें। शाला-कॉलेजों में first class first आये या विद्वान बने अथवा विदुषी हुई; तो उस क्षेत्र में उतनी तीव्रता से कार्य होनेवाला है, ऐसी अपेक्षा रहती है मन में - 'Gold Medalist थी मैं, यहाँ क्यों नहीं होगा काम ?' ऐसी image रहती है; किन्तु, if you can proceed the path of enquiry without having a single image about yourself, तो काम आसान होगा। छोटे बालक की निष्पापता, निष्कपटता, निश्छलता लेकर आप प्रारंभ करते हैं व प्रारंभ करने के पश्चात्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कम से कम १२ महिनों तक तो जाँच ही नहीं करना कि क्या हुआ और क्या नहीं हुआ । अभी बीज बोया, तो तीसरे दिन उसका अंकुर नहीं निकलेगा, समय लगेगा ! किसी के शरीर में, स्वभाव में उत्कटता रहती है, - The Velocity of intensity - उस उत्कटता की भी एक गति रहती है और किसी का मध्यम वेग रहता है, किसी का मंद वेग रहता है । तीव्र, मध्यम और मंद संवेग ऐसी रचना रहती है - because of the inheritance; biological, psychological inheritance ! जैसे कोई क़फ़प्रधान, पित्तप्रधान, वातप्रधान रहते हैं; वैसे ये जो संवेग हैं, उनमें भी कमँ-अधिक रह सकता है । किसी की तीव्रता, उत्कटता; किसी की मंदता । मुझे अंतिम मुद्दा ऐसा कहना है कि इस संबंध में आप घड़ी या केलॅण्डर लेकर न बैठें कि चार महिनों से करता था, चार वर्षों से करता था, बीस वर्षों से मैं कर रहा हूँ, पर कुछ होता नहीं; यदि कोई प्रामाणिकता से कर रहा हो, तो बीस वर्ष टिक गया यह भी कोई छोटी-सी बात नहीं; इसका महत्त्व कम नहीं ।

हम जो कर रहे हैं, वह योग्य है या नहीं उसका परीक्षण करें, यह करने की इच्छा अपने मन में है या नहीं, इसकी जाँच करें और यदि करने की इच्छा होती हो, करते समय आनंद होता हो, उसे करने में किसीकी कोई हानि न होती हो, तो फल दिखे या न दिखे, करते रहें । हृदय के और बुद्धि के दरवाज़े पूरी तरह खुले रखें । So that the **'OTHER'** can enter the moment it wants to step in.

मन के मालिक नहीं, साथी

प्रश्न : How can I become the master of my mind within a very short period ?

उत्तर : कम से कम समय में ? (श्रोता हँस पड़ते हैं) नहीं, आप इस विषय को हँसकर मत टालें ! सबके – आपके और मेरे मन की ही बात लिखी हुई है । कम से कम समय में या बिलकुल अल्प समय में मैं मेरे मन का मालिक कैसे बनूँगा ?

मालिक भी बनें नहीं, दास भी बनें नहीं; साथी बनें । जैसे शरीर मेंसे हम भाग नहीं जा सकते और शरीर मेंसे भाग जाना तथा शरीर को झोंककर फैंक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देना, यह कोई मोक्ष नहीं, मुक्त नहीं; वैसे ही इस शरीर के अंदर, 'मन' के नाम पर इतने सारे जो संस्कार भरे हुए हैं, उन्हें फेंकना या दूर करना नहीं हो सकता । अजी ! प्राकृत मनुष्यों मेंसे सुसंस्कृत मनुष्य निर्माण करने के लिए पूर्वजों की कितनी पीढ़ियाँ खर्च हो चुकी हैं ! इस - शब्द का निर्माण करना, इन प्रतीकों की निर्मिति करना, शब्दों से व्याकरण, भाषा, साहित्य, संगीत, कला, नाट्य व शिल्प निर्माण करना, इन संकेतों की निर्मिति करना, बुद्धि को परिष्कृत करना तथा इस समस्त मानव-समाज को उस सभ्यंता से व संस्कृति से सजाना; इसका क्या कोई मूल्य नहीं ? उसमें कोई विकृति होगी, शतकों की धूल जमी होगी, कई मर्यादाएँ आईं हों - यह सब हो सकता है; तो, 'मन' याने यह पूरा अतीत है । उस भूतकाल का दास भी न बनें तथा मालिक बनने की भाषा भी न बोले; क्योंकि 'मैं' और 'मेरा' - ये दो स्वतंत्र वस्तुएँ नहीं है, दो स्वतंत्र व्यक्ति नहीं हैं, Idetities नहीं हैं । हिन्दी शब्द का उपयोग करें तो वे 'दो हस्तियाँ' नहीं हैं । They are not two independant things. हम 'मन' - इस शब्द का प्रयोग करते हैं । हमने कल व पहले दिन देखा कि व्यक्तिगत 'मन' है ही नहीं, जो है वह **global human mind** है ;पर वह रहने दो क्षणभर के लिए । 'मैं' और 'मेरा मन' - ऐसी दो भिन्न बातें हैं नहीं । कैसे ? वह ऐसे, देखो, दर्पण के सामने आप बैठते हैं और देखते हैं । किसे देखते हैं ? स्वयं को देखते हैं । दर्पण में क्या दिखता है ? प्रतिबिंब दिखता हैं । प्रतिबिंब का कोई स्वतंत्र अस्तित्व है क्या ? आप ही देखनेवाले और आप ही दिखनेवाले । प्रतिबिंब का फोटो लिया जा सकता है । An optical illusion of a separate identity can be stimulated through technology. ये सारे फोटोग्राफिक ट्रिक्स रहते हैं; किन्तु यदि आप हट गये, तो वहाँ प्रतिबिंब नहीं । अर्थात् 'आप' और 'प्रतिबिंब' भिन्न नहीं । 'बिंब' व 'प्रति-बिंब' - इन शब्दों का हम प्रयोग करते हैं । मैं देखनेवाला, और मैं मुझे ही देखता हूँ । मैं ही देखता हूँ और मैं ही दिखता हूँ । इसमें देखनेवाला और दिखनेवाला मैं दोनों भिन्न नहीं, एक ही हैं । इस प्रकार ये जो 'मैं-पन' है, जिसे आप 'मैं- मैं' कहते हैं, वह और जिसे आप 'मन' कहते हैं, ये दोनों भिन्न नहीं हैं । आप मौन के या द्रष्टृत्व के दर्पण में देखने लगे, तो आप ही आप को देखते रहते हैं । The factual content of your conssiousness is exposed to your observation, to your perception, इतना ही घटित होता है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह अलग नहीं; इसलिए इसके मालिक बनेंगे जी, आप ? जब तक हमें मालूम नहीं था, तब तक इस भाषा का प्रयोग करना शक्य था तथा ग्रंथों में वह भाषा आई है। 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:' । अब मन ही यदि बंध व मोक्ष का, मुक्ति का कारण होगा, तो उसका अर्थ ऐसा कि बंध भी नहीं और मुक्ति भी नहीं। तो इस 'संस्कार-समूह', 'संस्कार-पुंज', मन नाम से संबोधित अपने भीतर के उपादान को हम ही देखें, उसकी मर्यादाएँ पहचानें; उसमें विसंगित होगी, विरोध होगा, अराजकता होगी, अव्यवस्था होगी, तो उसे निकालें; Intellectual Chaos and Emotional Anarchy निकालें । सुंदर, सुव्यवस्थित, सुग्रथित, सुश्लिष्ट - ऐसा उसका स्वरूप बनाएँ व उसके क्षेत्र में विचरण करें। हम मन के मालिक बनने की भाषा बोलते हैं। इस विश्व का भी कोई 'मालिक' नहीं है । 'मैं मालिक, सेवक, स्वामी' ! ये सारे पूँजीवादी समाज-रचना के संदर्भ में आये हुए धर्मक्षेत्र से आयी हुई भाषा है तथा इन संघटित धर्मों ने इतना उधम मचाया है मनुष्य की चेतना में ! और उन्होंने निर्माण किये हुए पुरोहित वर्गने class of preachers, priests ने पंगु बनाया है मनुष्य-चेतना को ! उसमेंसे ज़ल्दी से ज़ल्दी हमें छुटकारा पाना है, मुक्त होना है। बैलों की गाड़ी में बैठनेवाले को मोटर में बैठने का संकोच नहीं होता आौर मोटर या रेल में जो बैठता है उसे वायुयान में चढ़ना अच्छा लगता हैं, कल space- rocket में बैठना भी अच्छा लगेगा ।

गतानुगतिकत्व (अंधानुकरण) न हो

'किन्तु प्राचीन ग्रंथों में ऐसी भाषा लिखी थी, उसे कैसे छोड़ें ? मूल में ऐसा कहा ही गया है, फिर उससे अलग कैसे कुछ रह सकता है ?' - ऐसा एक गतानुगतिकत्व (अंधानुकरण) हमारी बुद्धि में आता है । वे वेदान्त सुनानेवाले आद्य-शंकराचार्य कह गये हैं कि अरे, वेदों ने भी यदि कहा हो कि - अग्नि में उष्णता नहीं तो तू उसका स्वीकार मत कर; क्योंकि अग्नि की उष्णता की तुझे प्रतीति आती है । उस प्रतीति पर तू विश्वास रख्र । शास्त्र-वाक्य यह सत्य है, आप्त-वाक्य में सचाई है; लेकिन यदि आत्मानुभूति न हुई हो, तो ? तो तू उसे स्वीकार मत कर; तेरी प्रतीति को विरोध आता हो, तो अस्वीकार कर - यह केवल रामकृष्ण परमहंस ही कहें, ऐसा नहीं !, आद्य-शंकराचार्य सेंकड़ों सालों पहले हो गये हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तो, 'मन' नाम की 'इन्द्रिय' नहीं, 'मन' यह सर से पैर तक आपके भीतर व्याप्त हुए संस्कार हैं और उनकी गति है। 'उन पर हम control करेंगे' । - अजी, किस पर control करेंगे ? और कौन control करेगा ? स्वयं के कँधे पर आपको बैठने आता है क्या ? चढ़ने आता है क्या ? 'इन संस्कारो मेंसे ही एक 'मैं-पन' की कल्पना है वह मात्र लें, और बाकी नहीं ! वह लेना और इस 'मैं-पन' की कल्पना की सहायता से फिर जो शेष है उसे सुधारना-ऐसा नहीं है, जी ! तो, control करनेवाला अन्य कोई है ही नहीं ! आप दमन करोगे, पीड़न करोगे, निग्रह करोगे, एकाध क्षेत्र में करोगे, तो यह खुद के साथ ही की हुई जो निग्रह, दमन, पीड़न, अत्याचार, हिंसा है, इसका प्रतिशोध वह प्रकृति किसी अन्य क्षेत्र में लेती है । आश्रमों में रहनेवाली मंडली, - इनकी संतान किस कारण नई तालीम, बुनियादी तालीम आदि छोड़कर देश-विदेशों में गई, दूसरी ओर मुड़ गई ? उनका जीवन भोगेच्छाप्रधान क्यों बना ? with vengeance (बदला) ! क्योंकि वह एक reaction थी, जो कुछ लादा गया था उनपर (उसके विरोध में) । और यह सब मैं आलोचना करने के लिए नहीं कह रही हूँ ।

दमन से असंतुलन आता है

बचपन में विद्यार्थी-दशा में हम दिल्ली जाया करते थे । दादा धर्माधिकारी और मेरे एक रिश्तेदार constituent assembly के member थे । तो, वहाँ, गांधीजी के आश्रम में जीवन बिताये हुए एक अत्यन्त प्रतिष्ठित गृहस्थ आते थे । वे उस समय मंत्री थे और किसी काम से दिल्ली आते थे । उनका काम समाप्त होने पर सुबह के सिनेमा show को जाते, मध्याह्न के show को जाते और सायंकाल के show को - याने दिन में तीन-तीन show देखते थे ! अजी ! मुझे समझमें नहीं आता था, कुछ उसकी मुझे रुचि भी नहीं थी, मैं नहीं जाती थी; अत: मुझसे वे कहते थे कि चलो न, विमल ! मैं कहती थी कि आप तीन-तीन सिनेमा एक दिन में कैसे देखते हैं, भाई ? वे कहते थे, हाँ ! वहाँ आश्रम में कुछ देखने नहीं मिलता था !

तो, अपनेआप पर दमन करनेवाली, निग्रह-पीड़न करनेवाली जो मंडली रहती हैं, उनके जीवन में कहीं न कहीं विकृति निर्माण होती है । एक जगह हुआ दमन अन्य स्थान से असंतुलन बनकर उछलता है, उबलकर आता है, मैं आँखें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खोलकर समूचे हिंदुस्तान में घूमी-फिरी हूँ। ऐसे ही धार्मिक, आध्यात्मिक क्षेत्र के और गांधी-विनोबा आदि आश्रमों के व्यक्तियों के उदाहरण स्वानुभव से दे सकूँगी, किन्तु उसका यहाँ प्रयोजन नहीं।

मेरे कहने का अभिप्राय अलग है। मालिक बनने की भाषा, control करने की भाषा, नियंत्रण रखने की भाषा - यह किस ज़माने की भाषा बोल रहे हैं ? **Where is the mind to be controlled ? and where is the 'you' separate from, independant of, the momentum of thought structure to control it ? You are it. You are the mind. You are the thought structure. You are the movement of the structure.** यहाँ तक हम पहुँच गये हैं। कैसी वह पुरानी चबी-चबाई (एकसुरी-सी) चीलाचालु भाषा लेकर चले ? फिर क्या, सब पूर्वजों से कहा गया वह असत्य है ? असत्य नहीं ; उस समय वे वहाँ तक पहुँचे थे; फिर क्या आप और हम उसके आगे न जायें ?

मैंने गत वर्ष वह कथा सुनाई होगी। गरमी में मैं प्रतिवर्ष डलहौसी में रहती हूँ। वहाँ एक पंजाबी बहन रहती है। वे अपने छोटे बच्चे को लेकर आती थी। वह बालक अब बड़ा हुआ होगा, कुछ ८-९ वर्ष का। तो, उनके यहाँ चन्द्रमा की पूजा करने का कोई एक दिन होता है। उस दिन वह महिला चन्द्र की पूजा कर रही थी। बालक आकर पूजा की थाली खींचने लगा। कहने लगा 'तू मत कर पूजा !' 'क्यो ?' - 'वह चन्द्र तो अब भगवान नहीं ! वहाँ मानव पहुँच गया है ! उसने वहाँ पैर रखा है चन्द्र पर, तो अब भगवान नहीं ! वहाँ मानव पहुँच गया है ! उसने वहाँ पैर रखा है चन्द्र पर; फिर वह कैसा तेरा भगवान ? तू कैसे (क्यों) पूजा कर रही है ?' उसने थाली खीँच ली। थाली मेंसे फूल आदि बिखर गये। उस महिला को बड़ा दुःख हुआ। वह मेरे समीप उस बालक को ले आई; तब मुझसे बालक कहने लगा, "आप इन्हें कहो न ! गया था न मनुष्य चन्द्र पर ? गया है या नहीं ?" मैंने कहा - गया है। "फिर अब चन्द्र की पूजा 'देव' कहकर क्यों करे ?" मैंने कहा, तू कर मत। तुझे यह मालूम हुआ न, तू मत कर। तेरी माँ भी न कहे तुझे, पूजा करने। "किन्तु वह देव नहीं न ?" फिर कहा - क्या तुझे "देव" शब्द का अर्थ मालूम है रे ? उसने कहा – 'नहीं'। मैंने कहा, ऐसा है देख, हमारे यहाँ संस्कृत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाषा है । दिव्-दिव्यते इति देवः । अर्थात् जो प्रकाश देता है, वह देव । चन्द्र का प्रकाश है न बबुआ ? 'हाँ' कहा । होता है न ! बस्स ! तो फिर जो प्रकाश है न, उसे तेरी माँ 'देव' कहती है । फिर यह थोड़ा सोच में पड़ गया; क्योंकि light is a very important thing, very important thing ! वह कहने लगा, 'हाँ, प्रकाश को 'देव' कहा, तो चलेगा' । मैंने कहा - चन्द्रमा पर पैर रखना अर्थात् चन्द्र के प्रकाश पर नहीं रे पैर दिया ! उस बालक को यह बात जँची । हँसते हँसते गया । कहा, 'करने दो उसे, पूजा करनी हो, तो । वह देव की पूजा अर्थात् प्रकाश की पूजा है, बेटा !' कह के समझाया उसे !

अब बालकों को इस प्रकार से आप कहोगे तो उन्हें समझ में आता है; किन्तु उस पुरानी भाषा का उपयोग करोगे तो ? उस पुरानी भाषा को जैसे छोड़नी पड़ती है, वैसे ही मन के संबंध में हमारी धारणाएँ और मान्यताएँ छूट जायेंगी अब । उन्हें जाने देना । जो मिथ्या है ऐसा ध्यान में आया, उसे, जो मिथ्या है उसे, पकड़कर न रखें । तो मन का मालिक बने नहीं, सेवक भी बने नहीं, गुलाम भी बने नहीं । ये जो संस्कार-राशि है, वह आपकी 'संगिनी' है, 'सहचरी' है वह आपकी ! "भार्या गृहद्वारे, मित्रः स्मशाने देहश्चितायाम् ।" वह चिता तक साथ देनेवाली, तुम्हारे शरीर में रहनेवाली तुम्हारी सहचरिणी है ! तो, 'सहचरिणी' कहकर देखें, इस मन की ओर ! उसका परिचय कर लें । The organism, the mechanism of the mind, the chemistry of thought and emotion - यह सब देख लें और उसे पहचान कर उस (मन स्वरूप) मित्र की सहायता जहाँ-जहाँ आवश्यक लगे, वहाँ वहाँ लें ।

समझ में आता है, पर आचरण में नहीं आता

प्रश्न : यह शरीर और मन पञ्च-महाभूतों ने या निसर्ग ने उत्पन्न किया है, उनके मालकियत का है । उसका मार्ग निश्चित किया गया है, उसी प्रकार वह जायगा । मेरा उस पर कोई control नहीं । अपनी इच्छा से जाने पर कामना कभी पूर्ण होती है, कई बार नहीं होती; फिर दुःख होता है । राग, द्वेष, क्रोध आते हैं । भय भी लगता है; तो भी इच्छा, राग व द्वेष छोड़कर इस संसार में शून्य मन से जीना, यही 'सायुज्य मुक्ति' है, ऐसा लगता है । उस प्रकार प्रयास भी करता हूँ, तो भी जो समझ में आता है वह जिया नहीं जाता ।

उत्तर : मालूम होता है किन्तु जिया नहीं जाता, इसका अर्थ ऐसा है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि, जो मालूम होता है, वह जीने के लिए इन्द्रियों की तत्परता नहीं। यह एक; अच्छा ! तत्परता रही, तो इन्द्रियाँ हमें जो मालूम होता है, उसके साथ या उस गति में, या उसकी जो लय है, उस लय में – अपनी लय मिला नहीं सकतीं, एक तो इन्द्रियों का प्रतिकार या इन्द्रियों का प्रमाद, पश्चात् इन्द्रियों की तत्परता, किन्तु उनमें शक्ति नहीं, to cope with the momentum of your understanding; क्योंकि जो मालूम होता है, उस ओर मुड़ने में बहुत ज़्यादा समय नहीं लगता। इसके भी आगे यदि आपको ले जाना है, तो ऐसा कह सकेंगे कि understanding is a timeless happening. दिक् और काल - इनसे इस 'मालूम होने का' संबंध है ही नहीं ! जैसे बिजली चमक कर जाती है न, flashing across the horizon, वैसे वह जो मालूम होता है, वह चमक कर जाता है, चौँध जाता है चेतना पर, उज्जवल बनाता है चेतना को। अब, दिक् व काल की चौखट में न बैठनेवाली यह जो घटना है - happening in the timelessness of life, उसके संग में यह जो पार्थिव शरीर है, जिसमें इन्द्रियाँ हैं, मन व बुद्धि का उपयोग करके जहाँ जीना पड़ता है, वहाँ time-lag तो रहेगा ही - time-lag between understanding and action ! फिर इनका क्या करें ? तो इनकी संवेदनशीलता बढ़ाएँ। इन्द्रियों की संवेदनशीलता बढ़ाएँ व जिसे आप 'अति क्षुद्र' कहोगे, 'छोटे से छोटा' कहोगे, ऐसी कोई भी बात हों, उसके बारे में, जो मालूम होता है वही जीना, समझ में आता है वही करना, ऐसा एक व्रत लें; अर्थात् 'मालूम होना' और उस ओर 'मुड़ना' इसके बीच का अंतर देह के, बुद्धि के व वाणी के स्तर पर यदि नष्ट होता गया, तो यह जो 'सत्य ज्ञान' है, 'सत्य को समझना' है; उसमें भी मालूम होना और जीना - इस बीच में - time-lag का समय का जो अंतर है, वह निकल जायेगा ! पर कठिनता क्या है, कहूँ ? - जो मालूम होता है वह प्रिय लगता है, ऐसा नहीं रहता। वास्तविक कठिनाई आप जाँच कर देखें। आपको यह जो मालूम होता है - और यह जो मालूम होना है न, यह non-emotional, non-subjective event of life है। Non-subjective happening है। एक घटना है वह ! वह आपकी रुचि व अरुचि की परवाह करनेवाली नहीं है। आपकी इच्छा, अनिच्छा व भावना का हिसाब रखनेवाली और उसकी परवाह करनेवाली वह घटना नहीं। वह **'समझने का क्षण'** बहुत मज़े का है, बड़ी बहार की घटना होती है वह ! वह संकेत, जिस समय जानना व न जानना इनके उस पार का वह संकेत समझ में आता है, विदित होता है, उस समय उसने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो बताया है - 'शाखाचन्द्र' न्याय से - वह समझना, मालूम होना, जिस सत्य का वह निर्देश करता है वह जँचता नहीं है हमको। वह ठीक लगता नहीं है हमको। वह ठीक लगता नहीं है हमारी रुचि को! ('जँचता' यह शब्द मैं वापस लेती हूँ) 'रुचता नहीं, प्रिय नहीं लगता'। 'मैं' और 'मेरापन' - इन दोनों को सुरक्षित रखकर आपका सत्य यदि आता है, तो आने दो, जीवन में! किन्तु 'मैं-पना' और 'मेरा-पन' यह यदि सीधे निकल जानेवाला हो, तो? A sense of belonging! 'समस्त' एक जैसा ऐसा कुछ नहीं, 'मेरे' जो होंगे वे विशेष! वे सब में पहले तो हमें सत्य की चाह होती है, बुद्धि से वह प्राप्त हों, ऐसा लगता है और मन को वह प्रिय लगता नहीं। प्रिय नहीं है, इसलिए जिया नहीं जाता। तो, इन्द्रियों के बारे में हमें जो अड़चन है वह कही। प्रतिकार, प्रमाद, तत्परता, शक्ति कम-तरता तथा वह जो इन्द्रियों की गति है, उसकी सापेक्षता। यह तो सब आपने देखा।

अब इससे भी सूक्ष्म देखो, जो प्रिय लगता नहीं उस संबंध में - The basic contradiction in human psychology - aspiration for and fear of Truth. क्योंकि जो मालूम होता है न सत्य, वह कहता है कि आप अकेले हो! अकेले जन्म लिये हो, जानेवाले हो अकेले ही! मृत्यु के समय साथ नहीं, साथ की शक्यता भी नहीं व आप जो जीवन में जी रहे हो, सभी के साथ जीते हो सही; - किन्तु सब के साथ, सभीमें, सब से घिरे हुए रहते हो, तब भी आपकी जो अनुभूतियाँ हैं, उनमें अकेलापन ही है। 'ज्ञान' जो है, वह शब्दों से बाँटा जा सकता है; पदार्थ share किये जा सकते हैं, भावना व विचार जो हैं, वे भी शब्दों से बाँटे जा सकते हैं; किन्तु अनुभूतियाँ जो हैं, दुःख है, शोक़ है, आनंद है; उस आनंद के क्षण में आप अकेले ही नहीं रहते हो क्या? कल्पना करें कि नवविवाहित दंपती है, वे कहीं तो जाकर ठहरे हुए हैं, एक पहाड़ के उच्च शिखर पर, पहाड़ की चोटी पर, सागर के किनारे या घने जंगल में - गये हुए हैं, किन्तु उन्हें आनेवाली अनुभूतियाँ हैं, वे अलग-अलग प्रकार की आ सकतीं हैं, और वे (अनुभूतियाँ) कोई शब्दों से कही जानेवाली बात नहीं है। तब जीने के कर्म में भी आप अकेले हैं। यह जो अकेलापन है - **that you are alone in life. That the Essense of your Being is Uniqueness of Aloneness!** फिर आप वेदान्त पढ़ो, आप Zen-Buddhism की ओर जाओ, ध्यानमार्ग पर चलो, भक्तिमार्ग को अपना लो - परमात्मा साथ है;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस विश्वात्मा की संगत है; किन्तु दृश्य और व्यक्ति संसार में आपका एक सूक्ष्म विश्व है, अतंर्जगत् है, वहाँ आप अकेले हैं, और इस अकेलेपन से भयभीत न रहें। इस अकेलेपन का आनंद आना यही तो संन्यासी का सत्त्व है। यही हमको प्रिय नहीं लगता और इसीलिए तो समझ में आने पर भी, आचरण में नहीं उतरता।

कुछ भी न करना

प्रश्न : पिछले वर्षभर आसन, प्राणायाम आदि कर रहा हूँ। मौन के लिए भी एक घंटा स्थिर बैठता हूँ। शारीरिक स्थिरता साध्य होती है; किन्तु मन की चँचलता ठहरती नहीं। स्वासोच्छ्वास की ओर अवधान रखने पर भी उस समय अन्य असंबद्ध विचार आते ही रहते हैं। मौनावस्था साध्य होने के लिए निश्चित ऐसा क्या करना चाहिए ?

उत्तर : 'अनुपाय एव उपायः'! कुछ भी न करें। सत्य कह रही हूँ, कुछ भी न करें! अर्थात्, 'आप कुछ कर सकते हैं' यह जो कर्ता-भाव है, वह रखे नहीं। 'कुछ भी न करें' इसका अर्थ '**passivity** लेना' ऐसा नहीं, 'निष्क्रियता लेना' ऐसा नहीं है, 'जड़ता' लेना ऐसा नहीं; तो ? A new alertness with the awareness that nothing can be done and, therefore, you can not become the 'doer' (-कर्ता) - यह समझने की वह घड़ी है, मुहूर्त है वह, 'मैं एक वर्षभर यह सब कर रहा हूँ। विचार आते हैं।' आने दो ! विचार आ रहे हैं, उनसे आपका संबंध था, वह बदला या नहीं ? उसका प्रभुत्व था, वह बह गया या नहीं ? उसकी पकड़ जो थी, वह ढ़ीली हुई या नहीं। उन विचारों के पीछे दौड़ने में, भागने में तथा उन विचारों की पूर्तता करने में आपको एक जो सुख होता था, वह कम हुआ या नहीं ? देखने की बात है यह ! यह देखें और कितना भी प्रयत्न करने पर भी मनुष्य जैसे खुद के कँधे पर चढ़ नहीं सकता, उसी प्रकार मन को मौन रखने के लिए मानसिक प्रक्रियाओं का कुछ उपयोग होनेवाला नहीं। वह प्रयत्न व्यर्थ है। उस मन की गति को शांत होने दें ! एक वर्ष हुआ, दो वर्ष लगेंगे; ऐसी केलेंडॅर से और घड़ी से समय की गिनती न करें; क्योंकि psychological time has no reality. It is not a measurement to measure the Eternity. समाज-व्यवस्था के लिए व एक-दूसरे के साथ रहने के लिए 'time' यह नाप-तोल हमने किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

What is time ? It is a measurement. उसका उपयोग जहाँ करना है, वहाँ करें ! परंतु मन की गति को शांत करने वर्ष, दो वर्ष, मास, दो मास, ऐसा कुछ देखें नहीं; क्योंकि इस जगह तो गिनतियाँ या measurement हैं, वे असंगत - irrelevent हैं । उनका यहाँ लाभ नहीं । यह उनका उपयोग करने का क्षेत्र नहीं । उनका उपयोग करने का क्षेत्र अलग है ।

ध्यान से आनेवाले शारीरिक अनुभव

प्रश्न : पिछले तीन वर्षों से प्रातः उठते ही, शाम को और रात में सोने के पहले, एक घंटा ध्यान कर रहा हूँ ! कुछ महिनों के बाद ध्यान के समय मस्तक के भीतरी जगह में हलचल प्रतीत हो रही है । कभी-कभी उसकी तीव्रता अधिक रहती है । पूरे दिन भर भी अल्प प्रमाण में हलचल की अनुभूति होती रहती है । इसे क्या कहा जा सकता है ?

उत्तर : आपके प्रश्न में ऐसा कहा गया है कि, ध्यान करते रहता हूँ, अर्थात् आपकी दृष्टि से वह एक क्रिया है । वस्तुतः ध्यान यह क्रिया नहीं, प्रक्रिया नहीं । प्रारंभ में अवस्था, तत् पश्चात् आयाम; किन्तु आप बैठते हैं उसे, आप मौन में बैठते हैं - ऐसा समंझकर आगे चलेंगे । उस बैठने का यह परिणाम कि मस्तक के अंदर कुछ हलचल प्रतीत होती है, - शुभ है; क्योंकि जिस-जिस स्थान में यह रिक्तता है, विशेषतः यह जो 'मेरुदंड' है वह और 'मस्तिष्क' - ये जहाँ जुड़ जाते हैं, उस स्थान में रहनेवाले शून्य स्थान को - 'ब्रह्म-रंध्र' कहा जाता है - वहाँ रहनेवाला रिक्तस्थान, फिर 'भ्रूमध्य' जिसे कहा जाता है, वहाँ का रिक्त स्थान; इनमें tremendous potential energies हैं । बड़ी घनीभूत वहाँ ऊर्जाएँ हैं । तो, यह जो हलचल का आभास होता है, स्पन्दन प्रतीत होते हैं वे, जहाँ निष्पन्दता थी, वहाँ अब स्पन्दन हुआ है । मैं उसे हलचल कहुँगी नहीं । प्रथमतः स्पन्दन व फिर स्पन्दन से गति । स्पन्दन याने जहाँ पर हैं, वहाँ पर vertical and horizontal, at the point where it exists. 'यहाँ से वहाँ'- ऐसा हुआ तो उसे हम 'गति' कहते हैं; किन्तु जिस जगह यह रिक्त स्थान है, उस रिक्त स्थान में ही कुछ स्पन्दनों का भास होता है । Vibrations का आभास होता है, इसका अर्थ ऐसा है कि जो कुछ unconditioned energies हैं, उनके activisation का प्रारंभ है व आप जिस समय मौन में बैठते हैं, उस समय वे प्रतीत होते हैं । (इतना ही नहीं) - दिनभर में भी प्रतीत होते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। तो यह शुभ है। इस काल में यह जो स्पन्दन हैं, वे गति का रूप धारण करेंगे और ये गतियाँ समूचे शरीर में लीन हो जाएँगीं, आत्मसात् होंगी, ऐसा समय आने तक, शरीर से या बुद्धि से अति श्रम न करें। जितने शांत भाव से जी सकते हैं, उतने शांत भाव से जियें। अति socialisation न करें। बहुत बोले नहीं। जितना हो सके, उतना एकान्त में रहें। अपने कमरे में जितना समय मौन रह सकते हैं, रहें; and you take the process to its logical consummation (निष्पति-परिपूर्ति). यह जो कुछ स्पन्दन प्रारंभ हुआ है, उसकी 'गति' बने और वह समस्त शरीर में आत्मसात् हो तथा यह होने देने में यदि आप थोड़ा-सा समय, थोड़े मास इसमें बिताएँ (अब 'कुछ मास', 'कुछ समय', ये शब्द उपयोग करने पड़ रहे हैं, जी ! नहीं तो कहोगे - 'इधर कहते हो, केलेंडॅर का उपयोग न करो और उधर ऐसा कहते हो !' - क्या करें ! शब्दों से बोलना पड़ता हैं।) - मैं मास, दो मास, छः मास - ऐसा (निश्चित) नहीं कहती हूँ, मैं ऐसा कहती हूँ कि कुछ अवधी लगेगी; क्योंकि शरीर में वे absorb assimilate होना ज़रूरी है। शरीर द्वारा उस गति को पचा लेना होता है। अन्न पचने में समय लगता है या नहीं ? तीन-चार घंटे लगते हैं न ! इस प्रकार ये जो ऊर्जाएँ हैं, वे पचने में समय लगता है। तब इन हलचलों से या स्पन्दनों से घबराना नहीं। ये हलचलें तीव्र लगती हों, तो आप जो मौन में बैठते हैं, उसमेंसे उठने पर ५ मिनिट या १० मिनिट (एक कहने की पद्धति है, अतः कह रही हूँ) - फिर थोड़ा समय शवासन में स्वस्थ रहें; अर्थात् vibrations होंगे, वे subside होंगे। वे वहाँ के वहाँ सोक जाएँगे; तभी उठकर काम में लगना। नहीं तो फिर चक्कर आने प्रारंभ होगा, आँखो को अँधेरा आयेगा; क्योंकि एक new energy (is there) that is growing ! Puberty का period रहता है न, तब लड़कों-लड़कियों को कैसी बेचैनी रहती है ! वे समस्त शरीर में नई उभरनेवाली ऊर्जाएँ रहतीं है, उनका क्या करें यह आकलन नहीं होता, ऐसी अवस्था इन नई ऊर्जाओं की जागृति के समय होती रहती है। इसमें घबराने, भय लगने जैसा कुछ नहीं; किन्तु थोड़ा-सा सावधान रहना चाहिए।

लगभग डेढ़ घंटा आज आपका मैंने लिया है; किन्तु ऐसा लगा कि तात्त्विक या सैद्धान्तिक प्रश्न हम प्रातःकाल देखते हैं; कई प्रश्नों के, एक-एक प्रश्न लेकर उत्तर यदि दिये, तो शायद ही आपको विशेष आनंद होगा, अतः वह प्रश्नपत्रिका ही आज ले आई और आपकी परीक्षा में बैठी, प्रश्नों के उत्तर देने ! आपने शांत चित्त से श्रवण किया; सबकी मैं आभारी हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन षष्ठ

आत्मोन्नति और बच्चे

(प्रश्नोत्तरी - सत्र)

प्रश्न : 'यदि परमात्मा सच्चिदानंद स्वरूप है तो, इस संसार में इतनी बुरी बातें क्यों और कहाँ से आईं, ऐसा मेरे मन में प्रश्न उठता है। एक विद्यार्थिनी ने लिख दिया है और आगे ऐसा कहा है कि - ईश्वर ने यदि माया की सहाय से सृष्टि निर्माण की हो, तो उस माया को बुरा क्यों कहें ? उसे बंधन कैसे माने ? प्रश्न के तीसरे भाग में कहा है कि - सत्त्व, रज व तम मेंसे रजोगुण और तमोगुण से तो कुछ अच्छा या शुभ घटता है ऐसा दिखता नहीं; फिर यह सब (अशुभ इत्यादि) सच्चिदानंद परमात्मा की सृष्टि में क्यों और कैसे ?

अच्छा और बुरा

उत्तर : अब प्रश्नकर्ता से प्रति-प्रश्न करने की इच्छा होती है। पहला प्रति-प्रश्न ऐसा है कि 'बुरा' इस शब्द का जो उपयोग किया गया है, उसका क्या अर्थ लें ? 'बुरा' किसे कहें ? 'बुरा' याने अंग्रेजी भाषा में जिसे 'evil' कहते हैं, 'शैतानी सत्ता' कहते हैं, वह अर्थ है क्या ? और 'परमात्मा' याने क्या समझते हैं आप ? क्या कोई व्यक्ति है ? एक cosmic mind रहनेवाली विराट व्यक्ति है क्या कोई ? और उसने यह विश्व निर्माण किया है क्या ? वास्तव में निर्माण करनेवाला अलग और जो निर्माण हुआ है, वह उस ईश्वर से भिन्न, स्वतंत्र, - ऐसा कुछ मानते हैं क्या ? पिछले तीन दिनों से हम देखते आयें हैं, वह यह देखते आये हैं कि 'परमात्मा' इस संज्ञा से एक सत्ता का संकेत होता है, जो सत्ता प्रज्ञामयी है, उस सत्ता का उपादान ही प्रज्ञा है, intelligence है और उस प्रज्ञा के स्फोट मेंसे, जिसे हम 'विश्व' कहते हैं, वह बना हुआ है; अर्थात् वह प्रज्ञा ही विश्वाकार हुई है; सत्ता ही विश्वाकार बनी। 'सर्वत्र, सर्वदा, सर्वथा, सर्वाकार' ऐसा उस परमात्मा का स्वरूप है। तब उसने कुछ निर्माण किया और एक तरफ रख दिया और कहीं दूर बैठकर देख रहा है, ऐसा अपना अर्थ 'परमात्मा' शब्द मुझे नहीं बताता; और उस सत्ता में प्रज्ञा की चिन्मयता है। वह सत्ता नष्ट होती नहीं, अतः वह 'सत्य' है और अमृतमयी है; प्रज्ञामयी है अतएव 'चित्' है और जहाँ जन्म या मृत्यु नहीं, अज्ञान का अंधकार नहीं, वहाँ आनंद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का आलोक रहता है; इसलिए वह 'सच्चिदानंदमयी' है।

अब आप कहते हैं कि, संसार में बुरी बातें कहाँ से आती हैं ? किसे 'बुरा' कहते हैं आप ? दुष्टता, क्रूरता ? अन्याय ? अधर्म ? अनीति ? शोषण ? हिंसा ? स्वभाव की विचित्रता ? कुटिलता ? जटिलता ? क्या कहना है आपको ? ख्रिचन धर्म में - और जिस धर्म में Metaphysics पर समस्त संस्कृति खड़ी है, जिस पर अमेरिका की सभ्यता की इमारत खड़ी की गई है, उस धर्म में एक है इश्वर, The God और दूसरा है, Devil, representing the power of Evil. तब उनका काम आसान है। जिसे आप 'बुरा' कहते हैं, वह उस Devil के कारण है। The influence of the black powers, the influence of the Devil, ऐसी कार्य-कारण मीमांसा जोड़कर वे लोग छूट जाते हैं। यदि आप अनीति, अन्याय, अधर्म, शोषण - इन्हें बुरा कहते हैं, तो उसका कारण वह परमात्मसत्ता नहीं। उसका कारण यह है कि मनुष्य-जाति को, मानवीय-समाज की रचना अभी तक करने नहीं आई है। उसे पशुओं की तरह झुंड करके रहना नहीं है। उसे समाज की आकांक्षा है। वह social animal, rational animal है। उसके पास बुद्धि है, स्व-संवेद्यता है, इसलिए समाज बनायें, एक-दूसरे के साथ रहें, सुख-दुःख बाँट लें, एक-दूसरे को सहाय करें, ऐसी अभीप्साएँ उनके प्राणों में समाई हुई हैं; किन्तु अभी तक वह साध्य नहीं हुआ है। तो समाज-रचना, अर्थ-व्यवस्था, परस्पर संबंधों के आधार - उसे निर्माण करने आये नहीं हैं; अतः अधर्म, यह अन्याय, यह अनीति, यह शोषण है। यद्यपि महर्षि कार्ल मार्क्स के कुछ उपकार होंगे, तो उसने materialistic interpretation of history किया, dialectical materialism - दर्शन के रूप में समाज के सम्मुख रखा और बता दिया कि ग़रीबी, शोषण और यह दलित वर्ग, यह श्रमिक व शोषित वर्ग - इसे कहीं परमात्मा ने निर्माण नहीं किया। पूर्व जन्म के पाप के कारण ये गरीब हुए, शोषित व दलित बने - यह सब झूठ है और इस कारण उसने धर्म को 'अफ़ीम की गोली' कहा और वह अफ़ीमं की गोली देकर The human psyche has been completely handicapped, यह बात उसने समाज के सम्मुख रखी। तो, ये जो बुरी बातें हैं उन्हें, कृपा कर के धर्म से या अध्यात्म से न जोड़ें। उनका भगवान से कोई संबंध नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनुष्य को अभी सीखना है। आकृति मनुष्य की प्राप्त हुई परंतु प्रकृति मनुष्य की नहीं मिली। उसका विकास होना है। How to live on Earth like a human being, we have not yet learnt. अन्य जो विकार हैं, यदि आप उन्हें बुरे कहते हों - क्रोध आता है, द्वेष पैदा होता है, असूया, मत्सर, ईर्ष्या होते हैं, तोड़-फोड़ करने की इच्छा होती है, किसी का मन दुःखायें, हमें जो चाहिए वह यदि नहीं हुआ, तो अन्यों के गले मरोड़ते रहें, हिंसा करें - यह सब जो लगता है, वह सारा ignorance about the mystery of human relationship है।

'संबंध' याने क्या ? इस 'संबंध' में जीना यही मानवी-जीवन की इति कर्तव्यता है - ऐसा किसीने कहा नहीं। मनुष्य-जीवन का ध्येय, अर्थात् परलोक में कुछ प्राप्त करना है या इस इहलोक में एक-दूसरे से व इस सृष्टि के साथ संवाद साधते हुए जीना है, समन्वय साधकर जीना है; सभीका उदय हों, परस्परों के सहाय से, 'परस्परं भावयन्तः श्रेयं परमवाप्स्यथ' यह करना है, ऐसा कहा नहीं। जीवन का ध्येय, जीवन का लक्ष्य जीवन के बाहर ! इहलोक के भी बाहर ! तो, ऐसा एक extra-territorialism धर्म व अध्यात्म के नाम पर लोगों को सिखाया गया है। इसलिए संबंधों में जीना, संबंधित रहना, यही जीवन का मर्म है और ऐसा जीना, यही मनुष्य का धर्म है - यह मालूम ही नहीं। उस जीने में टेढ़ामेढ़ापन न आये, किसी भी प्रकार का असंतुलन न आये, - क्योंकि जिसे आप 'क्रोध' कहते हैं, वह mal-adjustment with reality है। हमें प्रिय नहीं ऐसा कुछ घटित हुआ, तो वह प्रिय न रहने से हमारे मन में जो चीड़ आती है वह बताने का प्रकार है यह क्रोध। अपेक्षित था वह प्राप्त नहीं हुआ तो, जीवन की परिस्थिति से संबंधित होने नहीं आया। It's a mal-adjustment, फिर वह ईर्ष्या हो, मत्सर हो, क्रोध हो; उसे आपने बुरा कह कर फेंक दिया, तो फिर उसके संबंध में घृणा उद्भूत होगी, तिरस्कार आयेगा, उसे समझ लेने की इच्छा नहीं होगी, उसका स्वरूप देखने की इच्छा नहीं होगी और आप क्रोधाकार बनते हैं, आपकी वृत्ति मत्सराकार होती है, द्वेषाकार होती है। आप और वे अलग रहते नहीं। तो आपमें ही क्रोध के, लोभ के, मोह के नाम पर, एक प्रकार की क्षणिंक, अल्पजीवी या दीर्घजीवी ऐसी असंतुलन की दशा उत्पन्न होती है, यह कोई नहीं देखता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बच्चों को मन का शिक्षण दें

मुझे ऐसा लगता है कि यदि वैज्ञानिक पद्धति से जीने की शिक्षा शालाओं में लड़कों को, लड़कियों को देने में अगर उनको परिचय करा दिया कि - मन क्या है ? विचारों की गति कैसी होती है ? यह भावनाओं की chemistry क्या है ? कैसे काम करती है ? - यह अगर उन्हें सिखाया गया, तो मुझे ऐसा लगता है कि जो कई बुरी बातें हैं, जिन्हें आप 'बुराई' कहते हैं, उसका निराकरण हो पायेगा ! पश्चात् freak of nature कुछ रहेगा नहीं, ऐसा तो कह नहीं सकेंगे । आप बिलकुल अच्छा बीज बोयेंगे या छोटे-छोटे पौधे लाकर लगायेंगे; किन्तु जब वे बढ़ने लगेंगे, बड़े होने लगेंगे, उस समय सभी की गति ऋजु रहती है, सरल गति रहती है, ऐसा नहीं । उनमेंसे कुछ टेढ़े-मढ़े भी हो सकते हैं । The ratio of the chemicals and vitamins in the body, the ratio of blood's cells, the conditioning of the brain cells - इन सबके कारण अलग-अलग स्वभाव-धर्म निर्माण होते हैं । Temperamental idiosyncracies उत्पन्न होते हैं; फिर भी हम ऐसा नहीं कहते हैं कि मिर्ची तीखी क्यों और नीबू खट्टा क्यों, उसी प्रकार किसी एक मनुष्य का स्वभाव क्रोधी क्यों और दूसरे किसी मनुष्य के स्वभाव में क्षुद्रता क्यों, ऐसा प्रश्न नहीं पूछ सकते । It's a wrong question. अपनी हानि होने न देते हुए और हो सके उतनी उस व्यक्ति को सहायता करके और यदि मदद करना मुनासीब न हों, तब जिसे आप 'बुरा' कहते हैं, उसका प्रतिकार करते हुए, उसके साथ जीना आना चाहिए - यह कला हमें सीखनी है । 'योगियां साधली जीवनकला' ! यह जीवन जीने की कला हमें सीखनी है ।

"माया" याने क्या ?

माया की सहायता से परमात्मा ने सृष्टि निर्माण की है । अब तो ऐसे अनेक सिद्धान्त होंगे, अनुमान होंगे, जिसे 'आप्त वाक्य' कहेंगे, ऐसे भी होंगे । अब यह code language रहती है । जिसकी सहायता से भगवन्त की असीमता का, अनंतता का अनुमान किया जा सकता है; उसका नाम 'माया' । 'माया' अर्थात् कुछ तो मिथ्या या false, ऐसा नहीं, जी ! 'मिथ्या' शब्द का अर्थ भी ऐसा नहीं । जिसे आप व्यवहार में झूठ कहोगे, जो 'नहीं' ऐसा अभावात्मक कहोगे, ऐसा अर्थ नहीं, illusion - 'भ्रम' ऐसा अर्थ नहीं । यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

code language है, ऐसा कहा है मैंने। पारिभाषिक शब्द है वह। आपने देखा कि यह जो नाम-रूपमय पदार्थों की सृष्टि है, उसमें अनगिनत ऐसी विविधता, विलक्षणता, विचित्रता है। देखते रहेंगे तो सौ जन्म लेने पर भी देख नहीं पायेंगे और उस एक-एक के प्रकार से संबंध रख नहीं पायेंगे; ऐसे रंग, रूप, रस, सुगंध की भी अनेकता है। लगभग अनंत कह सकेंगे ! उनकी नवीनता में कमी नहीं होगी। लाखों वर्ष मानवजाति इस पृथ्वी पर रहे, तो भी वर्षा-ऋतु का, शीत-ऋतु का, वसंत-ऋतु का, ग्रीष्म-ऋतु का जो भी तेज, ओज, लावण्य, सौन्दर्य, रौद्ररूप, भीषण रूप जो है, वह पुराना नहीं होता। उसकी नवीनता, उसमेंसे निर्माण होनेवाला सृजन या सर्जन यह कुछ रुकता नहीं।

'नेति, नेति' क्यों ?

इस माया की सहायता से यह जो विविधता, विलक्षणता व विचित्रता है, अनिर्वचनीय ऐसी जो विचित्रता है, उससे हमें अनुमान लगता है कि इस व्यक्त सृष्टि के पीछे जो भी अव्यक्त या अनंत होगा, उसकी सत्ता सर्वव्यापिणी है। यह जीर्ण होती ही नहीं, अतः सनातन है। अंत नहीं, अतः वह अनंत है। उसे मर्यादा नहीं, अतएव वह असीम है। तो फिर उसके बारे में क्या कहा जाय ! 'न इति, न इति, न इति' ही कहना पड़ता है ! अन्य शब्द मिल नहीं पाते भाषा में वर्णन करने !

"वाचा अनभ्युदितं येन वाग् अभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि न इदं यद्दिदमुपासते ॥

यन्मनसा न मनुते येनाहो मनोमतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि न इदं यदिदमुपासते ॥"

मन से मनन नहीं होता, वाणी से प्रकट नहीं होता, तर्क की पकड़ में नहीं आता, आँखों से दृष्टिगोचर नहीं होता, कानों से श्रवण नहीं होता। - जो ब्रह्म है, जो सनातन सत्य है, वह ऐसा नहीं। न इति ! तू जिसकी उपासना करता है, वह सापेक्ष है, वह मर्यादित है। वह दिशा व काल की मर्यादा में आता है, उनकी कैंची में अटकता है - जिसकी तू उपासना करता है वह ! 'तद्विद्धि ब्रह्म...' ऐसी negative भाषा का उपयोग करना पड़ता है। Infinity कहो,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

eternal कहो, unnamable कहो, unthinkable कहो, किसी भी भाषा के शब्द लेने पर उस स्थान में भाषा का नकारात्मक उपयोग करना पड़ता है कि 'यह नहीं', इन्द्रियों की पकड़ में आनेवाला नहीं, तर्क की मुट्ठी में आनेवाला नहीं - ऐसा ही कहना पड़ता है । तो, 'माया' शब्द का अर्थ आप समझ लीजियेगा । विभूति का वर्णन करते समय भी श्रीमद् भगवद्गीता में वासुदेव ने ऐसा ही कहा कि तुझे कुछ ही विभूतियाँ सुनायीं हैं ।

"यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम् ।।"

मैंने अल्प ही विभूतियाँ तुझे दिखायीं हैं । अर्थात् वह सत्ता, वह तत्त्व, वह 'होनेपन' व उस होनेपन में रहनेवाली जो अनंत रूप धारण करने की, अनंत-कोटि ब्रह्मांड निर्माण करने की शक्ति है, उस शक्ति को 'माया' कहते हैं ।

परमात्मा कहीं एक जगह पे है और उससे अलग माया किसी और जगह है, जहाँ से उसे बुलायें कि- 'आओ री ! मेरी सहायता को' ऐसी बात नहीं है । The primal energy of expansion, primal energy of diversity, the primal energy of expansion, explosion, यह जो विस्फोटक शक्ति है इसीको हमारे यहाँ 'माहेश्वरी', 'महा सरस्वती', 'महाकाली', 'महालक्ष्मी' - The 'primal desire' कहते हैं । स अकामयत् एकोऽहं बहुस्याम् । 'इसकी इच्छा से जगत् का निर्माण हुआ' यह काव्यात्मक भाषा है । 'इच्छा से जगत की निर्मिति हुई, तो उसे मन रहना ही चाहिए और 'अकायमत्' याने उसने भी कोई संकल्प किया ही होगा' - ऐसी हमारी मानवीय प्रक्रिया उस सत्ता पर हम डालने-आरोपित करने जाते हैं और सत्ता का वर्णन करते समय मानवीय भाषा का प्रयोग करना पड़ता है; ऐसी इस मुश्किल में हम पड़ते हैं; किन्तु यह रूपक है, यह दृष्टान्त है, यह उपमा है । उसकी अति खींचा-तानी न करें । यह काव्यात्मक सांकेतिक वर्णन है । तो, 'हे विश्व नव्हेरे माया, हे विश्व प्रभूची काया' ! 'यह विश्व माया नहीं, यह विश्व तो प्रभु की काया है ! ब्रह्म सत्यं जगन्माया ! 'जगन्मिथ्या' इसका अर्थ illusion नहीं । बहुत-बहुत हुआ तो आप आईन्स्टीन के सापेक्षवाद तक, यह 'माया' शब्द ले जाओगे । Relativity ! तो सत्ता तथा सत्ता की शक्ति, सत्ता में होनेवाली ऊर्जा, तो फिर उसे 'शिव-पार्वती' कहो, 'राधा-माधव' कहो, 'सीता-राम' कहो, 'गौरी-शकंर' कहो;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो कोई नाम देने हों, वे दे दो। कल्पना का दारिद्र्य किसलिए ? शब्दों की गरीबी किसलिए ? संवेदशीलता और रसिकता हों, तो अभिव्यक्ति का ऐश्वर्य मिल सकता है।

गुण और गुणातीतता

सत्त्व, रज व तम; वात, पित्त और क़फ़; और पञ्च-महाभूत, इन सबसे यह शरीर बनता है। हमारा ही नहीं, समस्त प्राणीमात्रों का ! और संभव है आप को आश्चर्य लगेगा कि वनस्पति-सृष्टि में भी सत्त्व, रज और तम हैं। हमारा आयुर्वेद कहता है कि वात-पित्त-क़फ़ात्मक प्रकृति वनस्पति-सृष्टि में भी रहती है। हमारे बचपन में कनोज में गौरीशंकर स्वामी नाम के सन्त थे, उनसे परिचय हुआ था। बचपन से मेरा एक ही उद्योग रहता था; जहाँ कोई सन्त, महन्त, योगी दिखें, वहाँ दौड़ते जाना, पूछना, देखना। वे रामकृष्ण परमहंस के परमभक्त व कालीमाता के उपासक थे। आयुर्वेद के बड़े अधिकारी। उन्हें कोई वनस्पति आदि लानी हो, तो वे उस वनस्पति को निमंत्रण देने जाते थे, मैं उनके संग जाती थी। रात-बेरात वनस्पति की पूजा कर के, हलदी, कुंकुम, अक्षत देकर निमंत्रण देते थे कि मैं कल तुम्हें ले जानेवाला हूँ; घर पे औषधि के लिए मुझे, तुम्हारा उपयोग करना है। वे इन वनस्पतियों के सत्त्व-रज-तम – गुणों का व वात-पित्त-क़फ़ प्रकृति का परिचय करा देते थे। वह हमारा विषय नहीं था। हम कह नहीं सकते कि रजोगुण और तमोगुण का कुछ उपयोग ही नहीं; या इस सृष्टि की धारणा करने में इनका कोई स्थान नहीं। यदि तमोगुण न हो, तो निद्रा कैसे ले सकेंगे ? तमोगुण न हो, तो स्थिरता ही नहीं रहेगी। गुरुता, स्थिरता ये तमोगुण के लक्षण हैं और रजोगुण के बिना, आप जिसे हलचल कहते हैं, वह होगी नहीं। रजोगुण में हलचल की संभावना है। यदि रजोगुण न रहा तो, क्रिया ही होगी नहीं; इसलिए रजोगुण को या तमोगुण को बुरा कहने की कोई आवश्यकता नहीं। 'निर्मलत्वात् प्रकाशकत्वात् अनामयत्वात् च सत्त्वम्।' सत्वगुण के लक्षण हैं निर्मलता, प्रकाशमयता, अनामयता। अनामयता याने व्याधिरहितता। 'आमय नाम व्याधिः' निरामय याने अनामय।

तो सत्त्व, रज और तम - इन तीनों का प्रयोजन है। यदि सत्त्व यह प्रधान रहा व रजोगुण, तमोगुण सत्त्वांकित रहे, उसके आधीन रहे, तो ज़्यादा विपत्तियाँ नहीं आतीं; किन्तु तमोगुण का साम्राज्य रहा तो, वह रजोगुण को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और सत्त्वगुण को आपके पास आने ही नहीं देगा ! फिर वहाँ से प्रमाद, 'आलस्य' ! आलस्य शब्द क्या है ? 'आलस्यम्' ऐसा शब्द है, जी ! 'अलस' शब्द से आलस्य शब्द बना और उसमें 'र' का 'ल' हुआ है । 'अरस - अलस' । संस्कृत में ऐसे विनोद होते रहते हैं । कहीं 'स' का 'ह' होता है; कहीं 'र' का 'ल' होता है; 'व' का 'ब' होता है (परंतु हमें पाणिनि की ओर मुड़ना नहीं है) तो, अलसम्; अरसम् । अलसस्य भावः आलस्यम् । तो, तमोगुण का प्रभुत्व होता है, तब जीवन प्रमादी बनता है व आलस्य अर्थात् sluggishness, lethargy, slowness. शरीर के स्नायुओं में, मज्जा में, ज्ञानतंतुओं में गति रहती है, वह गति ही धीमी पड़ जाती है । रजोगुण प्रधान रहा, तो गति इतनी तीव्र होती है कि आपको चैन पाने नहीं देती; फिर आप क्रिया-ग्रस्त हो जाते हैं । व्याधि-ग्रस्त वैसे क्रिया-ग्रस्त । कुछ न कुछ करते रहना पड़ता है । यदि सत्त्वगुण के अधीन ये दोनों रहे, तो कुछ संतुलन जीवन में रहता है; परंतु आखिर गुण तो गुण ही है । गुणनाम पाशः । गुण एक प्रकार का बंध है; अतः 'निःस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ! त्रैगुण्यविषयावेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।' इन गुणों के परे भी सृष्टि है । चेतना की एक दशा है रे, अर्जुन ! अर्जुन को संबोधन किया गया है, तो भी वह संबोधन हमारे लिए ही है । गीता यह जीवन जीने का एक शास्त्र है । सर्वग्राही ! जीवन का कोई भी पहलू छूटा नहीं है । उन वेदोपनिषदों के दोहन से जो 'गीता नाम दुग्धम्' वासुदेव ने अर्जुन को पान कराया, उसमें संपूर्ण जीवन का समग्रता से विचार किया है । Holistic approach to life ! देश-काल-परिस्थिति अनुरूप आयी हुई आनुषंगिक गौण बातें गीता में आई नहीं है, ऐसा नहीं; लेकिन ये निकाली जा सकतीं हैं और संभव है ७०० श्लोकों मेंसे २००-२५० श्लोक रहेंगे । हमें ऐसे प्राचीन ग्रंथ का अवलोकन करते समय गौण क्या है और मूल प्रतिपाद्य विषय क्या है इसका थोड़ा, आत्म-अनात्म-विवेक जैसा विवेक करना पड़ता है; नहीं तो हम गौण में ही उलझ जाएँगे और मूल विषय तो अलग ही रह जायगा । तो रजोगुण या तमोगुण से कुछ शुभ होता ही नहीं, ऐसा आप नहीं मानना, जी ! हरेक का स्थान है ।

"अमंत्रं अक्षरं नास्ति, नास्ति वनस्पत्यौषधिं विना ।
अयोग्यो पुरुषो नास्ति, योजकस्तत्र दुर्लभः ।।"

इस प्रकार से ये जो सत्त्व, रज व तम हैं; वात, पित्त, क़फ़ हैं - इनका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आयोजन हमें करने आना चाहिए। उस आयोजन में स्वास्थ्य की कुंजी है। जीवन के आनंद की, प्रसाद की भी गुरु कुंजी उस आयोजन में होगी। योजकस्तत्र दुर्लभः ! (संबंध बैठाने की कला जाननेवाला कलाकार मिलना दुर्लभ है !)

इस प्रश्न के तीन भागों के संबंध में संक्षेप में जितना कुछ देखना शक्य था, वह हमने देखा। हमें अब एक अन्य प्रश्न की ओर मुड़ना है।

परमेश्वर व उसकी सृष्टि के संबंध में कहते हुए मैंने जान-बूझकर ही ब्रह्म, माया, फिर वह शबल ब्रह्म, विशुद्ध ब्रह्म, विवर्तवाद, मायावाद, लीलावाद - ये समस्त जो पारंपरिक शब्द और जो पारंपरिक अभिगम हैं, उन्हें छोड़ दिया है; क्योंकि इन समस्तों का अभ्यास आप सभीने किया ही होगा ऐसा नहीं। कई सिद्धान्त हैं about the cosmogensis; परंतु उसकी यदि हम चर्चा करेंगे, तो और पाँच दिन रहना पड़ेगा; अतः एक ही वाक्य में मैंने कहा कि - 'विश्व नव्हे रे माया। हे विश्व प्रभूची काया !' यहाँ अगर स्पर्श किया गया (यदि स्पर्श करना हुआ तो) स्पर्श किया वहाँ, तो विषयों में भी वह नारायणी शक्ति ही हमें दिखेगी और उस शक्ति का स्पर्श होगा। 'विषयचि अवघा झाला नारायण' - (अर्थात् विषय ही समूचा नारायण प्रतीत हुआ) क्या कहना चाहते थे तुकारामजी ? वहाँ कोई चतुर्भुज मूर्ति खड़ी रहती थी क्या, उनके लिए ? विषयों में जो रस है वह रसानां रसो वै सः। उस परमात्मा का ही रस उस विषय में है; फिर करेले के कड़वेपन में वही रस है, मिर्च की तीक्ष्णता में वही और गन्ने की मिठास में भी वही है - यह उन्हें प्रतीत हुआ, अतः 'विषयचि अवघा झाला नारायण' अथवा गुजरात के नरसिंह मेहता 'कृष्ण विण नव दिसे कांइ' - 'मुझे कृष्ण के अतिरिक्त कुछ दिखता नहीं' ऐसा कहते हैं। 'अखिल ब्रह्मांडमां एक तुं श्रीहरि' कहते हैं; उन्हें समस्त स्थानों में क्या वह मुरलीवाला नज़र आता था ? शंख, चक्र, गदा, पद्म पकड़कर ही खड़ा था वह ? नहीं, सत्त्व का संकेत है, निर्देश हंमेशा सत्त्व का और तत्त्व का रहता है।

तत्त्व का तेज अर्थात् विभूति और विभूति धारण करनेवाले वे पदार्थ, जिन्हें रूप रहता है, इसलिए हम नाम देते हैं - ये तत्त्व, तेज और पदार्थ; तत्त्व, ऊर्जा और पदार्थ; matter, energy and the 'to be'-ness or 'Is'-ness of reality, ऐसा बड़ा मज़ेदार त्रिकोण है; किन्तु हमें आगे जाना है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युवापीढ़ी और आत्मोन्नति

प्रश्न : आज की युवा पीढ़ी को जीवन का ध्येय आत्मोन्नति रहे, यह कैसे समझा दिया जाये ? धर्म व ईश्वर का जीवन में कुछ महत्त्व है, यह कैसे उन्हें बता दिया जा सकता है ?

उत्तर : यदि प्रतिप्रश्न करने दोगे, तो मैं पूछूँगी कि कौन है यह गले उतारनेवाला ? समझानेवाला ? जिन्होंने अपने जीवन के एकेक क्षण का उपयोग आत्मोन्नति के लिए किया है, वे ही समझा देने की स्थिति में रहेंगे न ! धर्म व ईश्वर का रहस्य सुलझाकर फिर उस सत्ता से अनुसंधान सधकर जो जीते होंगे, वे ही उसे समझा सकेंगे न ? क्योंकि, शब्दों से नहीं समझा दिया जा सकता। शब्द बहुत पंगु हैं। उनका उपयोग तो करना पड़ता है; पर असल में जीवन ही सब समझा देता है, देखो ! जिन शब्दों के पीछे केवल बुद्धि की निष्ठा है किन्तु जीवन की शक्ति नहीं है, उन शब्दों द्वारा कुछ अर्थ या भाव संक्रान्त नहीं होते; समझा देना तो बहुत दूर convince करना अति दूर रहा। तो हमारे शब्दों के साथ वह तप होना चाहिए।

आत्मोन्नति के लिए जीना यह तप है। आत्मानुसंधान रख के इस दैहिक व्यापार में तथा मानवीय संबंधों में जीना बहुत बड़ा तप है। ऐसे तपस्वी यदि हम रहें हों और उस सत्ता से प्राणों का अनुसंधान रहने से अनुप्राणित ऐसी यदि हमारी काया हो - **vibrating with the awareness of the Divine and the Divinity of life,** ऐसा यदि हों, तो हमारी काया बोलने लगेगी। दशेन्द्रियों से वाणी द्वारा उपदेश न देते हुए भी, जो कहना है, वह संक्रान्त होता रहेगा। यह प्रथम मेरी बात आप कृपया ध्यान में लें ! क्योंकि यह शब्द का विषय नहीं। शब्दों को वाहन समझकर उनका उपयोग करना है; पर शब्दों के साथ-साथ हृदय की भक्ति, श्रद्धा और फिर दशेन्द्रियों से झरनेवाला अनुभूतियों का रस आना चाहिए। **'अनुभवा वीण बोलू नको'** ऐसा हमारे सोहिरोबा कहते हैं। अनुभव के बिना हाँ में हाँ मत मिलाओ और अनुभव बिना शब्द भी मत बोलो। **'सोईरा म्हणे ज्ञानज्योती'**। ऐसी वह ज्ञान ज्योति तेरे भीतर यदि प्रज्वलित होगी, तो उसका प्रकाश दशेन्द्रियों मेंसे बाहर निकलेगा। 'हरिभजना वीण काळ घालवू नको रे !'। तो, समझा-बूझा देनेवाली व्यक्ति ऐसी रहनी चाहिए। उस प्रश्न के संबंध में प्रथम मुझे यह कहना है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपना ही आचरण सुधारो !

अब दूसरी बात ! किस कारण युवा पीढ़ी धर्म में जीवन बिताए ? ईश्वर या आत्मा-परमात्मा की चर्चा किस कारण वे सब करें ? वे सब आत्मोन्नति का ध्येय कैसे स्वीकार करें ? इस देश में जो शासन है, जो शासक-वर्ग है, जो राजनैतिक पक्ष हैं, जो धर्म-गुरु हैं, मंदिरों में, मठों में, गुरुद्वारा, देरासर, बौद्ध-विहार, मस्जिद - इन सभी स्थानों में नाम मात्र बैठनेवाले जो हैं, वे उत्तान और उच्छृंखल भोगवाद व भोतिकवाद के शिकार हैं। देश का सारा वातावरण ही उन्होंने दूषित कर डाला है। जब यह ऐसा है, तब इस बेचारे निरपराध युवा-वर्ग ने ही क्या पाप किया है कि वे धर्म, ईश्वर और आत्मोन्नति को अपना ध्येय माने ? इस देश में true religion - सच्चा धर्म और आत्मोन्नति यह जीवन का लक्ष्य है - ऐसा यदि (युवा पीढ़ी से) कहना हो, तो प्रथमतः समस्त राजनैतिक नेताओं को और राजकीय कार्यकर्ताओं को निकालकर अंदमान-निकोबार भेज देना चाहिए। मैं असत्य नहीं कह रही हूँ और शायद मेरा कहना आपको कठोर भी लगेगा। किन्तु सचमुच ऐसी विदारक परिस्थिति है ! सबको अंदमान-निकोबार भेज दो, उन्हें मज़दूरी करने में लगा दो, परिश्रम करने में लगा दो, और लक्षद्वीप व अन्य islands हैं, मालद्वीप, लक्षद्वीप आदि - वहाँ समस्त धर्मगुरुओं को भेज दो। पुरोहितों को भेज दो। पाखंड सिखानेवाली, पाखंड का आचरण करनेवाली, भीरुता - कायरता सिखानेवाली, fatalism, नियतिवाद-प्रारब्धवाद कहनेवाली — ये सभी मंडली आसपास रहें; नेता, धर्मगुरु, तांत्रिकों का, मांत्रिकों का आश्रय लेते रहें और घरों में रहनेवाले ग़रीब-बेचारे बच्चों को हम धर्म, ईश्वर, आत्मोन्नति सुनाते रहें ? ! Proliferation of cosumer goods is the essence of our progressive economy, और उन्हें हम सादगी के बारे में कहते रहें ?! मेरे देश के युवकों की 'नब्ज़-नाड़ी' (तबीयत) अच्छी-ख़ासी है, जी ! **Nothing is wrong with them. Something is wrong with us, the elders, and the way we run our families and the way we run our country – drastically wrong with us.** हमें ही समझ लेने की आवश्यकता आ पड़ी है, लेकिन यदि हम, ऐसा ही 'जीने लगें' तो हमारे घरों के बालकों में वह सब बुरा उतरेगा ही न ! वे विद्यालय, महा-विद्यालय हैं न, विद्या के नाम पर व्यापार करनेवाले वे, बालकों के नाम पर धन कमाते हैं। और फिर घर-परिवार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में उच्छृंखल भोगवाद का वातावरण और बीभत्स प्रदर्शन, यह यदि चलता रहा, तो युवा-पीढ़ी को 'आप आत्मोन्नति का ध्येय रखें', यह कहना तो उनका उपहास करना है। You are insulting their intelligence.

हम कहाँ सीखे (मैं आपको बताऊँ ?) ? धर्म कहो, ईश्वर के संबंधों में कहो या आत्मोन्नति के बारे में कहो, कहाँ पढ़े होंगे हम ? हमारे नानाजी सुबह तीन-साढ़े तीन बजे जाग जाते थे और स्नानादि करने के बाद मंदिर में बैठते थे; जप, ध्यान, व पूजा करते थे। छत्तीस ग्रामों का व्यवहार संभालते थे और हाईकॉर्ट में वे Advocate थे, वह सब कार्य होते हुए भी रात के आठ बजे से प्रातः आठ बजे तक; उनका यह जो कुछ romance with the unknown चलता था, वह हमें देखने मिलता था।

एक बार घर में चोरी हुई। हज़ारों का माल गया। आज की भाषा में तो उसे लाखों से अधिक-करोड़ों का कह सकेंगे। गहने-आभूषण गये और प्रातः उठने पर जब पता चला कि मामाजी ने पुलिस थाने में रिपोर्ट दर्ज करवाई है, तो वे बोले कि - अरे ! रामप्यारे, (- रायपुर, बिलासपुर की ओर रहनेवालों की हिन्दी बोलते थे वे) - 'अरे ! अरे ! रामप्यारे ! यह आपने क्या किया ? अरे, किसीको चोरी करना क्या अच्छा लगता है ? आपको यदि कोई कहेगा कि काले कपड़े पहनकर, मुँह को ढककर आधी रात में जा के चोरी करो, तो क्या आप करोगे ? हमने परिग्रह किया है न, इसलिए वह चोरी करने आया !' हमने आठ वर्ष की आयु में यह सुना कि हम परिग्रह करते हैं, इसलिए चोर चोरी करते रहते हैं। अर्थशास्त्र सीखा हमने वहाँ ! घर में उसे जिया गया हुआ देखा ! हमारे माताजी-पिताजी प्रातः उठकर साढ़े पाँच बजे चक्की लेकर पीसने बैठते, इसलिए कि प्रतिदिन ताजे पीसे हुए गेहूँ के आटे की रोटियाँ घर में बनाई जायें। होटेल का खाना नहीं, बाहर का खाना नहीं। झूठ बोलें नहीं। बच्चे यदि झूठ बोलें, कोई झूठ बोलें, तो हमारे माताजी-पिताजी एक दिन का उपवास रखते थे। धर्म से जिये वे। धर्म जीना पड़ता है ! भक्ति जीनी पड़ती है ! अध्यात्म जीना पड़ता है ! यह वाणी का विलास नहीं। यह कल्पना का शृङ्गार नहीं है। नक़द जीना चाहिए, तत्पश्चात् वहाँ से (धर्म, अध्यात्म) संक्रान्त होता है।

हमने गांधीजी को देखा नहीं अथवा उनके आश्रम में नहीं रहे, या विनोबा के आश्रम में भी रहे नहीं, किन्तु एक दादा धर्माधिकारी नाम के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गृहस्थाश्रमी मनुष्य थे। धर्माधिकारी, परिवार बड़ा विशाल ! दो सौ-ढ़ाई सौ लोग परिवार में, और महात्मा गांधी के आग्रह के कारण दादा को राजनीति में उतरना पड़ा। राष्ट्रीय शाला में ३५/- रूपये प्रति मास वेतन लेकर दो रूपये किराये की टिन की झोंपड़ी में रहनेवाले दादा धर्माधिकारी आचार्य बने राष्ट्रीय पाठशाला में। कँधे पर एक छोटा-सा डिब्बा लेकर गेहूँ पिसाने चक्की पर जाते थे। स्नान कुँए पर करते थे। दादाजी की पत्नी को हम 'माताजी' कहते थे। दिन निकलने से पहले जाकर कुँए पर स्नान करना पड़ता था। ऐसे दादा धर्माधिकारी को सुनने में आया कि नागपुर अखाड़े के कोई पहलवान हैं और उन लोगों को दादा का चुनाव के लिए खड़े रहना मंजूर नहीं है। ८० अखाड़े नागपुर में थे - तब, इस व्यक्ति को (याने ख़ुद को) समाप्त करने की कोई योजना है, ऐसा दादाजी को मालूम हुआ और उनका शरीर तो क्या था ! मुट्ठी-भर हड्डियाँ थीं ! किन्तु एक दिन रात के ११ बजे महाशय उठे और जो पहलवानों के प्रमुख थे, उनके पास गये। रात्रि के साढ़े ग्यारह बजे उन्होंने दरवाजे पर दस्तक दी, तो वह आदमी उठकर बाहर आया। 'क्या काम है ?' तो कहा कि - आओ ! तुम से ही काम है, बाहर आओ। और उसे एक ओर ले गये, कहने लगे - 'देखो, आप सबको लगता है न, कि दादा धर्माधिकारी की हत्या करें ? चल, मैं ही आया हूँ तुम्हारे पास। यह देखो, जेब में लिख रखा है कि मैं स्वेच्छा से देहोत्सर्ग कर रहा हूँ। ले चलो मुझे ! हत्यारों को भी क्यों रखते हो ? जहाँ ले जाना है, वहाँ ले चल ! तेरा काम कर डालना, एक बार पूरा कर दे ! अहिंसा ख़ुद ही हिंसा से कैसे मिलती है - यह हमने ख़ुद इन आँखों से देखा, तब सीखा है, जी !

तो, आपको आस्थापूर्वक मेरा कहना है कि जिन्हें लगता हो कि मानव-धर्म हमारी युवा-पीढ़ी में संक्रान्त हो, वे उन्हें इतना तो कहें कि मानव-धर्म जीना तुम्हें आना चाहिए। ईश्वर वग़ैरह जाने दो ! 'मननात् मनुष्यः।' इसमें, मनन किये बिना, विचार किये बिना, समझे बिना तू कदम मत उठा और समझने पर तू कदम उठा। उसका जो कोई परिणाम होगा, वह धीर-गंभीर रह के सहन कर। वहाँ से भाग मत जाना - यह हमें उसे सिखाना नहीं होगा क्या ?

फ्लायनवाद में जीवन नहीं है रे ! हुई होगी भूल, खाई होगी ठोकर, तो हँसते-हँसते उसके परिणाम को तू सहन कर, किन्तु भाग मत जा। भारतीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्कृति मनुष्य को पलायनवादी नहीं बनाती, वह जीवनपरायण संस्कृति है - यह हम नहीं सिखा पायेंगे क्या ? तुम्हें जो समझ में आया, तुम्हे जो सत्य समझ में आता है, उस प्रकार व्यवहार करो और उसमें अगर भूल होती हो, तो भी डरो मत, अपयश आने पर भी भय मत रखो । यश और अपयश से, यश और अपयश को तराजू में डालकर, जीवन का मूल्य नहीं किया जाता । तू जीता है या नहीं ? तेरी बुद्धि के अनुसार, आँखें खुली रखकर, विचार कर के तेरी समझ में जैसे आया वैसे जिया या नहीं, यह बात महत्त्व की है । 'मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम् ।' अन्यों का अनुकरण, अनुसरण करते-करते Second hand, Third hand person बनकर मत जीना ! पुत्र ! तू ही तेरा गुरु और तू ही तेरा विद्यार्थी !

बालकों को मनुष्य बनने दो !

विवशता होती है उस समय, जब मैं स्वयं के संबंध में कहती हूँ, परंतु इसे श्लाघा (प्रशंसा) समझे नहीं । हमारे माता-पिता या पूर्वजों की कोई प्रशंसा करने के हेतु से नहीं कह रही हूँ; किन्तु ७-८ वर्ष की जब मैं थी, तब मैं कहती थी कि मेरा जीवन ईश्वरार्पण है, इस व्यक्त सृष्टि के पीछे जो कुछ सत्ता है - मुझे 'सत्ता' शब्द मालूम नहीं था - जो देव है, जो ईश्वर है, उसे मुझे देखना है और उसके संग मुझे जीना है, इस जगत् के साथ नहीं जीना - ऐसा मैं कहती रहती थी । तब एक दिन हमारे पिताजी ने बुलवाया । वे Indian Rationalist Association के सेक्रेटरी थे । विलक्षण बुद्धिनिष्ठ मनुष्य ! उन्होंने बुलवाकर मुझसे कहा कि अरे ! देखो, आपको जो साधना करनी हो, पढ़ना हो और जीवन ईश्वरार्पण करना हो, तो उसमें मुझे आपत्ति नहीं है । एक बात हमारी मानो । किसी भी व्यक्ति को गुरु मत करना । 'गुरु' 'तत्त्व' है और परमात्मा स्वयं गुरु है । Life is the master और आपके अंदर भी वह है । बुद्धि को बेचो मत और जहाँ बुद्धि कुंठित होगी, वहाँ श्रद्धा तो है ! फिर प्रणति है, शरणागति है, किन्तु वह जो जीवनविभु है, वह आपको सिखाएगा' ।

ऐसा कोई कहते हैं क्या अपने बच्चों को ? - 'हमने कहा था, तुमने ही सुना नहीं, तूने किया, अब भोग !' - ऐसा कहनेवाले होते हैं, किन्तु बालक ने यदि स्वयं की समझ के अनुसार किया और ठोकर खाई, तो - कुछ नहीं बबुआ ! उठकर खड़े होओ, चलने लगो !' ऐसी निर्भयता, सत्यनिष्ठा, स्वयं के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आकलन पर श्रद्धा, ऐसी आत्मश्रद्धा उसमें निर्माण होनी चाहिए। "श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।" तो सत्य-निष्ठ, जीवन-निष्ठ, आत्मश्रद्धा से युक्त, निर्भय - ऐसा आपके बालक को होने दो। वह मानव-धर्म जीने लगेगा। उसे उतना ही कहो - 'मानव बनकर जीना रे!' समूचे मानव के लिए धर्म एक ही है। उपासना की पद्धतियाँ भिन्न-भिन्न हैं। कोई घर में मंदिर बनवाकर, विग्रह रखकर पूजा करेगा, कोई पाँच बार नमाज पढ़ेगा, कोई बाइबिल हाथ में ले बैठेगा, कोई वर्धमान महावीर की वाणी और कोई गौतम बुद्ध की वाणी! - यह उपासना का विषय है, किन्तु घर के बाहर कदम रखने पर मानवता यही धर्म है, उसे मानव बनने दो। **Divinity is nothing but the consummation of human-ness.** परिमार्जित, परिष्कृत, मानवसत्त्व ही वह दिव्यता या भगवती परमात्मसत्ता है। इसमें भिन्नता कुछ नहीं, अतः प्रचार से, उपदेश से, लेखन करने से होनेवाला नहीं। यदि युवा-पीढ़ी को देना है, तो यह आत्मोन्नति का ध्येय - तस्माद्योगी भवार्जुन! है कहीं ऐसी संस्कृति, जो कहती है कि योगावस्था पर आरूढ होना ही मानव-जीवन की फलश्रुति है? ऐसी कोन-सी संस्कृति कहती है - 'समत्वं योग उच्चते।'? संबंधों में तथा व्यवहार में अक्षुब्ध अवस्था रहती है। 'अक्षोभ्य' ऐसा विष्णुसहस्त्रनाम में एक नाम है भगवान का! अक्षोभ्य अवस्था में Without getting imbalance in any way, to move with the movement of relationship - "समत्वं योग उच्यते।", "योगी भव।" अर्थात् ऐसी योगारूढ अवस्था कि जिसमें चित्त का समत्व ढलता नहीं, इन्द्रियों का संतुलन विचलित होता नहीं। An elegant and graceful equanimity. And peace would be the perfume of that equanimity - ऐसा उसे बनने को कहो और घर में तो यह कहना ही चाहिए, किन्तु सज्जनों को संगठित होकर बहुत ही कुछ करना अभी बाकी है!

संगठित सज्जनों की आवश्यकता

जहाँ समाज हो, वहाँ शासन व शासकवर्ग अवश्य रहेगा ही! यदि प्रातिनिधिक जनतंत्र, parliamentary democracy अपेक्षित है, तो 'जन-निर्माण' करना पड़ेगा। कौन-से और किस तरह के प्रतिनिधि हमें चाहिए, यह पहचानना, खोजना होगा। वे अपने-अपने उम्मीदवार खड़े करें। Elections

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

should not be the festivals of the political parties or marketing places of political parties and their functions and roots. खुद मतदाता ही प्रतिनिधियों को खड़े करें और जब वे प्रतिनिधि बनेंगे, तब उन पर अंकुश रखें। अगर यह करना नहीं है, अगर शिक्षा की पद्धति में परिवर्तन करने के लिए सरकार पर किसी भी प्रकार का pressure - दबाव लाना नहीं है, उसका विरोध करना नहीं है, राजनीति का शुद्धीकरण करना न हों, तो ...!? (तो .... बात नहीं बनेगी।) एक नई औद्योगिक क्रान्ति - जहाँ पैसे का महत्त्व नहीं, किन्तु संपत्ति का महत्त्व रहे, परिश्रम के परिमल की चाह रहे, ऐसी क्रान्ति लानी होगी।

भष्टाचार और विदेशियों का प्रभाव

इस राष्ट्र का निर्माण-कार्य पिछले ४० वर्षों में हुआ ही नहीं। माँगकर लाया हुआ, ऋण ले-लेकर, इधर-उधर के टुकड़े जोड़-जोड़ कर यह राष्ट्र जैसे-तैसे चल रहा है। एक political lunatic asylum है दिल्ली में, और उसकी छोटी-छोटी अनुकृतियाँ हैं आपके मुंबई, लखनौ, अहमदाबाद आदि में, The Eductional Institutions are the centres of corruption. आपको मालूम है कि हमारे देश में black money कितना चलता है ? और black economy, parellel economy, underground (लुके-छिपे चलता काले धन का समांतर अर्थतंत्र) कितनीं चलतीं हैं ? हमारे समूचे देश का बजट (अंदाज-पत्र - आय-व्यय-पत्र) होगा न, उससे भी अधिक black money है इस देश में और उसके विधिवत् व्यवहार चलते हैं, सौदे होते हैं, सब चलता है ! यह क्या बालकों को मालूम नहीं होता, शालाओं में जानेवालों को, कॉलेजों में जानेवालों को ? आँखों से दिखता है उन्हें ! To abolish the black money and parallel economy, to abolish the mafiaism, that is ruling, reigning supreme in the country and to purify - if not spiritualize politics as Gokhaleji had asked Gandhiji to do it, - Atleast purification - यदि यह करना नहीं है न, तो आज जैसे सभी स्थानों में - आपके महाराष्ट्र में मुझे मालूम नहीं, किन्तु उधर गुजरात में प्रतिदिन रामायण-भागवत की कथाएँ चलतीं हैं, चार-चार लाख लोग कथा सुनते हैं और उनका परिवार देखेंगे, तो भोगवाद के अड्डे हैं। इसे क्या गृहस्थाश्रम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहते हैं ? मातृभाषा बोलने नहीं आती। अपने देश का, संस्कृति का पहराव, वेशभूषा भाते नहीं। माता-पिता कहने में लज्जा लगती है। "मम्मी, डेडी !" दो वर्ष का बालक होते ही हम उसे उस convent में या वहीं कहीं, वह आपके 'nursery' में ही भेजना चाहिए' - यही सबको चाहिए है ! कहाँ जीवित रहेगी संस्कृति ? धर्म ? ईश्वर ? भाषा से जियेगी नहीं, पेहराव-वेष में जीवित नहीं रहेगी, आपके परिधान में जियेगी नहीं, आहार में जीवित नहीं रहेगी, घर में जो चीज़-वस्तु इस्तेमाल करते हैं, उसमें जियेगी नहीं, संकेतों में जीवित नहीं रहेगी, जिसे आप 'etiquettes' - शिष्टाचार कहते हैं, उसमें भी नहीं, तो फिर कहाँ जीवित रहेगी ? धर्म को जीवित रखना है। जिस भगवत्सत्ता के अधिष्ठान पर संस्कृति खड़ी रहनी चाहिए और मानवता की गरिमा मानव-गौरव के संबंधों मेंसे व्यक्त हों, ऐसा स्वप्न जहाँ है, वहाँ यह सारा परिवर्तन होना आवश्यक है, जी ! आप केवल मुझे प्रश्न पूछेंगे कि युवा पीढ़ी को कैसे समझाएँ ? तो, मैं क्या कहूँ ? युवकों के club करो, उन्हें बुलाओ, गीता पढ़ के सुनाओ, गीता पाठ करने के लिए पुरस्कार रखो, पारितोषिक दो - ऐसा कहें क्या ? यह कह सकते हैं, लेकिन उससे कुछ नहीं होगा ! **A Total Revolution, a Wholistic Revolution in our approach to Life and attitude towards Life is required, my friends !** मैंने परसों कहा था - यह संस्कृतियों का संघर्ष है। यह जीवन-पद्धतियों का सामना है। हमारी श्रद्धा है कि भारतीय संस्कृति, यह जो टकराव चल रहा है, इसमें आख़िर विजयी होनेवाली है। यदि हम पुरुषार्थी नहीं बने, तो हमारी आँखों के सामने नहीं, हमारे पश्चात् बनेगी, किन्तु the perennial source (शाश्वत-सनातन स्रोत) of spirituality in this country is going to overcome the onslaught of materialized philosophy and the cult of pleasure.

मैं अब तीसरे प्रश्न को लेती हूँ। इन प्रश्नों की समीक्षा करते समय लगभग संक्षिप्त प्रवचन ही हो जाता है। वे केवल प्रश्नोत्तर नहीं रहते।

गुजरात में चलनेवाला कार्य

यह प्रश्न कुछ वैयक्तिक है। प्रश्न करनेवाले ने ऐसा पूछा है कि आप गुजरात में कार्य करते हैं, कई प्रकार के कार्य वहाँ चल रहे हैं, ऐसा हम सुनते हैं, वे कैसे चलते हैं ? उसमें आपकी भूमिका क्या रहती है ? वहाँ कार्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करनेवाले जो कार्यकर्ता हैं, उनमें आपस में कोई अड़चनें खड़ी होती हैं या नहीं ? उनमें संघर्ष होते हैं या नहीं ? ऐसे यदि प्रश्न कार्यकर्ताओं में निर्माण हुए, तो वे कैसे सुलझाएँ जाते हैं ? ऐसे दो-तीन प्रश्न हैं । क्या सबको इसके बारे में सुनने को जँचेगा ? यह प्रश्न जब पूछा गया था, उस समय मैंने सुझाया था कि इसमें सबको रुचि रहेगी, ऐसा नहीं । इसको जानना चाहनेवाले लोग मेरे साथ अलग बैठें, किन्तु तत्पश्चात् किसीको ऐसा विचार आया कि भवन में ही इस संबंध में जानकारी दे दी जाये । तो, यदि आप सबकी अनुज्ञा हो, तो मैं कुछ कहती हूँ ।

अब तक जीवन में संकल्प करके कोई कार्य किया - ऐसा स्मरण में नहीं आता है । लोगों की ग़रीबी, दुःख, दरिद्रता सहन नहीं हुई, इस कारण विनोबाजी ने प्रारंभ किये भूदान-आंदोलन में काम करने मैं गई, क्योंकि एक सन्त का नेतृत्व था और अध्यात्म के अधिष्ठान से समाज-परिवर्तन की प्रक्रिया वे प्रारंभ कर रहे थे । तो, मैं उसमें गई व काम मैंने किया । तदनंतर १९६३ से मैं माउंट आबू में रहने लगी । कुछ विचार नहीं था कोई भी कार्य करने का, किन्तु ४-५ वर्ष लोगों को इतना ही दिखता था कि ये विदेश जातीं-आतीं है, इस देश में कुछ कहतीं नहीं, अतएव गुजरात की मंडली ने - उमाशंकर जोशी, किशनसिंह चावड़ा व मुंबई के परमानन्दभाई कापड़िया - ऐसे कुछ लोग थे । वजुभाई शाह नाम के वहाँके कर्मठ व्यक्ति थे, जिनका भूदान-यज्ञ के निमित्त से मेरा परिचय पहले से था, - उन लोगों ने १९६८ में एक 'प्रकाशन ट्रस्ट' का निर्माण किया । उसके द्वारा प्रवचन कराना और वे प्रवचन छपवाना ऐसी योजना हुई । दो-एक वर्ष के उपरान्त उन्होंने 'जीवनयोग फाउण्डेशन' ऐसे बनाया कि गुजरात के भिन्न-भिन्न स्थानों में आपके शिबिर हों - केवल ऐसे प्रवचन नहीं, stray (छुट-फुट) talks नहीं । "विमल प्रकाशन ट्रस्ट" की भी मैं member नहीं और "जीवनयोग फाउण्डेशन" की भी नहीं । तो, उस "जीवनयोग फाउण्डेशन" की स्थापना हुई और फाउण्डेशन द्वारा शिबिर प्रारंभ हुए । वे लगभग सात-आठ वर्ष - १९७० से ७८ - चलते थे । प्रौढ़ तथा युवकों के शिबिर ! शिबिर में जाती थी - जैसे आपने निमंत्रित किया और मैं पहुँची - इस प्रकार जाकर, कहकर, मैं मुक्त होती थी, किन्तु १९७८ में जयप्रकाश नारायण - जिनके साथ अति घनिष्ठ संबंध भूदान-आंदोलन में आया, जिनके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साथ बिहार, पंजाब, तमिलनाडू में मैं घूमी थी और संयुक्त-शिबिर हमने चलाये थे - तो उन्होंने (जयप्रकाशजी ने) मुझे बुलवाकर ऐसा कहा कि - अब मैं तो चला, किन्तु यह जन-जागृति का कार्य आप हाथ में लो, आप केवल resource in the dimensions of human consciousness का कार्य करते हैं और अनेक देशों में भ्रमण करते हैं, तो इस देश में भी वह कार्य होना चाहिए।

अतः हमने एक जन-जागरण-यात्रा निकाली १९७९ में, और उसमें मेरे पास आनेवाली सत्सङ्गी-मंडली शामिल थी। एक मित्र ने एक mini-bus दे दी और इस समस्त मंडली के खाने-पीने का जो खर्चा घर में आ सकता था, वही हमने यात्रामें किया। धर्मशाला में ठहरते, अपने हाथों से भोजन बनाते, गाँव के लोगों से कुछ नहीं लेते, उन्हें कोई कष्ट नहीं देते, ऐसा करते-करते १० लोगों का एक-एक जथ्था मेरे संग एक-एक महिने तक रहता था और ऐसे हमने लगभग १२ राज्यों में जन-जागरणयात्रा की। इसके लिए कुछ pamphlets आदि निकाले थे और वे बाँटते थे।

यह कार्य करते समय, राजस्थान में बिकानेर ज़िले के लोगों ने ऐसा कहा कि आप ग्राम-स्वराज्य के संबंध में कहते हैं, तो एक छोटी-सी ग्राम -स्वराज्य शोध-संस्था - research institute - निकालनी चाहिए; यहाँ हमारे पास यह भूमि है, बिकानेर ज़िले के छत्तरगढ़ में। तो ग्राम-स्वराज्य-शोध-संस्था १९८० में स्थापित हुई। भूमि मेरी नहीं, पैसा भी मैं कभी लायी नहीं और संस्थापक बनी नहीं। उस स्थान की खादी-ग्रामोद्योग तथा गोरक्षा का कार्य करनेवाली मंडली को लेकर पाँच लोगों की एक team वहाँ बैठी और वैकल्पिक ऊर्जा, बायो गॅस एनर्जी, सॉलर एनर्जी का उपयोग कैसे करें और मरु-प्रदेश में कृषि कैसे करें - यह जानने के लिए इस्राएल के एक मित्र को बुलाया गया। उसने शिक्षण दिया व जिन्हें गायें व बैल पालने की शक्ति न हों, वे उन्हें कत्लखाने को बेच न दें, हमें दें, ऐसा कह के वहाँ गौशाला प्रारंभ की। Alternative energy के शिक्षण का work-shop शुरू किया गया और लगभग ५० गाँवों के बालकों को शिक्षण देना आरंभ हुआ। सैंतीस गाँव मुसलमानों के, बाकी सारे गाँव हिन्दुओं के। वहाँ वह कार्य अभी भी चल रहा है। उनके अनेक विभाग है, पर वे सब कार्य की दृष्टि से।

इसी प्रकार की एक स्वराज्य-शोध-संस्था राजकोट ज़िले में "घेला

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सोमनाथ" के समीप है। भूमि 'गढ़ड़ा खादी-ग्रामोद्योग संघ' की, और सौराष्ट्र -रचनात्मक-समिति के बारह वर्ष रहे हुए सेक्रेटरी छेलभाई शुक्ल, जिन्होंने पूरे यूरोप-अमेरिका का प्रवास कर के handicrafts का अभ्यास किया था, वे, उनकी पत्नी और कार्यकर्तागण वहाँ बैठे, क्योंकि मेरे पास कार्यकर्ता नहीं है, यह उन्हें ज्ञात था और मैं तो किसी भी organization में रहती नहीं। मार्गदर्शन ! किसीने पूछा तो जाना, बैठना, मैं कहाँ का मार्गदर्शन करनेवाली ? किन्तु मैंने जो समझा, जाना वह कहती हूँ। जो समझा गया, जिया गया वह कहना, बाँट लेना। इसके अतिरिक्त मैं आज भी कुछ करती नहीं। जो यहाँ कर रही हूँ, वही वहाँ करती हूँ।

तो, १९८३ से वहाँ संस्था कार्यरत है और फिर जगह मिल जाने पर University के युवकों के शिबिर प्रारंभ हुए। youth camps - शिबिर तो लगभग, पिछले सात-आठ वर्षों में युनिवर्सिटी के साढ़े चार हज़ार युवकों के भिन्न-भिन्न स्थानों में हुए हैं। जिस स्थान में वह मंडली इन शिबिरों का आयोजन करती है, वे ही धन एकत्रित करें, वे ही व्यवस्था करें, किन्तु हमारे शिबिरों में बच्चे स्वयं भोजन बनाते हैं। यदि २००-३०० शिबिरार्थी रहें, तो एकाध भोजन बनानेवाले व्यक्ति को हम बुलाते हैं, किन्तु उन बच्चों को भोजनगृह में दो-तीन घण्टे काम करना पड़ता है, रोटियाँ बनाने से लेकर शिबिर का स्थान स्वच्छ करने तक सब काम खुद करना - जिसे हम 'श्रमदान' कहेंगे - इसमें दिनभर के लगभग चार-पाँच घंटे जाते हैं और फिर चार घंटे ध्यान, प्रार्थना व स्वाध्याय। ऐसे शिबिर चलते थे, अब भी चलते हैं।

वहाँ जन-तंत्र याने क्या ? धर्म-निरपेक्षता का क्या अर्थ है ? अध्यात्म क्या होता है ? समाज-परिवर्तन की कितनी प्रक्रियाएँ आज-तक हुई हैं ? A comparative study of revolutions in the world, ऐसे समस्त विषय थे और गुजरात में, आपको ज्ञात होगा कि कई विद्वज्जन हैं, शिक्षातज्ञ हैं, मनुभाई पंचोली, पुरुषोत्तमभाई मावळंकर, एच.एम.पटेल, अनेक व्यक्ति हैं - समस्तों के नाम भी अब याद नहीं आएँगे - इन सभी लोगों का सहयोग था। वातावरण अत्यन्त उत्तम, जिसके कारण ये शिबिर चलते रहे।

इस राजकोट ज़िले के ग्राम-स्वराज्य शोध-संस्थान के उपरांत, १९८४ में अहमदाबाद ज़िले में वीरमगाम तालुके के पाँच ग्रामों में एक छोटा-सा प्रयोग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया गया। इन पाँच ग्रामों में Total Elimination of Unemployment संभव है या नहीं, यह देखा गया और पाँच वर्षों की एक योजना हमने बनाई। उस योजना के अंतर्गत पाँच वर्षों में पाँच-सात ग्रामों के लिए एक irrigation की scheme बनाई। उन लोगों ने ही काम कर के एक तालाब का निर्माण किया। उसको देख के फिर बेंक ने सत्तर हज़ार का loan दिया उन्हें। पश्चात् अन्य अधिकारियों ने भी सहायता की। तो, उन पाँच ग्रामों की हमारी जो योजना थी, वह तीन वर्षों में पूर्ण हुई। ग्राम-निवासियों का इतना पुरुषार्थ कि वहाँ उत्तर बुनयादी पाठशाला भी बनायी गयी। उसका छात्रावास जो बनाया है, वह विद्यार्थी, शिक्षक व उनके पालकवर्ग सभीने मिलकर बनाया। काम करनेवाले कुछ इंजीनियर, कोई expert ऐसा कोई जाकर खड़ा रहता था और skilled labour हमारे पास कोई नहीं था, किन्तु इन लोगों ने ही कई महिने श्रम करके बनाया। वह ग्राम-स्वराज्य-शोध-संस्थान, जिसे हमने "गोपालधाम" नाम दिया है, वहाँ की कोई भी इमारत मजदूर लगाकर बाँधी नहीं गई। जिस ग्राम में काम करते हैं, उस ग्राम की मंडली आकर वहाँ रहती थी। एक-एक टुकड़ी आती थी और मदद करती जाती थी। काम चलते रहता था। जिन्हें देखना है, वे जाकर देखें। हमारी लताताई और डॉ. ताम्हणकरजी एक बार आ के गये हैं। उन्होंने देखा है, पवन चक्की का काम कैसे चलता है, ... वग़ैरह उन्होंने देखा है। Drip irrigation का कार्य हमने वहाँ प्रारंभ किया और सिर्फ़ तीन ईंच वर्षा हुई, तो भी खेती में उस वर्ष दो फसलें लीं गईं।

तो, यह समस्त लोग जो काम करते रहते हैं, उसमें मेरा अपना तो केवल नाम है! काम करनेवाली मंडली तो दूसरी ही है।

सन् १९८०-८१ में पोरबंदर में एक वर्ष में ८० ख़ून हुए और लोग अत्यन्त त्रस्त हो गये, कहने लगे - 'दीदी, यहाँ कुछ करना पड़ेगा'। मैंने अख़बारों में विज्ञापन दिया - जिनकी मरने की तैयारी है, वे मेरे साथ पोरबंदर आये। तब ३० बहनें और ४५ पुरुष-युवक, ७५ लोग मेरे साथ पोरबंदर आये। उनकी १० टुकडियाँ बनाकर पोरबंदर तालुके के ७० गाँवों में हम एक सप्ताह में घूम आये और फिर पोरबंदर शहर में शान्ति-अनुष्ठान के केन्द्र प्रारंभ किये। मैं दिनभर में तीन गाँवों को जाती थी। वहाँ शान्ति-अनुष्ठान-केन्द्र चला था। आपको मैं ऐसे कितने कार्य बताऊं?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१९८५ में communal riots अहमदाबाद में हुए। अहमदाबाद की स्थिति अत्यन्त भयावह थी और कोई धैर्य नहीं रख पा रहा था, सूझता नहीं था कि क्या करें! सर्वोदयवालों ने तीन दिन का सामुदायिक उपोषण किया। ऐसा करते थे। मैंने कहा कि यह चलेगा नहीं। जिस स्थान में अधिक हिंसा हो रही है, वहाँ मैं पदयात्रा करूँगी। जिन्हें संग आना है, वे आयें। और मैं निकल पड़ी। मेरे साथ एक वृद्ध बालकृष्ण दवे, जामनगर के वैद्य आये - जो मेरे पुराने वैद्य थे - वे कहने लगें, तू अकेली कैसे जायेगी ? मैं आता हूँ। वैसे ही कल्याणभाई नाम के हमारे सत्सङ्गी मित्र हैं, उनकी पत्नी ने कहा कि विमलाबहनजी जा रही हैं, आपको जाना ही होगा। हम कैसे पीछे रहें ? ऐसा करते-करते पहले दिन हम तीन-चार लोग थे। फिर वहाँ के मुसलमान भी आये, हिन्दू भी आये और वहाँ एक शान्ति-अनुष्ठान-केन्द्र की स्थापना कर के उसे भी चलाया। ऐसे आपद्धर्म समझ के आनुषंगिक कार्य भी चलते रहते हैं, किन्तु ग्राम-स्वराज्य शोध-संस्था में research in alternative energies और solar energy द्वारा ग्रामोद्योग चलाने का प्रयोग करते हैं। उसमें Hand paper हम बनाते हैं और फिर आश्रम के लिए पानी गरम करना, उसके लिए solar cookers रखना, भोजन उसमें बनाना। Desalination of water करना। नमकीन पानी हो, तो उसे मीठा करना। इसके लिए १२५ व १०० रुपयों में मिल सके ऐसे छोटे-से contrivances (यंत्र) बनाये हैं।

ऐसे सब प्रयोग चलते रहते हैं। इन प्रयोगों को लोगों ने अनंत हाथों से सहाय किया है। वर्ष में एकाध बार अलग-अलग विभागों के शासक अधिकारी और जिस गाँव में काम चल रहा है, उस गाँव के प्रमुख तथा काम करनेवाली मंडली - इन तीनों को इकट्ठे बिठाकर, उन शासक अधिकारियों से कहते हैं कि आपकी योजनाएँ चलनेवाली नहीं हैं। हमें कौन-सी योजनाएँ चाहिए हैं, वह देखो। सुन तो लो और आपकी योजनाओं का relevance क्या है, यह समझाकर उन्हें कहो। उस प्रकार हम Liaison work (संपर्क-संवाद कार्य) उनके बीच रहकर करते हैं और मुझे कहने में आनंद होता है कि ऐसे युवा officers मिलते हैं। मुझे तो १९८३ को पंजाब में हिन्दू और सिखों का इतना संघर्ष चलते समय भी मेरे साथ समस्त पंजाब में घूमनेवाली मंडली भी मिली, ऐसे ही अहमदाबाद में, पोरबंदर में मिली और ऐसे officers भी मिले। Officers को मैं नीचे बिठाती थी और गाँव के लोगों को ऊपर! संकेत दर्शाने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि ये नौकर हैं और आप इनके वास्तविक मालिक हैं । The supreme power rests with the people.

इस प्रकार गुजरात में कार्य चलता था । १९८५ में 'गुजरात बिरादरी' नाम का संगठन खड़ा हुआ । आज आप उसमें देखेंगे तो, 'अध्यक्ष' कह के लिखा मेरा नाम रहता है । वास्तव में मैं केवल नाम की अध्यक्ष हूँ । जहाँ उचित हो, वहाँ मेरे नाम का उपयोग करते हैं, किन्तु मैं organizational structure में कहीं भी नहीं हूँ । इस 'बिरादरी' के युवकों ने सांस्कृतिक अभियान चलाया है । वे गुजरात के प्रश्नों को लेते हैं, परिसंवाद रखते हैं । Infiltration का problem था, उस समय कच्छ की सीमा पर ३०० गाँवों में मेरे ३०० बच्चे घूमे । रिपॉर्ट तैयार हुई । दिल्ली Prime Minister और President तक तथा गुजरात के मुख्यमंत्री तक गया और दो या ढ़ाई महिनों में जो कुछ उनके संबंध में कारवाई करनी आवश्यक थी, वह सरकार ने की ।

ऐसे कार्य इस गुजरात-बिरादरी द्वारा चलते रहते हैं । मैं इधर आई हूँ, पर इस समय हमारे बच्चे नौं ज़िलों के नौं तालुकों में 'मतदाता-जागृति -अभियान' में कार्यरत हैं; उसमें वे तीन बातें कहते हैं । एक - "आप यदि किसी पक्ष के हों, तो आपका पक्ष किसी smuggler, गुँडे, भ्रष्टाचारी, जातीय और हिंसावादी उम्मीदवार को खड़ा न करे - यह देखें । यदि खड़ा करते हैं, तो आपके पक्ष के कार्यालय में जाकर वहाँ आप उसका विरोध करें और कहें कि यह उम्मीदवार नहीं चलेगा ।" दूसरा - "आप यदि पक्ष में न हों और पक्ष (पद्धति) में आपकी श्रद्धा न हो, तो आप अपक्ष उम्मीदवार निश्चित कीजिये; किन्तु इस चुनाव में आप उदास मत रहिये ।" हमने उस गुजरात-बिरादरी के युवकों मेंसे एक 'जनतन्त्र-प्रहरी-दल' संगठित किया है, कि चुनाव के दिन प्रातःकाल से सायंकाल तक गाँव के कुछ ज्येष्ठ नागरिक और ये स्वयंसेवक उस Polling booth (मतदान स्थल) पर रहेंगे, इसलिए कि किसीको मतदान नहीं करने दिया गया या bogus votes (जाली मत) डाले गये - ये सभी जो प्रकार तरीक़े होते हैं या हिंसा होती है, वह नहीं होंगे ।

मैं अत्यन्त संक्षेप में आपको यह जानकारी दे रही हूँ । अब इन्हें कोई आपत्तियाँ निर्माण होती हैं या नहीं - यह देखते हैं ।

इसमें बात यह है कि एक तो, हमारे पास आकर आज यदि आप बेंकों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में देखेंगे, तो आपको गुजरात-बिरादरी के नाम पर ज़्यादा से ज़्यादा सात-आठ हज़ार रूपये दिखेंगे। वे 'बिरादर' नाम का मासिक चलाते हैं। जीवनयोग फाउण्डेशन 'जीवनयोग' नाम का गुजराती, 'जीवन-परिमल' नाम का हिन्दी और 'Invincible' नाम का अंग्रेजी, ऐसे मासिक निकालते हैं।* और यहाँ कार्य करनेवाली मंडली अपने खुद के ही खर्च से खा-पीकर कार्यभार सँभालते हैं। मेरे पास रहनेवालों में - जो कुछ लडकियाँ हैं, कुछ भाई भी हैं - वे सभी अपनी व्यवस्था स्वयं कर लेते हुए, मेरे साथ काम करते हैं। हमारा मंत्र सुनाउँ ?

'सख्यमूलक सहयोग-परायण सह-जीवन' - यह हमारा मंत्र है; क्योंकि मैं तो किसीको वेतन नहीं दे पाती हूँ। कार्यालय नहीं ! किसीके घर का एक कमरा ही हमारा कार्यालय ! सारे मिलकर काम करते हैं। मास के ४-५ दिन विशेष काम करना पड़ता है। आते हैं, बैठते हैं, काम करते हैं और अपने घरों को जाते हैं। शिबिर Organize - आयोजित करते हैं। शिबिरों के पश्चात् जो कुछ हिसाब होता है, declare - ज़ाहिर कर देते हैं। बस, काम ख़तम।

जीवनयोग फाउण्डेशन में पैसा शायद ४०-५० हज़ार का होगा। विमल -प्रकाशन-ट्रस्ट में कुछ २५-३० हज़ार की पूँजी होगी - ऐसा मैं समझती हूँ; लेकिन मुझे ठीक से पता नहीं।

आपने गुजरात में चलनेवाले कामों के बारे में पूछा - इसमें काम करनेवाली जो मंडली है, प्रमुख जो व्यक्ति हैं, वे सत्सङ्गी हैं, जिन्होंने ध्यान -शिबिर, सत्सङ्ग-शिबिर व ज्ञानेश्वरी के शिबिर - ये सब खुद organize किये हैं, उसमें सहभागी हुए हैं, वे कार्यकर्ता नहीं हैं; कुटुम्बवत्सल सज्जन हैं। वे निश्चय कर लेते हैं कि मैं एक मास का योगदान दूँगा, मैं दो मास का दूँगा। फिर उस प्रकार वे कार्य-विभाग कर के प्रबंध कर लेते हैं। तो, वे कोई व्यावसायिक कार्यकर्ता नहीं है। कोई पगारदार-तनख्वा लेनेवाले नौकर नहीं है और उनसे मैं कहती हूँ कि आप जो कार्य करते हैं, वह आपके लिए उपाधि न बने। जिस दिन आपको बोझ या भारीपन लगेगा या ऐसा लगे कि मैं जो कर रहा हूँ, उससे तनाव पड़ रहा है, उस दिन मत करना। यह आपकी साधना बननी चाहिए। ऐसा होने पर भी उनमें कलह होते हैं। कलह होते ही नहीं ऐसी बात नहीं। रोना-धोना होता है। मेरे पास मण्डली आ जाती है, आबू को आती या फिर जिस समय उनकी सालाना meeting होती है, इन संघटनों की

----

* अब ये तीनों मासिक-पत्रिकाएँ बंद हो चुकीं हैं। - प्रकाशक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Policy making meetings होती हैं, उतनी मैं attend करती हूँ - शामिल होती हूँ, तब वहाँ मेरे सामने समस्या रख देते हैं।

मुख्य बात यह है कि उन सारे लोगों को जीवन-साधक बनने की तड़प रहनें के कारण उनके दोष, उनके गुण, उनकी न्यूनताएँ, उनकी गलतियाँ - इनके परिणाम अति अनिष्ट नहीं होते। हाँ, विवाद तो होते है, नहीं ऐसा नहीं; किन्तु कुछ ही समय के बाद एक-दूसरे की क्षमा भी माँग लेते है कि- हम आये हैं किस कारण, दीदी के पास ? जिस हेतु से आये थे, वह क्या था और यह हम क्या कर रहे हैं ! - ऐसा सोच के पश्चाताप होता है, फिर वे सब अपने कार्य में जूट जाते हैं। अब तक किसीने भी काम छोड़ दिया ऐसा नहीं हुआ है। यह जनाधारित्त कार्य है, धनाधारित्त नहीं। धन की सहायता तो लेते हैं; किन्तु कार्य जनाधारित है, कार्य सख्य-आधारित है। यह मेरा एक नया प्रयोग है, मित्रों ! **Collective work without a structure of a very stiff organization, without a hierarchy, without employer - employee relationship !** केवल यहीं पर ही नहीं, जी ! युरोप में, अमेरिका में, जहाँ कार्य चलते हैं, Friends of Vimala - ऐसे groups हैं और वे प्रतिवर्ष Camps आदि आयोजित करते हैं। उन स्थानों में कोई भी कार्यालय नहीं, कोई कार्यकर्ता नहीं, प्रचारक नहीं, सबकुछ Person to Person. - ऐसा कार्य अल्प प्रमाण मैं है, बहुत कुछ कहने जैसा कार्य है, ऐसा नहीं।

अब कहने जैसा जो कुछ पिछले दो महिनों में हुआ है, वह आपको कह सुनाती हूँ। देश में जिस प्रकार राजनैतिक पक्षों में फूट व अलगाव है, वैसा 'गांधीजन' जिन्हें कहा जाता है, खादी-ग्रामोद्योग का कार्य करनेवाले, सर्वोदय का कार्य करनेवाले - इनमें भी बहुत बे-बनाव होता है। अब उन्हें एक Non-Controversail व्यक्ति - आप जिन्हें 'विमल दीदी' कहते हैं - वे मिल गईं। उनका खुद का अपना कोई following नहीं, संस्था नहीं, संगठन नहीं, तब गुजरात के गांधीजनों ने बुलाया और जो एक-दूसरे के साथ मिल-झुल कर बैठते भी नहीं, वे समस्त मंडली देश की, गुजरात की एक संकटमय परिस्थिति के कारण एकत्रित हुई है और उसमेंसे उन्होंने एक 'गुजरात जनतंत्र-मंच' - 'Gujarat Democratic Front' निर्माण किया है। अब खादी-ग्रामोद्योग का कार्य करनेवाली जो मंडली है, उसमेंसे आज कोई भा.ज.प. में है, कोई काँग्रेस (आइ) में है, कोई जनता-पक्ष में तो कोई जनता-दल में। ये सभी एकत्रित हुए हैं। दो-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीन दिन तक वे मेरे साथ रहे और 'गुजरात जनतंत्र-मंच' की स्थापना हुई। बाबुभाई जसभाई पटेल को हमने प्रार्थना कर के उन्हें अध्यक्ष नियुक्त किया है। अन्य समस्त Executive Committee Members के नाम मुझे स्मरण में नहीं है; किन्तु it represents the whole of Gujarat social service people; और समस्त मंडली एकत्रित होने के पश्चात्, एक महीने के अंदर वे अन्य स्थान में फिर एकत्रित हुए और राजनैतिक पक्षों को और जिनकी पक्ष पर निष्ठा नहीं, उन्हें एक-दूसरे से कैसा सहयोग करना है - Consensus candidates not belonging to any party - कैसे खड़े करें - इस पर विचार-विनिमय किया गया तथा उनके प्रयत्न चल रहे हैं कि गुजरात-विधानसभा में १८० सदस्यों मेंसे १५ या १८ सदस्य Consensus candidates उम्मीदवार बनाए जाएँ। पक्षमुक्त ऐसे सदस्य खड़े करें कि जो सत्ता में संमिलित नहीं होंगे; अर्थात् किसी भी पक्ष के साथ Coalition Cabinet में भाग नहीं लेंगे; मंत्रीमण्डल में नहीं रहेंगे; सरकार को भंग-करना, सरकार बनाना, उनका काम नहीं रहेगा, अपि तु एक Moral influence and the voice of conscience of Gujarat will be represented inside the Legislature by them. इसका कॉंग्रेस (आइ) ने विरोध किया नहीं। सहयोग करने का आश्वासन अभी तक उनसे मिला नहीं है; अन्य पक्षों से है; और Pockets ढूँढकर यह पक्षमुक्त मंडली ढूँढने का 'acceptable to all' कार्य चल रहा है, ऐसा मुझे सुनने में आया है। परसों-परसों तक एक लोकसभा का उम्मीदवार और छः विधानसभा के उम्मीदवार Consensus candidates की दृष्टि से उन्होंने चुन भी लिये हैं। कार्य चल ही रहा है.... समस्त मतदान क्षेत्रों में धूमना तथा यह बात समझाकर कहना।

गुजरात में एक मानस तैयार हो रहा है कि Those who are outside the power, party - power and political power, should exert moral influence on the party in government, party in power and the opposition parties.

तो, उस गुजरात जनतंत्र-मंच का मार्गदर्शन करने का कार्य चल ही रहा है। उनकी सभाएँ होतीं हैं; मैं उपस्थित रहती हूँ और आपको यह सुनकर आनन्द होगा कि राष्ट्रीय स्तर पर ऐसा ही प्रयत्न हो रहा है। सुप्रीम कॉर्ट के भूतपूर्व Chief Justice थे एच. आर. खन्ना; इनके अलावा लेफ्ट. जन. जगतसिंग अरोरा तथा लेफ्ट. जन. एच. के. सिन्हा, जिस समय बाँग्लादेश बना, उस समय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हमारे सेना के ज्येष्ठ अधिकारी - Well - Known warriors and Victors - थे ये दोनों भी; वैसे ही आइ. के. गुजराल, सी. एस. सुब्रह्मण्यम्, आचार्य राममूर्ति - ऐसे कई महानुभाव हैं, 'National Resurgence Movement' - इस नामाभिधान से पिछले तीन-चार महिनों से ही एक कार्य का प्रारंभ किया है । उस हेतु National Panel बनाया है और इस National Panel में मुझे बुलाया है। मैं जाती हूँ, बैठती हूँ । जहाँ कोई बुलाते हैं, वहाँ जाती हूँ । जिन्हें सुनने की इच्छा होगी, जो पूछते हैं, उनसे कहती हूँ और फिर वहाँ से निकल पड़ने पर उनका कार्य उनके साथ, मेरा कार्य मेरे साथ ! किन्तु यह मेरा आपद्धर्म है - आपसे जो बोल रही हूँ वह; (याने अध्यात्म !) क्योंकि देश की परिस्थिति इतनी गंभीर रहते हुए हम केवल ध्यान व समाधि की बातें करते रहें तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण से समस्या का क्या स्वरूप दिखता है और उसका हल किस पद्धति से हो सकता है, संभाव्य प्रकार क्या हो सकते हैं, यह कहना नहीं ? तो फिर मुझे ऐसा लगता है कि ऐसा करना यह राष्ट्रद्रोह है । अध्यात्म यदि जीवन अभिमुख न रहेगा, मानव-परायण न रहेगा, जीवन-रसिक न रहेगा, तो ऐसे अध्यात्म से भगवान् इस देश को बचाएँ !

सभी को सँभालना पड़ता है

मानवी स्वभाव तो सभी जगह एक जैसा ही होता है । उसी कारण कई कठिनाइयाँ भी आकर खड़ी होती है, पर अगर हमारे ध्यान में आया कि किसीको प्रतिष्ठा की चाह है, तो प्रथमतः हम ऐसा प्रबंध करते हैं कि उसे प्रतिष्ठा प्राप्त हों । किसीको भाषण करने की प्रबल इच्छा हो, तो - खड़े रहे, मायक्रोफोन हाथ में आया तो उसे छोड़ने को मन नहीं करता है, क्योंकि घर में या बाहर कहीं न कहीं उसकी उपेक्षा हुई होगी; तो फिर हम सारे मिलकर एक Conspiracy of love and compassion याने प्रेम व करुणा प्रेरित आपसी समझदारी से संतलस कर के अनुकम्पापूर्ण व्यवहार - ऐसा करते हैं । We expose that person to that situation. और यह एक या दो बार होने पर उसकी वासना मुक्त हो जाती है; किन्तु वह उसे समय पर प्राप्त होना चाहिए, जैसे भूख लगने पर याने समय पर भोजन मिलना चाहिए । वैसे ही, इन वासनाओं की भूख तीव्र होती है तब थोड़ा-सा समाजसेवा में ध्यान रखना पड़ता है और विनोबाजी ने एक मंत्र दे रखा है कि- संग में काम करना हो, तो पर-निंदा और आत्म-श्लाघा – इन दोनों का त्याग करो । मैं समस्त सत्सङ्गी व्यक्तियों को कहती हूँ - आत्म-श्लाघा, पर-निंदा को त्यागो, गुण-दोष देखना है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तो अन्यों के गुणों को देखो और दोष देखना हो, तो अपने देखो; परदोष देखकर ग्लानि मत करना। अन्यों के गुण देख कर ईर्ष्या न करना। दोष और गुण - दोनों देह के हैं।

अयोग्यता का अहंकार किसलिए ?

ऐसी अनेक बातें कहती रहती हूँ। मुझे कल्पना नहीं थी कि गुजरात में अथवा अन्यत्र हमारा जो कार्य चलता है, उसके संबंध में आपमेंसे किसीको रुचि होगी; किन्तु आपने प्रश्न पूछा, अतः इतना विवरण देने का उपक्रम किया गया। जो कुछ जब भी सामने आयेगा, - When the call comes, respond to it - तुकाराम ने कहा था कि - उरलो नामापुरता ! वैसे हम सिर्फ़ प्रतिसाद के लिए जीवित हैं। स्वयं का कोई संकल्प नहीं, स्वयं की कोई संस्था नहीं, संघटन नहीं, किसीको जीवन में दीक्षा दी नहीं; किन्तु किसीने बुलवाया और कार्य बताया, तो - 'नहीं, नहीं ! मेरी योग्यता नहीं, मेरी पात्रता नहीं।' - ऐसा किसलिए कहें ? अजी ! अयोग्यता का अहंकार भी किस हेतु ? लघुताग्रंथि - यह अहंकार का भयंकर घातक स्वरूप है। तो, हमने स्वयं संकल्प किया नहीं, इच्छा की नहीं और हमारे सम्मुख खड़ा रहा, तो जो सम्मुख आकर खड़ा रहता है, उसे मिलें, उसको प्रतिसाद दें। जैसा आयेगा - वैसा ! यश आया, तो कृष्णार्पण, अपयश आया, तो हमें खुद को जानने की, सीखने की संधि प्राप्त होती है, अवसर प्राप्त होता है। There is no greater teacher than failure. Nothing teaches you the secret of health, like sicknesses and illnesses - सीखने आना चाहिए।

शिष्यत्व

My friends, life is a movement of learning. The act of living is the act of learning, the movement of learning. और इसे शिष्यत्व कहते हैं, जी ! सीखने की इच्छा मन में रहे। सीखने की तत्परता इन्द्रियों में रहे। सीखने की उन्मुखता बुद्धि में रहे। यदि ये तीनों हों, तो शिष्यत्व आ ही गया। ऐसा शिष्यत्व रहा, तो वहाँ गुरु फिर दूर नहीं रहता। मार्ग बतानेवाला, मार्गदर्शन करनेवाला, अनुकंपा और करुणा से संभालनेवाला फिर ऐसे व्यक्ति से दूर नहीं रहता। सच्चा शिष्य बने बिना गुरु की खोज करने की भाग-दौड़ और टोह-फिराक किसी काम की नहीं होतीं। वह केवल व्यर्थ ही नहीं, अनर्थकारी भी रहती है। ऐसा शिष्यत्व आपमें परिपूर्णता से बना रहे - ऐसी ईश्वर से प्रार्थना करते हुए आज के प्रातःकाल का प्रवचन यहाँ समाप्त कर रही हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन सप्तम

'साधनानाम् अनेकता'

प्रश्न : ईश्वर एक ही होने पर भी हमारे यहाँ उसे अनेक रूपो में पूजा गया है, जैसे - गणेश, शिव, विष्णु, देवी। 'विशिष्ट प्रकृति के व्यक्ति द्वारा विशिष्ट देवता की उपासना करने पर ही वह उपासना फलदायी होगी, अन्यथा नहीं' - यह कहने में कहाँ तक सचाई है ? भगवद्गीता के १७ वें और १८ वें अध्याय में यज्ञ, दान, तप - का महत्त्व विशद् किया गया है । उसमें कहे गये दान का महत्त्व समझने में कठिनाई नहीं है; किन्तु 'यज्ञ' और 'तप' इस संकल्पना के संबंध में, आज की सामाजिक परिस्थिति में अधिक मार्गदर्शन करें। अपना विहित कर्म ईश्वरापर्ण बुद्धि से करना यह यज्ञ; यम-नियम को आचरण में लाने का प्रयत्न ही तप- ऐसा मैंने खुद के लिए सीमित अर्थ लगाया है। यह पर्याप्त है ? या फिर, सामान्य व्यक्ति को और भी कुछ साध्य करना होगा या उसके लिए और भी कुछ अभिप्रेत होगा ? और इसके अतिरिक्त -

एक प्रश्न नामस्मरण के संबंध में यह है कि मौन में हम बैठे रहें और जो नाम-स्मरण करते आये हैं, वह नाम यदि चित्त में जागृत हुआ, तो उसकी कुछ बाधा होती है क्या ? संतोंने नाम की महिमा कही है, तो इस संबंध में आपको क्या कहना है ?

साधन अनेक हैं

उत्तर : जिस देश में हमारा जन्म हुआ है, उस देश का सांस्कृतिक इतिहास हज़ारों वर्षों का है और उस हज़ारो वर्षों के इतिहास में किसने कितने युद्ध किये, कौन हारे, कौन विजयी हुए, इनका जितना महत्त्व नहीं, उतना महत्त्व जीवन का अर्थ, जीवन का रहस्य खोजने के प्रयोगों का है। इस देश में रहनेवालों को धुन थी कि - इस सृष्टि के पीछे क्या रहस्य है ? अर्थ क्या है, इस समूचे जीवन का ? किसने निर्माण किया इस सृष्टि को ? कैसे हुई यह सृष्टि ? हम कौन हैं ? उस सृष्टि से हमारा क्या संबंध है ? - यह सब जान लेना। वेद-उपनिषद् - ये तो हैं ही, षट्-शास्त्र भी हुए ; किन्तु तदनन्तर भी ये प्रयोग समाप्त नहीं हुए और जितने व्यक्ति, उतनी भिन्न-भिन्न उनकी प्रवृत्तियाँ और मनोवृत्तियाँ - इन समस्तों को सत्य की ओर कैसे ले जायें ? असत्य से, अविद्या के अंधकार से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आत्मा के आलोक की ओर कैसे ले जायें ? विकार, विचार और वृत्ति - इनके और जन्म व मृत्यु के चक्र से समाधि के अमृततत्त्व की ओर कैसे ले जाएँ ? – इसकी चिन्ता, और इसी कारण अलग-अलग शास्त्रों की रचना की गई। जो भावनाप्रधान हों, वे कैसे प्रारंभ करें ? बुद्धिप्रधान हों, वे कहाँ से आरंभ करें ? रजोगुणप्रधान हों, वे क्या करें ? जिनके मन पंगु हैं, उन्हें आधार कहाँ से प्राप्त होगा ? जिनका अहंकार प्रबल है, उनका शमन कैसे होगा ? भिन्न-भिन्न शास्त्र और अलग-अलग मार्ग। साध्य में एकता और साधनानाम् अनेकता। 'साधने उदारशीलता'। भारतीय संस्कृति में साध्य एक : कौन-सा ? "तस्मात् योगी भव"। यह तो साध्य है ही; पर योगावस्था साध्य करने के लिए अनेकानेक साधन, कई मार्ग - हमें दर्शाये गये हैं। उनमेंसे एक मार्ग उपासना का, जो आगे उपासना की परिणति भक्ति में करने की ओर जाता है।

सकाम और निष्काम उपासना

तो, उपासना का एक शास्त्र है तथा उस उपासना के शास्त्र में अध्यास या आरोप - इस युक्ति की सहायता ली जाती है। अब, वह आरोप या अध्यास याने क्या - यह हम सरल भाषा में देखेंगे।

समझ में आया, श्रुति माता ने सुनाया कि परमात्मा निर्विकार है, निराकार है, सर्वाकार है। यह समझ में आया; पर हमारा अनुसंधान उससे कहीं रहता नहीं। इतने बड़े फैले हुए विश्व में रहना, समाज में रहना ! कितना बड़ा पसारा ! कितने उसके प्रकार ! फिर, हमारा चित्त इधर-उधर भटकता है। उसीमें बह जाने की, खो जाने की शक्यता रहती है। तो, हमें युक्ति बताई कि यह जो निराकार, निर्गुण है, सर्वाकार है, उसका 'प्रतीक' समझकर 'प्रतिमा' बनाइये। प्रतिमा बनाने का, भगवान की मूर्ति बनाने का शास्त्र है। वह मूर्ति अव्यंग होनी चाहिए ! बहुत विस्तृत ग्रंथ लिखे हुए हैं इसपे। तो, यह जो आप सगुण मूर्ति बनवाते हैं, प्राणप्रतिष्ठा कर उपासना का विग्रह बनवाते हैं, वह प्रतिनिधित्व करता है। निर्गुण, निराकार का प्रतिनिधित्व यह सगुण करता है। कैसा मज़ा है, देखो ! और कैसी मज़ेदार युक्ति है यह !

"तुझ सगुण म्हणूं की निर्गुण रे !
सगुण-निर्गुण दोन्ही विलक्षण, ते हे परब्रह्म उभे विटेवरी !"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'तुझे सगुण कहूँ या निर्गुण कहूँ !' सगुण-निर्गुण दोनों को समाये हुए दोनों से विलक्षण हैं और वही परब्रह्म ईंट पर खड़ा है। यह सब भाषा भक्तों की है। तो, उपासना के लिए आरोप किया गया, उस निर्गुण, निराकार पर सगुण होने का, साकार होने का। 'तू यदि वृक्ष के रूप में साकार होता है, सरिता व सागर का रूप धारण करता है, तुझे सूर्य व चन्द्र का आकार ग्रहण करना आता है, तो फिर तेरी छोटी-सी प्रतिमा हम बनवायेंगे। उसमें प्राणप्रतिष्ठा करेंगे। तेरे समीप हमें बैठना है, उपासना करनी है। 'उप' याने 'समीप' बैठना है। 'उपवास', 'उपासना' शब्दों की ओर देखना चाहिए। शब्दों की ओर ठीक से देखे बिना, अर्थ समझे बिना, भोलेभालेपन से सिर्फ़ 'करते रहना' नहीं चाहिए।

तो - आपने यह आरोप किया या अध्यास किया, फिर वहाँ बैठ गये। उस विग्रह को, मूर्ति को आप कहते हैं कि - तू घट-घट वासी है। दिखती है आँखों को ढ़ाई इँच या चार इँच की प्रतिमा और उसे आप कहते हो - 'हे घट-घट वासी ! अंतर्यामी !' सब.... कुछ, सबकुछ कहते हो न ? ! जैसे लयला की और देखने के लिए मजनू का दिल होना चाहिए, वैसे उपासक का चित्त होना चाहिए, इस अध्यास में व आरोप में होनेवाला सौन्दर्य निहार ने !

अब आप मुझसे पूछते हैं कि गणेश, शिव, विष्णु, देवी - इनकी उपासना करनी है; तो, इस उपासना-शास्त्र में जो नियम होंगे, वे देखने पड़ेंगे। यह सच है कि देवी-देवताओं की उपासना अपनी-अपनी प्रकृति के अनुरूप सकाम करोगे या निष्काम करोगे। निष्काम उपासना करनी हो, तो किसी भी देवी-देवताओं की करो न ! विधि-निषेध ही नहीं, वहाँ पे ! क्योंकि हमें कुछ माँगना ही नहीं हैं, उस उपासना मेंसे। भगवान के पास भगवान को ही माँगना है, और कुछ माँगना है नहीं; ऐसी निष्काम उपासना यदि रही, तो फिर कोई भी विधि-नियम देखने की आवश्यकता नहीं रहेगी; पर यदि सकाम उपासना करनी हो और कुछ फल उसमेंसे माँगना हो, तो ! तो ठीक है, करें, लेकिन उपासना की प्रेरणा होना यही अहोभाग्य ! - ऐसा आपको लगता नहीं क्या ? वे भजन गाने में, वह पूजन-अर्चन करने में, आपको यदि कृतकृत्यता लगती न हो और यदि कुछ माँगना हो, तो उसके जो यम-नियम, जो कुछ होंगे, उनका पालन करना पड़ेगा। आपने प्रश्न किया है कि वह फलदायी होती है या नहीं ? यह प्रश्न सकाम भक्ति का है, वैधी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्ति का है। वह गदाधर ! दक्षिणेश्वर में बैठनेवाला ! उसे कहाँ किसी नियमों का पता था ? कौन-सा शास्त्र उसने पढ़ा था ? ख़ुद का नाम नहीं लिखने आता था ! और उस कालीमाता की मूर्ति के पास बैठा था न ! वह अवैधी भक्ति ! रागात्मिका भक्ति ! वह शास्त्रबाह्य भक्ति ! उसे कुछ भी प्राप्त नहीं करना था देवीमाँ सें। 'मुझे तेरा स्वरूप ज्ञात हो, विश्व का रहस्य ज्ञात हो,' - इसके अतिरिक्त कुछ भी माँगना नहीं था।

तो, आप शास्त्र का प्रश्न करते हैं। यदि आपको सकाम भक्ति करनी हो, तो उसके जो नियम होंगे, उनका पालन करना पड़ेगा। यदि व्यक्ति अति क्रोधी हो, तो सामान्यतः जो अनुभवी लोग हों, वे उसे 'नमः शिवाय' मंत्र देंगे, शिवोपासना कहेंगे। रजोगुणी व्यक्ति हो और उसे शक्ति चाहिए, सत्ता चाहिए, Obsession (ग्रस्तता) है, व्यामोह है, किसी न किसी power सत्ता-शक्ति का उसे; तो कहेंगे कि, तू शक्ति की उपासना कर। फिर 'ॐ ह्रीं क्लीं चामुंडायै नमः।' - उसे ऐसा मंत्र कहेंगे। जिन्हें जीवन के प्रबन्धों में शान्ति से रहना है, उसे कहेंगे कि तू 'श्रीराम जय राम जय जय राम' कहना बाबा, तू ले न राम की उपासना ! शास्त्रों के आधार पर या आत्मानुभवी व्यक्तियों के मार्गदर्शन के अनुसार आचरण करना हो, तो इस प्रकार से उपासना की जाती है। वे समस्त सकाम के प्रकार है।

मंत्र, नाद और प्रकाश

अब इस उपासना-शास्त्र के अनुसार योगावस्था की ओर जाने के लिए, इस अध्यास और आरोप का उपयोग करते हुए सगुण-साकार की ओर ललचाई हुईं जो इन्द्रियाँ हैं, उन्हे सहाय करने के लिए यह उपासना जैसे कही गई, वैसे ही नाद-शक्ति का उपयोग क़िया गया है। The metaphysics of 'Sound Energy'. नाद याने एक ऊर्जा है - Energy है और उसमें प्रकाश है। प्रकाश व नाद को अलग नहीं कर पाते। The Primal Principles of Creation ये प्रकाश और नाद हैं। इस नाद में जो ऊर्जा है, उसका उपयोग करें, इस दृष्टि से जिन्होंने जप-शास्त्र बनाया, मंत्र-शास्त्र बनाया, उन्होंने अलग-अलग बीज -मंत्रों का रहस्य हमारे सामने खोलकर रखा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाम-स्मरण

नाम-स्मरण यह उसका एक अंश है। आप नाम-स्मरण करते हैं - 'तज्जपस्तदर्थ-भावनम् ।'; जाप करने से दो कार्य साध्य होते हैं। नाम -स्मरण करने में एक तो अर्थभावन होता है। रमते हृदये इति रामः। हमारे हृदय में नित्य स्मरण होनेवाला जो चैतन्य है, वही हमारा 'राम' है, 'आत्माराम' है। जो आकर्षण करता है, वह 'कृष्ण' है। चित्त का हरण करनेवाला - वह हरि है। शुभ करता है (शं करोति इति शंकरः ।), वह शंकर है। उसी प्रकार 'शं' अर्थात् 'शिव' याने कल्याण करनेवाला, यह 'शंकर है' - (शं करोति इति शंकरः ।) ये समस्त जो नाम हैं, उन नामों में अर्थ भरा हुआ है और उन प्रत्येक अक्षरों के Sound Vibrations याने नादात्मक स्पन्दन - हैं। बावन मातृकाएँ जो कही गईं हैं, उनमें हर एक में जहाँ तक उस नाद का स्पन्दन जाता है, वहाँ तक उस नाद के संग प्रकाश भी जाता है। तो, यह जो नाम-स्मरण का मार्ग है, चित्त-शुद्धि की साधना के लिए, अपने मन को आधार देने के लिए; वह सरल है। उठते-बैठते, जागते-घूमते, हँसते-रोते - यह नाम लिया जा सकता है। 'विठ्ठल टाळ विठ्ठल दिंडी, विठ्ठल तोंडी उच्चारा' - विठ्ठल टाळ, विठ्ठल दिंडी ! 'उठता- बैसता ध्या रे हरि चे नाम !' उठते-बैठते प्रभू का नाम-स्मरण करते रहो, यह एक सरल मार्ग दिखा। जिन्हें नाम-स्मरण से प्रारंभ करना है, दिनभर जो कार्य में व्यस्त रहते हैं, घर संभालते हैं, उन्हें कामकाज करना पड़ता है, उन्हे उठते -बैठते, चलते-फिरते ये नाम लेते हुए अर्थ-भावन करना चाहिए।

तो, एक कार्य हुआ 'अर्थ-भावन' करने का। संसार के विचार, अच्छे-बुरे, सुष्ट-दुष्ट विचार उद्भव होने के बदले उस नाम के संबंध में विचार आने लगे तो, जिस चित्त में व्यग्रता थी (उस चित्त को) और 'व्यवसायिका बुद्धिरेकेह करु नन्दन !' - यह जो व्यवसायत्मिका बुद्धि है, उसे भी, स्थिरता के लिए एक स्थान प्राप्त होता है। और क्या होता है नाम-स्मरण में ? उसकी जो नाद की शक्ति है - The sound has a purifying force in it. जिस प्रकार आप जल से प्रक्षालन करते हैं, उसी प्रकार नाद की ऊर्जा के द्वारा भी प्रक्षालन होता है। आहतनाद से होनेवाला (प्रक्षालन) मर्यादित रहता है, अनाहत नाद के द्वारा अमर्याद होता है, अतः इस नाम-स्मरण में श्रेष्ठ नाम-स्मरण है - 'ॐ'। 'ॐ इति एकाक्षरं ब्रह्म, प्रणवो ब्रह्म !' 'यह जो ॐ का नाद, है जो अनाहत हैं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आहत नहीं, जो चराचर में स्वयंभू तथा स्वयंसिद्ध है, उसका स्मरण करते रहें'- ऐसा भी कहते हैं।

तो, मुझे कहना इतना था कि उपासना और भक्ति-योग - यह जैसा सुनाया गया, वैसा ही मंत्र-योग, नाद-योग, लय-योग - ऐसे हमारे बड़े शास्त्र हैं। हमें उत्तराधिकार में क्या धरोहर प्राप्त हुई है, इस ओर कोई देखता ही नहीं, यह दुर्भाग्य है। It's an exceptionally rich heritage ! किन्तु इसमेंसें किंचित् ली, उसमेंसे किंचित् ली; साधारण दृष्टि से देखो, परंपरा देखो-इतना ही करते रहते हैं हम, और इसी कारण हम कहीं भी पहुँच नहीं पाते। और नाम -स्मरण से, जाप के द्वारा जो कुछ अल्प, क्षुद्र अनुभूति होंगी, कहीं नाद सुनाई दिया, कहीं प्रकाश दृष्टि में आया, कहीं कुछ बंसीनाद सुनाई दिया, मृदंगनाद -मेघनाद - सुनने में आया और कृष्ण का रूप दिखा, विट्ठल का रूप दिखा तो समाप्त। कार्य समाप्त ! उसके आगे कोई जाता ही नहीं ! वस्तुतः ये जो नाद -योग, लय-योग, मंत्र-योग, भक्ति-योग आदि हैं, वे चेतना-परिवर्तन के माध्यम बन सकते हैं। किन्तु नहीं बनाये गये। 'पळ-भरी नोहे विभक्त तो म्हणावा भक्त।' अर्थात् एक क्षणार्ध भी उसका अनुसंधान छूटता नहीं, वही है भक्त ! यह अनुसंधानात्मिका भक्ति, नारद-भक्ति-सूत्र में सर्वश्रेष्ठ भक्ति कही गई है। तो ये (सारे) मार्ग हमारे यहाँ प्रचलित हैं।

साम्यक्षोभ यही अनुभूति बनती है

प्रश्न करनेवाले ने कहा है कि आप मौन तथा ध्यान के संबंध में कहते हैं। 'नाम की महिमा कही गई है, इस देश में। उपासना का मार्ग अनेकों ने चलाया हुआ ऐसा है। लेकिन यह मेरा विषय नहीं।' तो, आप ऐसा प्रश्न करते हैं कि - हम मौन में बैठे हैं और जप का स्मरण होता है। 'स्मरण होता है।' तो होने दो, भाई ! और 'सहजता से नाम-उच्चारण होता है।' तो - उच्चारण होने दो ! किन्तु नाम-स्मरण में यदि उपांशु जप भी रहा, भले वैखरी जप न रहा हो, तो भी क्रिया चलती है और जहाँ क्रिया चलती है, वहाँ भीतर के समस्त नाडी-तंत्र व रसायण-तंत्रों में हलचल रहतीं हैं। धातुसाम्य, वृत्तिसाम्य - इसमें क्षोभनिर्माण होता है। और इस क्षोभ को ही अनुभूति कहते हैं। यदि यह साम्य रहा, तो अनुभूति नहीं रहती लेकिन धातुसाम्य, वृत्तिसाम्य के क्षोभ की स्थिति में तो जो-जो क्रियाएँ रहती हैं - आपके नाम-स्मरण की, उपासना की,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन क्रियाओं से निर्माण होनेवाली अनुभूतियाँ तथा उनसे विकसित होनेवाली सुप्त शक्तियों के मेले में हम अटकते हैं; हमारा चित्त उलझता है। उससे प्राप्त होनेवाला जो सुख रहता है, वहाँ चित्त लुब्ध होता है। उससे परे नहीं जाता।

हम शिबिरों के आयोजन क्यों करते हैं ? अथवा मौन या ध्यान की बातें क्यों करते हैं ? इसलिए, कि हमें ऐसा दिखता है कि आज का जो मानवी-मन है, जो अहंकार नाम के कल्पित केन्द्र से चिपक बैठा है, उसका obession (व्यामोह) हुआ है। - Ego-mania, intellectual mania - वहाँ वह फँस पड़ा है और उसे ऐसा लगता है कि ये जो विचार व विकार के चक्र में उलझा हुआ मन है, कर्तृत्वभाव-भोक्तृत्वभाव – में घिरा हुआ जो मन है, इसी मन के द्वारा जीवन के समस्त प्रश्न सुलझनेवाले हैं। वे सुलझ नहीं पा रहे, यह तो देख ही रहे हैं इस देश में ! आज देश की क्या स्थिति है ?! क्या समाज का गठन है ? व्यवहार का स्तर कैसा है ? सामुदायिक जीवन की क्या दुर्दशा है ? आप देख रहे हैं न ! क्या मन्दिरों में जाप नहीं होते ? कीर्तन नहीं होते ? भजन नहीं होते ? कथाएँ नहीं होतीं ? सुंदर सुंदर मन्दिर हैं न इस देश में ? जिस स्थान में कदम रखने पर चित्त प्रसन्न होता है, ऐसे कई स्थान, ऐसी मूर्तियाँ, ऐसे विग्रहं हैं नहीं क्या ? ऐसा रहते हुए भी यह समाज ऐसा क्यों है ?

उपासना का जीवन से अनुबंध चाहिए

दो कारण हैं : एक, उपासना का अनुबंध जीवन से जोड़ा नहीं गया। जैसे कुछ Personal Psychic Property हुई ! उस ज्ञान का, अनुभवों का, उन शक्तियों का तथा फिर उस Property का उपयोग करना है। उसका अनुबंध जीवन से बँधा नहीं। ये नाम-स्मरण करनेवाले जो चित्त हैं, उनके व्यवहार में क्यों जी, अंतर नहीं पड़ता ? उनके काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, ईर्ष्या- क्यों नहीं जाते ? समूचे सन्तों ने जिसकी महिमा सुनाई, उन नामों का गान करते हो न ? वे भजन गाते हो न ? वह पूजन-अर्चन करते हो न ? न करें - ऐसा हम कहते ही नहीं; अध्यात्म में निषेध नहीं, किसीका भी; तो हमारी चेतना में जो गुणात्मक-परिवर्तन, - 'Transformation in the human consciousness' - होना चाहिए, यह जो आज की आवश्यकता है, वह इसके द्वारा पूरी नहीं होती; फिर, उसके आगे कदम मत बढ़ाओ - ऐसा तो सन्तों ने नहीं कहा है न ? क्या ऐसा पूर्वजों ने कहा है ? भक्ति एवं उपासना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को Logical End तक कोई नहीं ले जाता ! भक्ति एवं उपासना के द्वारा कोई एक मीरा निर्माण होती, एकाध सन्त एकनाथ, एकाध नामदेव, तुकाराम, एकाध जनाबाई, वेणाबाई होती ! तो फिर कुछ नहीं कहना पड़ता; क्योंकि फिर तो जीवन ही बदल गया न, भाई !

नाम से ही अहं नाश तक जाओ !

आप नाम-स्मरण करते जाओ या उपासना करते जाओ, पर आपको इस नाम के, शब्द के, क्रिया के, अनुभूति के उस पार जाकर यह 'अहं' नाम का जो केन्द्र है, उसका उच्चार न हो, ऐसी अवस्था तक जाना पड़ेगा; क्योंकि जब तक 'अहं' के केन्द्र में बेठकर हम जीते हैं और व्यवहार करते रहते हैं, तब तक अतीत छोड़ता नहीं। उसकी जो चौखट है, वह छूट नहीं पाती, कितने ही विचारों में परिवर्तन लाओ आप, विचार करने की पद्धति में बदलाव करो, समाज-रचनाओं में फेरफार करो, जब तक यह अहं-केन्द्रित चेतना है, तब तक मुझे नहीं लगता कि मानवीय प्रश्नों का उत्तर मिलेगा; अतएव हम आपके सम्मुख मौन व ध्यान की बात रखते हैं। प्रथमत: अध्यास करो, आरोप करो, नाद शक्ति का, अन्य शक्ति का उपयोग करो, अनुभूति जागृत करो और फिर आप जाओ योग की ओर ! इसके बदले एक वैज्ञानिक मार्ग है कि अगर हम जानते हैं कि मन की पकड़ में वह सत्य नहीं आयेगा, अनुभूति के क्षेत्रमें नहीं आयेगा, शब्दों द्वारा वह पकड़ा नहीं जायगा, तो उस मन की ये समस्त जो गतियाँ हैं, वे शांत हो, ऐसा कुछ करेंगे। मन की गति शांत हो ही जायेगी और फिर जो अज्ञात संस्कारमुक्त चेतना है, वह जागृत होकर कार्य करने लगेगी; तो संभव है, नये प्रकार का मानव खड़ा होगा।

तो, इन समस्त मार्गों का महत्त्व यदि मैं जानती हूँ, फिर भी ये सब प्राथमिक अवस्था में सहाय करनेवाले मार्ग हैं, ऐसा मैं मानती हूँ। वहीं पर ही (अटककर) मानव उलझे नहीं। इस सभा में इस विषय को लेकर मुझे इससे ज़्यादा कुछ नहीं कहना है।

नयी प्रतीति का मानव

Sound of light अथवा इसके पार जाकर आत्मनः आकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः वायोरग्निः – आत्मा की प्रथम तन्मात्रा या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथम विभूति यदि आकाश-अवकाश या **Emptiness** कहना हो, तो वहाँ तक हमें जाना पड़ेगा और ध्यान - यह हमें चिदाकाशं में ले जाता है। आत्मसत्ता का वह अंतिम आवरण पूर्ण झिलमिला (झीना), पारदर्शक ! वहाँ पहुँचने पर शब्दों का अस्त होता है, नाद लुप्त होते हैं, दिक् और काल की सुध नष्ट हो जाती है। ऐसी जो शून्याकार अवकाशावस्था या आकाशावस्था है, वहाँ पर उस सत्ता का स्पर्श होता है। जब तक हम किसी न किसी क्रिया में उलझे हुए रहते हैं, तब तक हमने खड़ा किया हुआ विश्व जो है, उसमें ही हम अटके हुए रहते हैं। Sublimated level of existence - याने हमने उदात्तीकरण किया है भावनाओं का, इसमें कोई संशय नहीं, किन्तु अन्त में हमारा या विश्व का 'अस्तित्व' - 'होनापन' जानना यही भक्ति का मर्म है। कर्ता, भोक्ता या द्रष्टा - इन समस्त भोवों का साक्षित्व - भाव का भी, विलोपन यही भक्ति का मर्म है। तो, इस देश की परिस्थिति की ओर हमारा लक्ष ऐसा है कि नया मानव खड़ा रहे, चेतना के जो नये आयाम हैं, उनका उद्‌घाटन हो और नये मानवीय संबंध शोषणमुक्त, समतायुक्त, भ्रातृत्वयुक्त - ऐसे कोई सामाजिक संबंध निर्माण हों। इस कारण हम आन्तरिक क्रान्ति की बात आपसे करते रहते हैं - **Transformation in the consciousness** ! कितनी Therapies हैं और कितने आधार हैं और कितने मार्ग हैं, इसके वर्णन में हमें उतरना नहीं। (किन्तु, उस संबंध में प्रश्न आये हैं, अतः उत्तर देना पड़ता है।

'दान' - परिग्रह का प्रायश्चित

अब आपने पूछा है - यज्ञ, दान और तप। यज्ञ, दान, तप का महत्त्व गीता के १७ वें १८ वें अध्याय में कहा गया है। प्रश्नकर्ता कहते हैं कि 'दान' शब्द का तो महत्त्व समझ में आया। मुझे पता नहीं कि आप 'दान' - इस शब्द का अर्थ जानते हैं या नहीं। दान देने से पुण्य होता है - यह अर्थ हम जानते हैं, योग्य पात्र देखकर दान करना चाहिए, यह हम समझते हैं या दान यह परिग्रह का प्रायश्चित है यह हम समझते हैं ? ऐसा है कि ब्रह्मचारी को कोई परिग्रह करना नहीं होता, पर जिस समय हम ब्रह्मचर्य से गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं और 'धर्माविरुद्धो कामोऽस्मि भरतर्षभ।' - ऐसा कहते हुए उस आश्रम का स्वीकार करते हैं, उस समय धन का अर्जन करना, पैसा प्राप्त करना, परिग्रह करना, संग्रह करना आवश्यक बनता है। यह परिग्रह करते समय आज तो कोई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्म से, न्याय से, सत्य से कमाते हैं या नहीं, मालूम नहीं। आज की यह सरकार कमाने देती है या नहीं, मालूम नहीं; किन्तु मैं आपको इतना कह सकती हूँ कि पूर्णतः सत्य से, न्याय से तथा धर्म से भी कमाते रहें, तो भी अनवधान से कभी भूल होती ही है। कभी जाने-अनजाने में अपनी ओर से किसी पर अन्याय होता है; अतएव गृहस्थी व्यक्ति को परिग्रह का प्रायश्चित्त है 'दान' ! 'दानेन संविभागः' । यह दान करने से संविभाग होगा। वह धन वितरित होता रहेगा, फैलता रहेगा और समाज में एक स्थान पर जमा होकर नहीं रहेगा, जैसे blood circulation शरीर में होता है, वैसे ही ! रक्त एक स्थान में रुका रहा, तो फिर बीमारियाँ निर्माण होतीं है। ये आज के धनिक लोग याने हमारी अर्थ-व्यवस्था में बने हुए economic clots हैं, वे समस्त ! blood knots रहते हैं न blood clots, वैसे !

तो, प्रश्न करनेवालों ने "दान" का यह अर्थ देखा है या नहीं, मुझे मालूम नहीं। अति क्रान्तिकारी अर्थ है। "परिग्रह का प्रायश्चित्त !" प्रायश्चित्त को 'Punishment' नहीं कहना, जी ! प्रायश्चित्तेन शुद्ध्यते चित्तम्। 'यह अपरिहार्य है, यह मुझे करना है और यह मैं करनेवाला हूँ। चौवीसवें वर्ष में मैंने गृहस्थाश्रम को स्वीकारा, शायद् ४०-५०-६० वर्षों तक मुझे इसमें रहना है। करनेवाला हूँ मैं ! और मैं कोई पूरी तरह निर्दोष व्यक्ति हूँ नहीं। मुझसे गलतियाँ होंगी, अतः मैं बार-बार इसका प्रायश्चित्त लेकर दान से शुद्ध होता हूँ।' - यह कहकर जो दान देते हैं; और जो दान स्वीकार करते हैं, उनके भी लोग चरण छूते रहते हैं ! हमारे बाल्य काल में हमने देखा वह कह रही हूँ कि - अनुग्रह किया आपने कि हमारे दान को भी स्वीकारा ! - ऐसा कहते थे ! यह कोई 'donation' जैसा दान नहीं है, जी ! यह भिन्न पद्धति है। जो शब्द हमने भगवद्गीता से लिया है, उसके संबंध में मैं कह रही हूँ। कारण, 'सर्वोपनिषदो गावो दोग्धागोपालनन्दन !' गीता के प्रत्येक शब्द का अर्थ वेदपरक है। श्रीमद् भगवद्गीता हाथ में ली, तो उसका भी अर्थ वेदपरक ही है। वहाँ, उस (श्रुति) माता की ओर ही लौट जाना पड़ता है ! वह मूल स्रोत है। The Source, The Perennial Source of all religious and spiritual literature in India as available to this day.

हम मान लेंगे कि हमें 'दान' का यह अर्थ मालूम है। हमारे शुद्धीकरण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के हेतु हम दान करते हैं । उससे मन कृतज्ञ होगा, फिर कहेंगे नहीं कि हमने हमारे विद्यालय को इतना दान दिया है, तो एक संगमरमर का टुकड़ा लगाओ जी, दीवार में कि - इन्होंने अपने माताजी के स्मरणार्थ इतना दान दिया है ! – देने के पश्चात् हमें छुटकारा मिला, मुक्त हुए, ऐसा नहीं ! वह दिया हुआ दान लोगों को मालूम होना चाहिए, उनके मुँह से निकलना चाहिए कि - क्या दानशूर व्यक्ति है ! દાનેશ્વરી છે આ માણસ ! दानशूर है !' – फिर (वापस) - हम उसमेंसे कुछ प्राप्त ही करना चाहते हैं ! मुक्त होना ही नहीं है हमें ! अब चलो आगे !

तप व यज्ञ के व्यापक अर्थ

'तप' याने क्या और 'यज्ञ' क्या है ? इनका (प्रश्नकर्ता का) ऐसा कहना है इन शब्दों का क्या अर्थ है ? 'दान' शब्द का मूल अर्थ हमने आपको बताया । 'तप' शब्द का जितना अर्थ मैंने जाना है, उतना कहती हूँ । हमें जिस क्षण जो सत्य प्राप्त हुआ, समझ में आया, ध्यान में आया, जँचा, उसका आचरण करना 'तप' है । किस कारण ? क्या इससे मानव तप्त होता है ? उसको क्या बड़े परिश्रम या कष्ट सहने पड़ते हैं ? देखें । इसका कारण है यह है कि अभी समाज की रचना सत्य-आधारित न्याय-आधारित, धर्म-आधारित नहीं है; फिर ऐसी जो सत्याचरणी व्यक्ति होगी, उसे बहुत सहना पड़ता है । सॉक्रेटीस को ज़हर पीना पड़ा, महात्मा गांधीजी को पिस्तौल की गोली खानी पड़ी, उपेक्षा होती है यह कहकर कि - पागल मनुष्य है, व्यवहारी मनुष्य नहीं; ऐसा कहा जाता है । फिर असहयोग होता है, प्रतिकार होता है और असत्य को सत्य हंमेशा चुभता है । सत्य से जीनेवाली एक व्यक्ति रही, तो भी असत्य को चुभने लगती है । तो, हमको समझा हुआ सत्य जीना है, इसी समाज में रहकर ! कहीं भी गुफा में जाकर, एकान्त में, विजनवास में बैठकर जीवन जीना याने जीना ऐसा नहीं है । **In isolation, there is no life,** there is physical existence, लेकिन physical existence यह कोई **life** नहीं, और **living** नहीं ! **Life is in relationship. To live is to be related; and in the movement of relationship to discover the elegance, the beauty and the mystery of harmoney.** यही जीवन जीने का अर्थ है । तो यह तप है और यह हम नहीं करते । हमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मालूम है कि मृत्यु आनेवाली है, मृत्यु निश्चित है; अतः हम श्लोक आदि बोलेंगे - "जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः । ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।" तोते जैसी बातें करने में हमारा क्या जाता है ? वह मृत्यु तो नित्य उपस्थित रहती है, जहाँ हम रहें, वहीं पर ! यह भी हमें मालूम है और फिर भी हमे लगता है कि जब पचास-साँठ या सत्तर वर्ष होंगे, तब हम किसी अलग पद्धति से जियेंगे । (तबतक) आज जो है, यह हमारा धनाभिलाष, कामाभिलाष - यह सब न्याय्य, है ऐसा हम समझते हैं), किन्तु मृत्यु की उपस्थिति समझकर जो मालूम हुआ है, जो समझा गया है, वह जीने का पुरुषार्थ तत्काल, तत्क्षण करना, यह तप' है । 'Live the truth you understand instantaneously.' जे. कृष्णमूर्ति कहते थे - "Live the truth you understand instantaneously, otherwise you will get destructed by the truth." सत्य विदित हुआ और वह यदि जिया नहीं गया, तो मानव त्रिशंकु जैसा होता है । न इधर का, न उधर का । न संसार का, न परमार्थ का । बातें परमार्थ की कहते रहना और जीना संसारी बनकर, 'संसार में नहीं, जी !' 'संसारी बनकर !' । इतनी बातें सुनीं हुईं रहतीं हैं परमार्थ की, इसलिए संसार में भी ध्यान नहीं लगता और प्रपंच छोड़ने का भी साहस नहीं होता । ऐसी त्रिशंकु जैसी स्थिति होती है और यदि सरसों के दाने जितना भी पाया हुआ, समझा हुआ सत्य हम जीने लगें, तो वह सत्य समाज में हमें तप्त करेगा । लोगों की ग़ैर-धारणा, लोगों का असहयोग, विरोध - सबकुछ होगा; किन्तु वह सत्य शुद्ध करता है, जैसे दान शुद्ध करता है, उसी तरह तप से भी जीवन की शुद्धि होती है ।

आपने पूछा है, "यज्ञ" याने क्या ? आज के संदर्भ में "यज्ञ" की संकल्पना का क्या अर्थ है ? अब यदि "यज्ञ" शब्द से आप वे क्रियात्मक यज्ञ-याग आदि समझते हों, तो आप महाभारत देखें । इक्कीस प्रकार के यज्ञ हैं, उन यज्ञों की जो नामावली है, वर्णन हैं, विवरण हैं, वे पढ़ें - द्रव्ययज्ञ से लेकर जो यज्ञ-यागादि प्रकरण हैं - थोड़ा गीता में भी उसका उल्लेख आता है । किन्तु मुख्यतः क्या कहना हैं इस संस्कृति को ? कि, समस्त जीवन ही यज्ञ है । 'आत्मोत्सर्गो यज्ञः ।' प्रत्येक क्षण आपके सामने जो जीवन आता है, संकट आते हैं, सुखदुःख आते हैं, - जो कुछ आपके सामने आता है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और जिसमें आपको जीना पड़ता है, उसमें आपका संपूर्ण स्वत्व जो है, वह डाल दीजिये, आत्मोत्सर्ग कीजिये। **Live with the Wholeness of your Being, the Totality of your Being. Pour whole Beingness into every action of yours.** उसमें कोई निरोध-अवरोध - **inhibitions** नहीं, कुछ **reservations** (याने आरक्षण या बचा रखने की या अपवाद करने की बात) नहीं, कोई भी भय नहीं, संकोच नहीं, लड़ना नहीं। जिस क्षण में हमारे सम्मुख जो भी कर्म अनिवार्य रूप से आता है, कोई व्यक्ति आया है मिलने के लिए; फिर उस समय समस्त मानव-समाज जो है, वह आपके सम्मुख उस व्यक्ति में Condense - घनीभूत होकर आया है; फिर - 'सर्वांगाचे करूनी श्रवण, अवधान दीजो।' सुनो, उनकी ओर निहारो, उनका श्रवण करो। हम सुनते भी नहीं, देखते भी नहीं; कारण, उस व्यक्ति को हमने देखा और उसे देखते ही कुछ अनुकूल-प्रतिकूल ग्रह बन जाय; क्योंकि हममें कुछ चाहा-अनचाहा हैं न! फिर, 'इस व्यक्ति का यह ऐसा क्यों और वैसा क्यों ?' रूप देखकर, बैठना-उठना देखकर; फिर वह व्यक्ति वार्तालाप करने लगी, तो बातचीत करने पर! हमारा चाहा -अनचाहा शब्दों के बारे में है, विचारों के बारे में है; फिर, हमें वह प्रिय लगता है या नहीं लगता, यह जँचता है, वह नहीं जँचता! उस व्यक्ति का कहना पूरी तरह सुनने की शान्ति, इतना धीरज ही कहाँ ? फिर, हमारे चित्त की प्रतिक्रियाएँ जो हैं, वे प्रकट होतीं रहतीं हैं और सुनने का जो कर्म है, वह खंडित होता है या दूषित होता है। हमारा देखना दूषित होता है, सुनना दूषित होता है। **To remain steady in your being !** (वे) जो हैं, जहाँ हैं, वैसे रहकर, उनका अभिप्राय क्या, उनका रूप आपको क्या कहता है, उनके शब्द आपको क्या कहते हैं- यह देखें एवं सुनें। **The art of Listening, the art of perception !** किन्तु हमारा तो Pollution the very first moment of perception शुरू हो ही जाता है। The act of listening gets polluted, the act of perception gets polluted and every pollution results in an imbalance ! और इसीलिए हम जो कुछ प्रतिसाद देने जाते हैं, वह प्रतिसाद भी हमारी समग्रता से निकला हुआ नहीं होता। उसमें सहजता नहीं रहती। अथक परिश्रम कर के, हिसाब लगा के,

१०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Calculations (गिनती) कर के - 'इसकी ओर से क्या प्राप्त होगा ? कितना लेना ? आज कितना ? कल कितना ?' - ऐसा barganing at the counter of relationship (संबंधों के मौक़े के वक़्त सौदेबाज़ी) चलता है ! ऐसा मेरा कहना नहीं है कि दुकान में कुछ लेने जायें, तो आप पूछिये नहीं, देखिये नहीं या उसमें कुछ चुनिये नहीं । जीवन 'यज्ञ' है याने यज्ञ के हेतु समिधा लाओगे, घृत लाओगे, वह शुद्ध ही रहेगा न ! या कहीं से-बनिये से बिलकुल अति दुर्गंधित रहा धृत लाकर यज्ञ में डालोगें ? जो उत्कृष्ट रहेगा, हम यज्ञ-कर्म के काम में लगाते हैं । उसी प्रकार हमारे जीवन में जो सत्य है, वह प्रतिक्षण – कायिक, वाचिक, मानसिक, बौद्धिक – जो कुछ कर्म करते हैं, उनमें अर्पित करना यही "यज्ञ" है ।

यह "यज्ञ" का पूर्वांग हुआ । पूर्वाध कहो ! अब उत्तरांग क्या है यज्ञ का ? जो यज्ञ का 'होता' है, ऋत्विज्-'होता'-'यजमान' है - अन्य छोड़ दो - जो यज्ञ करने बैठा है, उसे क्या लगता है ? उसे लगता है कि मैं यह यज्ञ करके बड़ा भाग्यशाली बन गया हूँ । उसी प्रकार इस जीवन जीने के कर्म में परिणाम सुखदुखात्मक कुछ भी निकले, हमें जीने को मिल रहा है न ! हमारा जीने का कर्म घटित हो रहा है न ! **To be alive is a benediction.** जीवित रहने मिलता है न ! यह कितना बड़ा भाग्य है, आशीर्वाद है ! अर्थात् इस यज्ञ द्वारा इसके फल स्वरूप हमें कोई विशिष्ट तथा विवक्षित (अभिप्रेत, अपेक्षित, अभिलषित) चीज़ ही वापस मिलनी चाहिए, - इसकी स्मृति भी नहीं रहती, इतना उस जीने के कर्म में आनन्द होता है ! आप आयोजन करेंगे, विचार कर के समझकर, ज़िम्मेदारी से कर्म करेंगे, यह सत्य है; पर यह करते हुए जब जीने का प्रारंभ किया, तो उस जीने के कर्म का ही इतना बड़ा आनंद रहता है, परमानन्द रहता है कि उसकी मारफ़त अब क्या प्राप्त होनेवाला है, इसकी ओर मन मुड़ता ही नहीं ।

"कर्मण्येवाऽधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥"

तुझे कर्म करने का अधिकार है, ऐसा कहने पर वह अधिकार याने कोई संकट नहीं होता, Ordeal - (कड़ी कसौटी या अग्निपरीक्षा) नहीं होता ! तेरी योग्यता है कर्म करने की ! तुझे ऐसा शरीर प्राप्त हुआ है, तुझे संवेदनशीलता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिली हुई है कि तू स्वायत्त कर्म कर सकता है। क्रिया व प्रतिक्रिया में पशुयोनि गिरी हुई है, किन्तु तू मानव बना है! 'दुर्लभं मनुष्यत्वम्।' - यह तुझे प्राप्त हुआ है! हम भोजन करने बैठते हैं, यह भी यज्ञकर्म!

"ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं, ब्रह्मकर्मसमाधिना॥"

अब देखो, भोजन करने के कर्म को भी 'यज्ञकर्म' कहा गया है। स्नान कर रहे हैं, तो सप्त नदियों के जल - 'गंगे च यमुने चैव, सरस्वती...' - सभी नदियों के नाम लिये जाते हैं। इन 'समस्त नदियों का जल एकत्रित हुआ है और प्रक्षालन हो रहा है। पूजा करने बैठें, तो अपने ही देह को प्रथम चंदन लगाते हैं। आसन-शुद्धि, देह-शुद्धि करते हैं; फिर प्रभु की पूजा! प्रत्येक कर्म को इतना महत्त्व है हमारे यहाँ! हर एक गति को, हलन-चलन को श्रेष्ठता दी गई है! कुछ कहना हो, तो शब्दों का चयन कैसे करें, उच्चारण कैसे करें, यह वाग्यज्ञ! 'येणे वाग्यज्ञें तोषावें।' 'आता विश्वात्मके देवें येणें वाग्यज्ञें तोषावें!' बोलना - यह भी यज्ञ। भोजन करना - यह भी यज्ञ। पति-पत्नी का संबंध और संतान को जन्म देना - यह भी यज्ञ! चरमसीमा है रसिकता की! The Divinity of sex and sex-relationship!

किन्तु, यह सब अब विस्मृत हो गया है। गहने गये, गहनों के नाम शेष हैं; वैसे समूचे संस्कार गये, संस्कारों के नाम शेष रहे और वे भी विकृत अवस्था में! अतः मैं जो कुछ कह रही हूँ, संभव है, आश्चर्य लगेगा, किन्तु यह समस्त जीवन जीना यह भी यज्ञकर्म है और जो ऐसा आत्मोसर्ग करता है, इस विश्वात्मक भगवान के सम्मुख, यह जो संबंधों की वेदी है, उस पर जो कोई अपने सत्त्व की आहुति देते जाता है, उसका जीवन अति समृद्ध होता है; क्योंकि जिस प्रकार आप भूमि में 'कण' डालते हैं और आपको 'मनों' देती है पृथ्वी, उसी प्रकार यह जो वैश्विक प्रज्ञा है, यह विश्वात्मक देवतत्त्व जो है, वह अमाप कुछ दे जाता है। आप आत्मोत्सर्ग कितना करोगे ? आपके पास जितना होगा उतना ही न! पर आपको जो लौटकर मिलता है इस विश्वात्मक सत्ता से, वह अपरंपार व असीम रहता है! आप प्रत्यक्ष हवन करो या न करो! आज के संदर्भ में आपको हवन करने की, यज्ञ करने की शक्ति है या नहीं है, उस ओर मुझे जाना नहीं है। आपको अनुकूलता हों, तो हवन करो, घर में बैठे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हमारे अक्कलकोट के एक श्रीवसंत परांजपे हैं और उन्होंने यह हवन करने का, होम करने का जो शास्त्र है, वह पूरे युरोप-अमेरिका को सिखाया है। मेरी-उनकी भेंट नहीं हुई है, पर मैं जब चिली और अर्जेन्टिना जाती हूँ, उस समय उनकी भक्त-मण्डली दिख पड़ती है। प्रथमतः जब मैं गई, तो वहाँ सूती कपड़ों में लोग आये थे - कोई पंद्रह-बीस; पाँच-सात महिलायें थीं, दस-पाँच पुरुष थे। उन्होंने सब हवन की सिद्धता की थी। मुझसे उन्होंने कहा कि - आपका स्वागत हम हवन द्वारा करनेवाले हैं। और ऐसे सुन्दर शुद्ध मंत्र बोल रहे थे !.... 'अग्नये इदं न मम।' ऐसा कहते थे ! सारे मंत्र ! पोलॅण्ड गई, वहाँ भी उनकी भक्त-मण्डली थी। अमेरिका में वो हैं ही। कई देशों में हैं। तो, उन्होंने इस हवन का जो भी महत्त्व है, उसके द्वारा होनेवाले पर्यावरण के जो परिणाम हैं, उसका एक बड़ा शास्त्र विकसित किया है और वे उसके बारे में कहते रहते हैं।

तो, ये शास्त्र हमारे यहाँ अनेक हैं; अतः आपमेंसे किसीको हवन करना हो, और वैसी संपन्नता हो तथा शास्त्रोक्त यज्ञ-कर्म भी करना हो, तो वह कोई बड़ा समाज-विरोधी कर्म है, ऐसा मैं नहीं मानती।

मानव की दिव्यता प्रकट हो

किन्तु मेरा ध्यान कहाँ है ? मेरा लक्ष है - **The Divinity in man should manifest itself - Education is 'Helping the child to manifest the divinity of its Being !'** इस विश्व में समाया हुआ जो दिव्यता का रस है, उसे चखना आदमी जान ले और खुद उसमें (मानव में) जो दिव्यता है, उसे संबंधों में प्रकट करना उसे आ जाएँ; इसके सिवा हमारे चित्त में अन्य कुछ आता नहीं। हम आपके नाम-स्मरण को, पूजा को, अर्चना को, यज्ञ -यागों को कोई महत्त्व नहीं देते या व्यर्थ कहते हैं, ऐसी बात नहीं है, जी ! पर यह सब किया गया है इस देश में और ऐसा होने पर भी इन समस्त क्रिया-कलापों ने - उनका जीवन से अनुबंध न रहने के कारण - आज समाज का बहुत ह्रास किया है। आपके मन में जिस समय धन का, पैसों का लोभ आता है, कीर्ति की इच्छा उठती है, लोकेषणा, वित्तेषणा, कामेष्णा जागृत होती है, उस समय क्यों वेदोपदेश स्मरण नहीं होता है ? मानवोचित ऐसा योग्य व्यवहार कैसे करना चाहिए, यह तब क्यों स्मरण होता नहीं ? **Unearned income** प्राप्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होती हो, तो नाम-स्मरण नहीं, जप नहीं, कुछ स्मरण नहीं होता है हमको। 'अजी, पर यह व्यवहार है, इसमें व्यवहार जैसा ही करना पड़ता है!' - ऐसा कहते हैं ऊपर से! क्या धर्म और भक्ति सिर्फ़ मंदिरों में बैठने और पूजागृह में आसन लगाने का, दो घंटों का खेल है? एक additional acquisition - अतिरिक्त संग्रहण है? Psychological (acquisition)? मानव के सत्त्व में परिवर्तन होना चाहिए। उसमें जो दिव्यता है, **concealed and contained, the immense potential, the immensity of the potential is the Divinity** - यह प्रकट होनी चाहिए। वेदों का नाम लें, उपनिषदों का लें, ज्ञानदेव-माउली का लें, नाथ का लें, सन्तों का नाम लें और हम हैं कैसे? हमारे जीवन की यह दरिद्रता किस कारण? अभी मैं आंतरिक दारिद्र्य की बात कर रही हूँ। यह आंतरिक दारिद्र्य क्यों? कैसे? यह पाखंड इस देश में कैसा? यह भीरूता कैसी? यह सज्जनों की निष्क्रियता और असहायता कैसी?

"तेव्हा कोठें गेला होता राधासुता तुझा धर्म?"
"तेव्हा कोठे जातो भारतसुता तुझा धर्म?"

- (कवि मोरो पंत)

तब कहाँ जाता है, हे भारतसुत! तेरा धर्म? हमें मानवता अपेक्षित है इस देश में! 'मानव' खड़ा होना चाहिए। **Man-making mission and character building mission** - नहीं तो, भजन में हमारा भी मन तन्मय होता है, जी! नाम-स्मरण में, भजनों में हमें पूर्ण परमानंद है; किन्तु छत्रपति शिवराय जिस समय समर्थजी के पास पहुँचे और कहने लगे कि अब यह राज्य आपको भिक्षा में देता हूँ। मुझे भी आपके साथ रहना है, या तुकाराम के सांन्निध्य में जाने पर शिवाजी महाराज को ऐसा लगा कि यहीं पर रहें और भक्ति करें! - तो, समर्थ ने कहा कि - नहीं, तूने मेरी झोली में ड़ाल दिया है राज्य, तो, मेरी झोली का यह जो रंग है - भगवा रंग, केसरिया रंग - उसका तू ध्वज कर; किन्तु तू लौट जा। तेरी भक्ति, तेरा अध्यात्म वहाँ प्रकट होने दे!

मित्रों! मानवीय-चेतना में गुणात्मक परिवर्तन तथा मानवीय-संबंधों में आज के आधार जो हैं, उनमें परिवर्तन यह यदि आपके अध्यात्म को, भक्ति को - ज्ञान-योग, भक्ति-योग, कर्म-योग - इसे जो कुछ कहना हो - यह यदि साध्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न हुआ न, तो यह समूचा अध्यात्म इतिहास के पिटारे में जमा पड़ा रहेगा। It's going to be all irrelevant. आत्मबल प्रकट होना चाहिए; क्योंकि जिन शक्तियों से टक्कर लेनी है, उन शक्तियों से सामना करने के लिए दूसरी शक्ति ही होनी चाहिए सामने। 'मो सम कोन कुटिल 'खल' कामी !' ऐसा कहकर दीन-हीन, 'हमें कुछ मालूम नहीं होता,' (हम तुच्छ हैं) - ऐसा कहकर भक्ति के नाम पर, धर्म के नाम पर, शरणागति के नाम से, हीनता व दीनता स्वीकारते हुए पलायनवादी, पराक्रम-पराङ्मुख, ऐसी जनता नहीं चाहिए। अभी यहाँ हम सब बैठे हैं; तो 'विट्ठल ! विट्ठल !' करो न भजन ! देखो न, सभी को कितना आनन्द होता है, सुख प्राप्त होता है। वह न लें, न करें - ऐसा मेरा कहना नहीं, पर उसके द्वारा वह निष्पन्न हो, जो विचार शक्ति से धटित हुआ नहीं; धनशक्ति से बन पड़ा नहीं, शस्त्रशक्ति द्वारा घटित नहीं हुआ, Capitalism, Socialism, Communism को साध्य नहीं हुआ, शस्त्रवाद से सफल नहीं हुआ, विज्ञानवाद से सधा नहीं - और इसलिए हमें अध्यात्म की ओर मुड़ना चाहिए और हममें सुप्त रहनेवाले आत्मबल को जागृत करना चाहिए ! अतएव हम Maditation की बात आपके सामने प्रस्तुत करते रहते हैं। Meditation के संबंध में, ध्यान के संबंध में, समाधि के संबंध में, दो-तीन प्रश्न हैं, वे हम कल प्रातः ले लेंगे।

शब्दों की बाधा न हो

कुछ शब्दों की जानकारी हुई तो वह शब्दों का परिचय हममें ऐसा भ्रम निर्माण करता है, मानो उस वस्तु को ही हमने जान लिया। मस्तिष्क में रहते हैं, केवल शब्द ! चित्त में उठती है उसकी "खुमारी" उसका नशा ! पर जीवन में उनका तत्त्व उतर आता नहीं; अतएव इस शब्द-ज्ञान के परे जाने के लिए शब्दों द्वारा संकेत की हुई वस्तु या जो तत्त्व होता है, उसका साक्षात्कार कर लेना चाहिए। 'मन याने क्या ?' इस बात पर हज़ार ग्रंथ पढ़ लिये, dozens of books on psychology and all the schools of psychology - पढ़ लिये, किन्तु प्रत्यक्ष में अपने मन की कैसी हलचल होती है, यह यदि न देखी गई, तो ? What is the mental movement ? What is mind ? What does it bring up ? यह समस्त यदि नहीं देखा गया, तो ? उन शब्दों ने दी हुई जानकारी, उसका उपयोग कर लेकर उन शब्दों को बंधन न बनने देना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो, तो एक कदम आगे रखना चाहिए। शब्द-संग्रह में न उलझते हुए निर्दिष्ट तत्त्व की ओर कदम बढ़ाना चाहिए। इसीलिए बैठना, मन में क्या चल रहा है, देखना! जिससे फिर उस वस्तु का या तत्त्व का, वस्तुस्थिति का साक्षात्कार होता है। प्रत्यक्ष encounter - मुक़ाबला, personal intimate encounter! समीप से देखते हैं उसे। उस यथार्थता के और आपके बीच में अब शब्द नहीं रहे, वर्णन नहीं खड़े रहे, किसी आद्य कवि के भी! वेदों के, उपनिषदों के (शब्द या वर्णन) भी बीच में खड़े नहीं। बाइबिल के, कुरान के नहीं या रमण, रामकृष्ण, कृष्णप्रेम, कृष्णमूर्ति के नहीं। किसीके भी शब्द बीच में स्थित नहीं हैं। केवल आप हैं और वह जीवन है, वह तत्त्व है, वह वस्तु है! इस साक्षात्कार की घटना के बिना, इस encounter की घटना के बिना बोध जागृत नहीं होता।

आत्मबोध और तत्काल आचरण

ज्ञान का परिणमन उपलब्धि में हों, इसलिए दो ही उपाय दिखते हैं। एक तो, उस (शब्द) ज्ञान से निर्दिष्ट किये गये तत्त्व का साक्षात्कार और दूसरा, उस शब्द-ज्ञान द्वारा on the verbal level जो कुछ हमें ज्ञात हुआ - Intellectual understanding at the level of verbalisation - जो कुछ समझ में आया, उसका तत्क्षण ही आचरण! बाज़ार से चावल खरीदने पर साफ कर के वैसे ही खाए नहीं जाते! उन्हें पकाना पड़ता है, पानी रखना पड़ता है, पानी को उबालना पड़ता है, उसमें चावल डालने पड़ते हैं, उसका प्रमाण मालूम होना है; तभी वे पके हुए चावल खाये जा सकते हैं। सिद्ध किये हुए चावल हम खा सकते हैं; क्योंकि उनमें भरा हुआ रस सिद्ध होता है। उसी प्रकार शब्द में जो अर्थ है, जो रस है, वह शब्द व आपको प्राप्त ज्ञान, इसको आप यदि आचरण में लाने लगें, तो उस शब्द में छिपा हुआ जो रस रहता है, वह प्रकट हो जाता है। ज्ञान में समाया हुआ रस आचरण के बिना प्रकट नहीं होता। वह शब्दों में बंदी रहता है। वह आपकी दृष्टि में उतरे, आपके चित्त में उतरे, आपकी वाणी में आकर रहे, आपके व्यवहार में झरने लगे, इसके लिए उसे जीना पड़ता है, नहीं तो आध्यात्मिक शब्दज्ञान के पीछे जाना नहीं चाहिए और यदि गये हैं, तो इस पथ्य का पालन करना पड़ता है कि केवल शाब्दिक स्तर पर भी, जो ज्ञात हुआ होगा तथा जितना ज्ञात हुआ, उसका आचरण करना चाहिए;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फिर हमें ठोकर लगी तो ? ठोकर लगे तो भी, वह जीवनसत्ता, जीवन -विभु, जीवनप्रभु संभाल लेगा हमें ! जो ज्ञान का प्रेमी बन गया, सत्य का प्रेमी बन गया, वह तो भगवन्त का प्रेमपात्र बन गया, माशुका हो गया !

'आम्हा भक्तांचें व्यसन ! अर्जुना',
'आम्हा भक्तांचें व्यसन ।
भक्त आमुचें निजध्यान ।
ते कान्ता मी वल्लभ जाण ।' -
- यदुनाथ ॥

'आम्हा भक्तांचे व्यसन !' हमें भक्तों का व्यसन है ! हे अर्जुन, हमें भक्तों का ध्यान है, वे कान्ता है और हमें उनका वल्लभ समझ । you get charged with enquiry and your getting charged with enquiry is the Love - God, for the Life Divine to rush towards you and help you. - यह ऐसा ही होते आया है । ऐसा ही होता हुआ देखा भी है तथा अनुभव भी किया है । तो, ज्ञान के उस पार जाने की आप मुझे बात पूछते हैं । ज्ञान के उस पार जाने के दो ही मार्ग हैं । एक, जिस स्तर पर ज्ञान हुआ, उस स्तर से प्राप्त हुआ ज्ञान यह बुद्धि व स्मृति के बन्धन में - बंदीगृह में न रखें, उसको क्रियान्वित करें । The living of the verbal understanding may result in the non-verbal communion with Reality. किन्तु, हमें पूर्णतया वह ज्ञान प्राप्त हुआ नहीं; फिर, अब हम क्या करें ? हमें केवल Verbal Understanding - (शाब्दिक ज्ञान) ही हुआ है । हमें केवल Intellectual ही हुआ है, ऐसा मानकर मनुष्य खुद के बचाव की ओर जाता है । वह - पूर्ण Transformation होगा, तब उस समय देखा जायेगा - ऐसा कहता है ।

तो, शब्दनिर्दिष्ट वस्तु के, तत्त्व के, साक्षात्कार के लिए अपने जीवन में प्रयोग और उसका पुरुषार्थ; जो कुछ मालूम हुआ है, वह जीने का पुरुषार्थ, दोनों यदि करें, तो फिर उसका ज्ञान वह 'रससिद्ध बोध' बनता है, जैसा चावल का भात बनता हैं, महाप्रसाद बनता है । रसोई में रससिद्धि ही करते हैं न ! रसोईगृह में दूसरा क्या करना होता है, जी ? और फिर उन रसों का संवाद साधते हैं । उनका सम्मिलन करते हैं । रसोई बनाना और कोई भी संगीत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

-शास्त्रीय गायन, इनमें कोई खास अंतर है ही नहीं । अप्रकट रसों को प्रकट करना है । जिस प्रकार स्वरों में छिपे हुए भाव रहते हैं, राग-रागिनियों के स्वभाव रहते हैं और उनमें रस भरे हुए रहते हैं - प्रणय रस है - शृङ्गार रस है, करुण है, बीभत्स है, रौद्र है ! स्वरों की सहायता से वे प्रकट किये जाते हैं और यहाँ भी रस ही प्रकट करना रहता है । तो, 'बोध' याने ज्ञान का सिद्ध बना हुआ रस; अतः आत्मज्ञान पर संतुष्ट न रहकर आत्मबोध की ओर मुड़ना पड़ता है ।

इन समस्त चर्चाओं से आप थक नहीं जाते, ऊब नहीं जाते, इसका मुझे आश्चर्य लगता है । गंभीर प्रश्न पूछते हो, मुझे गंभीर उत्तर देने पड़ते हैं, प्रातःकाल में भी और दोपहर में भी ! मैं ऊब जाती हूँ - ऐसा इसका अर्थ कृपया न निकालें । But it's quite an ordeal ! Very hard work ! Very hard work ! यदि आप कहते समय और सुनते समय इन शब्दों की सहायता से वह अर्थ देख सकते हों, तो - It's an act of listening for you and me both, because I listen to the talk as you do. If the act of listening implies two things - listening to the words and conceiving simulteniously the meaning indicated by the words, what is happening inside ourselves ? क्योंकि हम आद्य शंकर, रमण, विवेकानंद – से आरंभ कर के इस अज्ञान, ज्ञान और बोध तक पहुँचे, कर्म ईश्वरार्पण कैसे हों, इस प्रश्न की ओर मुड़े । सरल दिखते हैं, किन्तु ये प्रश्न अति गंभीर हैं, यदि केवल कौतूहल से आपने पूछा न हों ! या मेरी परीक्षा लेने पूछा न हों, तो !

"भक्ति बच्चों का खेल नहीं, इसके लिए चाहिए साहस । लोग मानते हैं, ज्ञान-ध्यान-तप के लिए साधनबल एवं श्रम चाहिए, भक्ति और प्यार तो यों ही मुफ़्त में हो सकता है । वह भ्रम है । समर्पण एवं प्रेम की शूरता-साहस एवं उत्कटता न हो, तो भजन-पूजन-यजन-ध्यान आदि मेंसे केवल सदाचार होगा, मनोरंजन, भावरंजन, सत्त्वगुण – का विकास होगा । अन्त में जाना है निस्त्रैगुण्यदशा में । तमस्, रजस् को तो लाँधना ही है, सत्त्वगुण के सुनहले रेशमी सुखकर पाश को भी छोड़कर आगे बढ़ना है । वह होता नहीं, यदि सत्त्वगुण के शुभ भावों में ही समाधान, सन्तोष, सान्त्वना प्रतीत होती रहे । एकाध नरसीं-सूर-तुलसी-दादू-मीरा शक्ति-पथ पर बढ़ते हैं ।" ["श्रीमद् भगवद्गीता-भावार्थ-दीपिका-नवम अध्याय"-मेंसे]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन अष्टम

जे. कृष्णमूर्ति और परिवर्तन

हमने एक नया प्रयोग किया। वह प्रयोग यह था कि मेरे स्वतंत्र प्रवचन करने के बजाय जो शिबिरार्थी आते हैं, उनकी अगर कुछ जिज्ञासा हो, उनके अगर कोई प्रश्न हों, तो उन प्रश्नों के अनुषंग से मैं कुछ कहूँ। लगभग चालीस प्रश्न मुझे दिये गये थे। उन प्रश्नों के साथ कई उपप्रश्न भी थे। पिछली सात सभाओं में लगभग इक्कीस प्रश्नों को लिया गया और पाँच सभाएँ बाकी हैं, उनमें बीसेक प्रश्न लेने हैं और आप सबके सहकार्य द्वारा हम वे ले सकेंगे, ऐसा मैं मानती हूँ। आज के सत्र में जो प्रश्न लेना है, वह गंभीर तो है; पर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि उसमें अँग्रेजी भाषा का, शब्दों का उपयोग मुझे कुछ अधिक करना पड़ेगा। तो, जिन्हें अँग्रेजी भाषा समझने में कठिनाई होती हो, उनसे प्रथमतः मैं क्षमा माँगती हूँ।

प्रश्न करनेवाले ने ऐसा लिख दिया है कि - गत बीस वर्षों से मैं जे. कृष्णमूर्ति के ग्रंथों का मनःपूर्वक अभ्यास कर रहा हूँ। घोलकर पिया हूँ उनके ग्रंथों को ! उनके प्रवचन सुन चुका हूँ। मुझे यदि कोई पूछे, तो मैं कृष्णमूर्तिजी का क्या कहना है, वह पूरा का पूरा सुना सकता हूँ। उनसे मैं मिल चुका हूँ और उनसे मेरी मुलाकात भी हो चुकी है और उस समय मैंने उनसे यह भी कहा था कि आपका कहना मैं पूरा का पूरा सुना सकता हूँ और आप जो कहना चाहते हैं, वह मैं औरों को समझा भी सकता हूँ; पर मेरे जीवन में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। प्रश्नकर्ता ऐसा लिखते हैं कि - कृष्णमूर्तिजी ने मेरी पीठ पर थपकी लगाई और हँसते-हँसते बोले कि - It will be happen. Do not make it a problem. परंतु इस घटना को भी आठ वर्ष हुए, किन्तु अभी तक तो मैं वैसा-का वैसा हूँ। हताश हुआ हूँ, निराश हुआ हूँ।

सरल प्रामाणिकता हो

उत्तर : प्रश्न पढ़ने पर मुझे बड़ा समाधान हुआ कि इतनी सरल प्रामाणिकता तथा नैतिक साहस इस व्यक्ति में है। मुझे समझ में आया है ऐसा बताने में, ऐसा एक आडंबर करने में लोगों को गौरव लगता है और यह मेरे जीवन में बन नहीं पाया - ऐसी प्रश्न के रूप में स्वीकृति प्रकट ढंग से करना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

- यह व्यक्ति यदि सत्यार्थी न हो, तो संभव नहीं। तो प्रथमतः मैं प्रश्नकर्ता का मनःपूर्वक अभिनन्दन करती हूँ कि खुद के जीवन का, मनःस्थिति का, जिसे objective perception कहते हैं, वस्तुगत दर्शन-तटस्थ आकलन कहते हैं, वह उन्हें करने आता है तथा यह घटित नहीं हुआ अपने जीवन में, यह संवेदना उनके मन में है, यह भी उनका बड़ा भाग्य है। याने दंभ और पाखंड से वे बाल -बाल बच गये हैं, इस जीवन में ! - यह ईश्वर का-भगवान का बहुत बड़ा अनुग्रह है और इस प्रश्न पर हम इस सत्र में विचार करनेवाले हैं।

हमारे यहाँ पुराने अभंगो में और भजनों में ऐसा अभंग आता है कि -

पंढरीच्या वाटे जाऊ नका कोणी.
भेटेल महाभूत तेथे.

पंढरी के रास्ते जाना नहीं रे बाबा ! ऐसा वहाँ एक बड़ा पिशाच मिलता है कि एक बार उसने पकड़ लिया तो जन्मोजन्म में उतरता नहीं। उसका नाम है काव्या ! उसका नाम है विट्ठल ! इन जे. कृष्णमूर्ति के रास्ते भी कोई न जाये। एक बार उनकी वांणी ने डस लिया आपकी चेतना को, तो आप लाख प्रयत्न करें - तो भी वह आपकी बुद्धि को, उस वाणी का, उस सत्य का जो दंश है, वह उतार नहीं पाओगे; अतः उस रास्ते कोई जाये नहीं यही ठीक है और गये तो - You cannot be the same after you have stumbled across him - क्योंकि इस संसार में बिलकुल अलग ऐसे व्यक्ति थे ! बिलकुल अलग से योगी थे वे ! जन्म पाया भारत में किसी ग़रीब परिवार में। दस-ग्यारह वर्ष की आयु नहीं हुई तभी कहाँ से कहाँ फेंके गये, - Theosophical Society - में। उन्होंने उन्हें उठाकर देश के बाहर रखा, इंग्लॅण्ड में, फ्रान्स में, इटली में। तब तक अलग संस्कृति different culture was grafted on his phsyche. मूल में यहाँ के रक्त में जो सना हुआ, जो आनुवंशिक था, वह कहीं नष्ट नहीं हो सका, किन्तु उस पर यह जो पश्चिमी संस्कृति, विज्ञान-मूलक, विज्ञान-निष्ठ, बुद्धि-निष्ठ है, वह graft हुई; जिससे व्यक्ति कुछ निराला ही बन गया ! उसे कोई भी परंपरा स्पर्श नहीं कर पायी। Theosophy की परंपरा भी दूषित नहीं कर सकी - ऐसा कुछ एक निराला, विलक्षण व्यक्तित्व और चेतना की दशा उस व्यक्ति में रहे। उनसे मेरा थोड़ा-सा संबंध आया। उनकी संस्था से और संघटन से संपर्क नहीं आया, ज़रा भी नहीं; किन्तु उनसे केवल १९५६ के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिसम्बर से १९७१ तक बीच-बीच में मुलाकात, बातचीत होती रही अतः नज़दीक से देखा है, इसलिए कह सकती हूँ कि व्यक्ति बड़े अलग-से थे।

कृष्णमूर्तिजी का एकमेव संदेश

पहली बात जो उन्हें अभिप्रेत थी, जो हॉलॅण्ड के ओमेन नामकी जगह पर एक विशाल परिषद् में उन्होंने कही, वह यह थी कि - I would like to set men unconditionally free ! - मुझे अन्य कुछ नहीं चाहिए। बस, यह मानव जो है, वह मुक्त हों। निरुपाधिक मुक्ति रहे उसकी। मुक्ति सशर्त नहीं, बिना शर्त रहे। उस मुक्ति को मैंने अनुभव किया है। उसका रस मैंने चखा है। वह दूसरों को भी चखने को मिले, इसी हेतु से मेरा कहना, इसलिए मेरा भ्रमण करना, इस हेतु ही मेरा जीना है। तो, यह मानव-जाति मुक्त हो, आंतरिक दृष्टि से चैतसिक मुक्ति उसे अपलब्ध हों, इसके अतिरिक्त उन्हें कुछ नहीं चाहिए था। तब ऐसे व्यक्ति के समीप जाने से पहले हमें सोच लेना चाहिए कि यह जो निरुपाधिक मुक्ति है, वह हमें अपेक्षित है क्या ! "I have seen the 'Beloved'. And I and the beloved are one." १९२५-२६ के वर्ष की एक कविता में कृष्णमूर्तिजी ने लिखा है कि- अब मैं किसीका नहीं हूँ। वह जो मेरा जीवनसखा है, उसका मैं हूँ और वह मेरा है। और मृत्यु के पहले भी, जिस दिन मृत्यु आनेवाली थी, उस दिन उन्होंने क्या कहा ?

"I belong to no religion. I belong to no race, no nation, Cremate the body in a simple way without any rituals. It would be a piece of wood when I am gone. No speeches, nothing of that nonsense." जो १९३० में उन्होंने कही थी, वही बात मृत्युपूर्व दो घंटे उन्होंने कही - "I belong to no nation. I belong to no race, no religion. I am a common person, a simple human being." आपने यह पढ़ा होगा।

यह संदर्भ मुझे इसलिए सुनाना पड़ रहा है कि उन्हें मानव की विशुद्ध, निरुपाधिक मुक्ति और वह जो व्यक्तिगत संस्कारयुक्त चेतना है, उसका वैश्विक चेतना में लीन होना, इसके अतिरिक्त कुछ अभिप्रेत नहीं था - Merging into the supreme intelligence. यह आपको चाहिए क्या ? फिर आप - आंतरिक दृष्टिसे, बाह्य दृष्टि से नहीं, आंतरिक दृष्टि से परिवार के नहीं रहते,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देश के नहीं रहते, धर्म के भी नहीं। आप किसी के भी नहीं रहते। यह 'एकाकीपन' चाहिए क्या ? The flight of the eagle; not only to be alone when you take the flight or you take off from this network of relationship, but to be alone in the movement of death ! - यह चाहिए क्या आपको ?

अधिकारशाही नहीं, प्रामाण्य नहीं

आगे चलेंगे। दूसरा मुद्दा बिलकुल अलग-से इस व्यक्ति का ऐसा था कि यह जो कुछ मुक्ति है, उसके साक्षात्कार या प्रत्यय के लिए no authority - प्रामाण्य नहीं। गत काल का प्रामाण्य नहीं, ग्रँथों का नहीं, व्यक्ति का नहीं, खुद उनका (कृष्णजी का) भी नहीं। 'मुझे' आप प्रामाण्य बनायें नहीं। क्यों इतना करुणा से यह कहा उन्होंने ? १० जनवरी, १९८९ को अड्यार में उनके वसन्त-विहार में उनके समीप जो मण्डली थी, उन्होंने पूछा, 'What is your last message ?' क्या कहा उन्होंने ? - "Sir, Please drop me when I am dead. Do not make a God out of me. I have not allowed a cage to be built around me, while I was alive. Please do not build a cage when I am gone." अपनी सामान्यता को सँभालते -सँभालते मैं जिया हूँ। अब असामान्यता, अद्वितीयता, कोई 'देव', कोई 'भगवान' - ऐसा, मेरे जाने के पश्चात् मुझे मत बनाइये, भाइयों ! 'Drop me. मेरी मूर्तियाँ व संग्रहालय न बनवायें।' यहाँ तक जो व्यक्ति पहुँचा, उसे ग्रंथ-प्रामाण्य नहीं चाहिए, व्यक्ति-प्रामाण्य नहीं चाहिए और हमें जो दुष्कर लगता है, वह बुद्धि प्रामाण्य भी नहीं चाहिए ! बुद्धि के आगे भी कुछ शक्तियाँ हैं, ऊर्जाएँ हैं, The unknown, the unnamable, the unconditioned, the other - वह है, और उसके बिना जीवन नीरस है, निरर्थक है।

क्या हमें इस प्रामाण्य से मुक्ति चाहिए ? या फिर, कृष्णमूर्तिजी को ही हमने प्रामाण्य बनाया है ? अन्य समस्त प्रामाण्यों को हमने फैंक दिया है और कृष्णमूर्तिजी का - एक उन्हीं खुद ही का व्यक्ति-प्रामाण्य तथा उनकी वाणी का प्रामाण्य - इनसे तो हम बँधे नहीं गये न ? यह देखना चाहिए। और यदि यह हमने किया है, तो फिर 'Not knowing how to punish great men for their greatness, fate punishes them with their disciples

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

and followers. They will deny him, in the name of devotion and dedication and Loyalty. We will be denying the essence of his communications, the essence of the light that he was, the light that shone before us in the human form. क्या हम यह करना चाहते हैं ? शब्दों की सुनें; शब्दों का जो गर्भित अर्थ उन शब्दों के साथ हमारी ओर दोड़ते आया, - जिस अर्थ के पीछे समस्त जीवन का तप था, - वह ग्रहण करें, यह धारण करें। यह अगर मुद्दा पूरा हुआ हो, तो मेरे संग आगे चलें।

Authority नहीं चाहिए, अन्य व्यक्तियों की भी नहीं, उनके ग्रंथों की भी नहीं, इतना ही नहीं तो - आपके खुद के मन और बुद्धि की भी authority (प्रामाण्य) नहीं चाहिए। 'Neither of your thought structure and nor your experience of one yesterday or thousand yesterdays'.. ! क्यों नहीं चाहिए ? इसलिए कि जिसे आप 'मन' कहते हो, "That is nothing but the product of collective contionings. What you call 'your own mind' is nothing but the 'Total human past', condensed in your body !" और इसके भी आगे जानेपर – जो हमें बिलकुल प्रिय नहीं लगती, पचती नहीं, वह बात – वे कह गये कि There is noting like an individual mind. वह भ्रम ही है। The 'I' - The 'Ego' has no factual content. It has a conceptual content. उसका अस्तित्व भावनात्मक है। मनुष्य के मन के बाहर, कल्पना के बाहर, शब्द के बाहर, उस 'I' - उस 'Ego' का - उस "मैं-पन" का कोई अस्तित्व नहीं, कोई उपादान ही नहीं दूसरा ! वह भाषा के उपादान से, संकेतों और संज्ञाओं के उपादान से; कल्पना, विचार, भावना - इनके उपादान से बना हुआ है, इसलिए उसे नष्ट भी नहीं कर पाते।

आप आकाश पर प्रहार करोगे, तो वह किसे चुभनेवाला है ? वहाँ प्रहार करने जैसा है ही क्या ? अतः उस अहंकार पर यदि प्रहार करने जाओगे, तो कुछ साध्य होनावाला नहीं है। अपने अनुभवों की, ज्ञान की निष्ठा हम पकड़ के रखते हैं। अनुभव और ज्ञान ज़रा भी हमसे दूर रहा, तो दिन भर चाहतें, ज़रूरते - इनकीं गर्जनाएँ होतीं रहतीं हैं। 'यह मेरा', 'वह तेरा' - यह जो भाव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, वह निरंतर धधकता रहता है। तो, चाह-अनचाह, प्रिय-अप्रिय, प्रतिक्रिया, गर्जना - यह सब धुआँना-कुढ़न चलते ही रहते हैं, हमारे आंतर आकाश में! वह छूटती नहीं। तो, क्या विचार, ज्ञान, अनुभव - इन्हें दूर ढकेल देना, फेंक देना चाहिए ? - अरे! ढकेल देनी है उनकी Authority! उनका प्रामाण्य! देह को तो फेंक नहीं दे सकते; वैसे ही देह के भीतर रहा हुआ भी कुछ फेंक नहीं दे सकते। वह कोई वस्तु या पदार्थ नहीं, कि उठाकर आप खिड़की के बाहर फेंक दें। मिथ्या का मिथ्यात्व समझना यही उसे 'फेंक देना' है। जानने व समझ ने पर भी यदि तुम मिथ्या से चिपक कर बैठोगे, तो वह तुम्हारा मनोनिर्मित बन्धन है, प्रिय बन्धन है, स्नेह का लाड़ला है वह! आप उसे रखना चाहते हैं, अतः वह आपके हाथ में है। बन्धन मनुष्य पूर्ण जान-बूझकर चाव से पकड़ के रखता है, उनको संभालता है, उनको पालता है, पोसता है; फिर वेदों ने, उपनिषदों ने, भागवतों ने, रामायण ने, धम्मपद, कुरान-ए-शरीफ ने - हज़ारों बातें कहीं हों, तो भी वे समस्त अलग रखेगा!

फिर, कहाँ से साधना प्रारंभ करेंगे आप ? You begin from the state of non-knowing. मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं, मुझे कुछ समझ में नहीं आता, मैं कुछ नहीं जानता। The state of pure innocency. The urge to learn and discover for your self the content of Truth and Reality. जान-बूझकर, विचारपूर्वक समस्त आधार छोड़ देना। वे आधार झुठे हैं या उन्होंने मानव-समाज को कुछ भी नहीं दिया - ऐसा भी नहीं; किन्तु छोड़ देना है, क्योंकि आपको शोधन करना है न!

'अध्यात्म' यह 'प्राप्ति' का विषय नहीं

इसके पश्चात् हम चौथे मुद्दे की ओर आते हैं। अध्यात्म यह विषय जिज्ञासा का है, प्राप्त करने का नहीं। The aquisitive movement of your brain or your mind may take you to the pre-destined goal, discribed by scriptures, but that cannot be **your discovery**. जो ग्रंथों में लिखा हुआ है और जो जीवन की दिव्यता है Ever Dynamic, जिसका Location कहीं नहीं! - हिमालय Located है। आप उत्तर की ओर जाओ। उसे दिशा भी है। उसका एक निश्चित्त, स्थिर - ऐसा Location है। 'स्थैर्ये च हिमवानिव।' भगवत् सत्ता याने ऐसी कुछ हिमालय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैसी है क्या, एक स्थान में रखी हुई, कि जिसकी ओर, जिसके पास जाना हो सकेगा ? और इसलिए जाने की एक दिशा निश्चित होगी ? Does the present exclude the other ? Is the Divinity, the Eternity, the Infinity of life outside the present moment ? यह प्रश्न उन्होंने हमारे सामने अर्थात् मानव-समाज के सम्मुख रखा है।

समस्त आधार छोड़ दो

इस विश्व के बाहर अभी जो क्षण आपके सामने है, 'क्षण' होने का अवगुंठन लेकर, जिसे, 'आज' कह सकेंगे – ऐसा वर्तमान का प्रावरण, आवरण लपेटकर, वह जो शाश्वती-अमरता, वह जो असीमता, अनन्तता आपके सम्मुख स्थित है, उसे यदि निहारना हो तो, वह अवगुंठन यदि दूर करना हो, तो फिर समस्त आधारों का त्याग करना पड़ता है।

" निर्बल के बल राम !
अप बल, तप बल और बाहु-बल; चौथा है बल दाम;
सूर-किशोर-कृपा से हारे को हरि-नाम !
निर्बल के बल राम ! "

सूरदास ने अपनी भाषा में कहा कि अपबल, तपबल, दामबल - सारे छोड़ने होते हैं, छोड़ने पड़ते है । हमें ये सारे आधार छोड़ देने हैं क्या ? कृष्णमूर्तिजी के शब्दों सहित, उनके अत्यन्त मोहक व्यक्तित्व सहित, उनके भेदक एवं वेधक प्रकाश सहित - सब आधार छोड़ देने हैं क्या ? किसलिए ? तो, हम देख सकें, हमें दिख सके इसलिए । उनके चश्मे से देखना नहीं है । उनके शब्दों ने जो संकेत दिखाये हैं, जो अभिप्राय व्यक्त किया - वे हमें देखने हैं । इसके लिए भीतर एक निर्दोष रिक्तता चाहिए । The emptiness. Are we willing to empty our consciousness of the total past and begin with the emptiness within ? वह हमारा साहस नहीं होता ।

प्रश्न पूछनेवालों ने बड़ा उपकार किया है कि आप सभी इस हृदयविदारक परिस्थिति की ओर देखें । मैं ज़्यादातर कृष्णमूर्तिजी के संबंध में नहीं कहती । मेरे प्रवचनों में मैं कभी, उनका क्या मंतव्य है, वह नहीं सुनाती; क्योंकि He never wanted anyone to interpret what he said. His words were

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

the breath of simplicity, the magnificence and elegance of simplicity. उस पर भाष्य करने की आवश्यकता नहीं; पर प्रश्न ऐसा आया है कि ये (प्रश्नकर्ता) 'बीस वर्ष' कहनेवाले व्यक्ति हैं, किन्तु न्युझीलॅण्ड, ऑस्ट्रेलिया, युरोप-अमेरिका तक – "५०-५०,. ६०-६० वर्ष हमने कृष्णमूर्तिजी को सुना है और कुछ घटित नहीं हुआ" – ऐसा कहनेवाले लोग मिलते हैं । जी बड़ा मचलता है यह सुनकर ! अतएव आज लगा कि चलो; लेते हैं यह प्रश्न । मैं ऐसे प्रश्न आने पर हाथ जोड़कर अलग होती हूँ । कहती नहीं; क्योंकि कृष्णमूर्ति-भक्तों को मेरा कहना अप्रिय लगेगा ।

'कुछ भी मालूम नहीं' से प्रारंभ

तो, ये प्रामाण्य और आधार फेंक देने की तैयारी रहनी चाहिए; फिर - आरंभ कहाँ से करें ? हमें कुछ समझ में नहीं आता, हम कुछ समझते नहीं हैं,. कुछ भी नहीं जानते हैं, - और हर एक, एक क्षण जीते-जीते हमें सावधान रहकर देखना है - जीवन की ओर; और उस देखने के कर्म में जीवन का संस्पर्श हमें होनेवाला है । "The communion between the fact and yourself will cause the understanding, sir !" - कृष्णमूर्तिजी कहते थे । The communion with the fact. आप ऐसे रिक्त होकर, अनावृत होकर, the beautiful nakedness of your consciousness - ऐसा अनावृत होकर आप वर्तमान के रूप में जो जीवन आपके सामने खड़ा है, कभी समस्या का रूप धारण करके, कभी संवाद का सजीला-सुन्दर रूप ग्रहण करके, कभी मिलन के रूप में, कभी विरह बनकर, कभी जन्म बन के, कभी मृत्यु बनकर - यह जो जीवन नाचते-नाचते आपके सम्मुख आता है, उसकी ओर जी भर के देखना है । उस पर हमारे अतीत के अर्थों को लादना नहीं है, हमारे मन की वासना और आकाक्षा थोपनी नहीं है; 'केवल देखना' है । अगर आपको ऐसे निहारना आया, तो फिर वह ईंट पे खड़ा हुआ विट्ठल जो है, वह सगुण भी दिखता नहीं और निर्गुण भी दिखता नहीं व (वैसे ही) सगुण कहोगे तो सगुण भी दिखेगा और निर्गुण कहोगे तो निर्गुण भी दिखेगा । वह दिखता है । उसका 'होनापन' दिखता है । जब वर्तमान की ओर देखने के समस्त आधार छूटे हुए रहते हैं, तब ऐसा ही जीवन का 'होनेपना' दिखता है हमें ! भीतर ज्ञान का भी आधार नहीं, कुछ प्राप्त करने का भी नहीं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'सत्य व मैं' – इनका संयोग

You see, you cannot seek Truth. सत्य प्राप्त करने की चीज़ नहीं है । There is a qualitative difference between the acquisitive (परिग्रही) activity of seeking and innocent movement of learning. दोनों में बहुत अंतर है - वहाँ कुछ 'पाना-प्राप्त करना' है और यहाँ 'सीखना' है, 'देखना' है; इनमें फिर हमें 'क्या प्राप्त होगा ?' – यह प्रश्न ही नहीं आता । सत्य दिखेगा इससे श्रेष्ठ उपलब्धि क्या है ? सत्य का स्वरूप विदित होगा - इससे बड़ी प्राप्ति इस मानव-जन्म में और क्या है ? फिर 'वह सत्य और मैं' - इनके संयोग द्वारा जो निष्पन्न होनेवाला है, वह होने दो न ! उसके लिए हम फ्रेमवर्क्स बनवाकर ले जायेंगे और फिर उस 'सत्य के और मेरे' संयोग से जो जीवन निर्माण होनेवाला है, उसे बिठायेंगे – किसी न किसी चौखट में – रमण महर्षि की, रामकृष्णजी की, महर्षि अरविन्द की, रामतीर्थजी की, बुद्ध की, कॉन्फ्यूशियस् की या कृष्णमूर्तिजी की ! अरे ! फेंक दो भाई, इन सब चौखटों को !

छिपी हुई आकांक्षाएँ

तो, जीना याने निहार ने और समझ ने के लिए वर्तमान से संलग्न रहना और आत्म-जिज्ञासा–ब्रह्म-जिज्ञासा यदि हममें हों, तो भी हम केवल सत्यार्थी एवं आत्मार्थी नहीं रहते । हमारे मन में और बहुत-सी वासनाएँ, अवांतर इच्छा-आकांक्षाएँ दबी हुई रहतीं हैं कि - मुझे सत्य विदित हुआ, तो मैं अमुक करूँगा; फिर लोगों को समझाऊँगा, इसके संबंध में कुछ लिखूँगा, मैं ऐसा करूँगा-वैसा करूँगा आदि, आदि । अरे ! सत्य समझ ने पर तू क्या क्या करनेवाला है, उसका हिसाबकिताब आज ही ?! क्या होना चाहिए, इसका विचार आज ही ? सत्य अथवा परमात्मा क्या तुम्हारा मुनीम है, नौकर है ? - कि तुम्हे जो चाहिए, वही देगा ? The inter-relatedness of the whole cosmic life will then shape your life, your movements. It shall utilise your life energy and forces and your talents and your knowledge. **It shall** shape it. **You cannot** do it. किन्तु, यह, यह 'I' का जो Shaping (आकार देना, स्परूप तय करने की चेष्टा -गतिविधि) है - 'मैं करता हूँ सब कुछ' यह 'I' से 'It' तक यदि गाड़ी गई, तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्या हमें वह चलेगा ? क्या हम उसे insecurity कहेंगे ? हमें कुछ भी ज्ञात नहीं होता कि हमारे जीवन में क्या होनेवाला है, इसे 'असुरक्षा' कहने का प्रघात (चलन) है । उसका भय है क्या आपको ? **Truth is its own security, as love is its own security**. The man-made net-work of securities is completely irrelevent to the dimension of Truth and Reality.

तो, हमे शिकायत रहती है कि - 'हम' जीवन के कर्ता-धर्ता; फिर हमारे जीवन में - भविष्य में क्या होगा ? एक वर्ष के पश्चात् क्या होगा ? यह समूचा हमें आज ही मालूम होना चाहिए; इसलिए अतीत के आधार छोडें तो भी, भविष्य की कल्पना हम नहीं छोड़ते । हमारी भविष्य की वासनाएँ, इच्छाएँ, आकांक्षाएँ छूटती नहीं; अतः हम विशुद्ध सत्यार्थी, आत्मार्थी, ब्रह्मार्थी नहीं बन पाते । इसके साथ और भी कई बातें रहती हैं इधर-उधर, और उनमें 'यह' थोड़ी ज़्यादा प्रबल रहती है, बस-इतना ही ! किसी-किसी की वह भी नहीं रहती । Additional acquisition to the material and intellectual acquisitions - इतना ही 'इस अध्यात्म का' अर्थ रहता है । इस तरह के लोगों का यह वर्ग छोड़ देंगे हम तो भी, अन्य इच्छा-आकांक्षाएँ इस जिज्ञासा के आसपास होतीं ही नहीं ऐसा नहीं । आज आप और मैं सत्य की तीक्ष्ण धार पर चलनेवाले हैं, पैनी धारा पर चलनेवाले हैं, इस तैयारी से मेरे साथ चलिये ! यह सहयात्रा है । क्षुरस्य धारा इव ! तलवार की धारा जैसी ! और सत्य यदि तीक्ष्ण न रहेगा, तो वह असत्य का लोप-लय नहीं कर पायेगा, भेदन नहीं कर पायेगा उसका !

आप कितने भाग्यवान हैं !

आपने कृष्णमूर्तिजी को सुना, तो प्रथम बात मुझे यह लगती है कि करोड़ो-अरबों लोग रहते हैं इस पृथ्वी पर, inhabiting the globe; उनमेंसे कुछ लाख ही होंगे, जिन्हें – जे. कृष्णमूर्तिजी नाम का जो एक पुष्प विकसित हुआ, - the blending of the eastern and western cultures and civilizations - इस तरह का जो विकसित पुष्प ! – उसकी वाणी को सुनने का और उसके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ; और उनमेंसे एक हम हैं, यह बड़े भाग्य की बात है ! हमें यह कृतज्ञता लगती है । उनकी वाणी हमने सुनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

याने श्रोता बनने की प्रेरणा हुई। 'वक्ता वक्ता नव्हे श्रोतेवीण।' यदि किसीका श्रोता बनना सिद्ध नहीं हुआ, तो हमारे शब्द हवा में उड़ जायेंगे। श्रोता हों, तो संवाद होगा, नहीं तो वक्ता कहता रहेगा-बोलता रहेगा और उसके शब्द आकाश में विलीन-विलुप्त हो जायेंगे। वैसे उन शब्दों को आपने लुप्त होने नहीं दिया और श्रोता बने रहे - यह जीवन का दूसरा अनुग्रह है, आप पर! 'कुछ भी बना नहीं' - ऐसा प्रश्नकर्ता लिखते हैं।

मुझे उन्हें बता देना है कि - अजी, ऐसा क्यों कह रहे हैं कि कुछ बना नहीं ? आपने सुना, इतना ही नहीं, तो यह कृष्णमूर्ति नामक व्यक्ति जो कह रही है, वह जीवन का अर्थ - उनके शब्दों द्वारा निर्दिष्ट होनेवाला सत्य, - यही वस्तुतः सत्य है, यह भी आपकी बुद्धि को जँचा। Your psychological structure or thought structure was equiped enough to grasp the meaning behind those words. यह कोई छोटी घटना नहीं है कि यह आपने पहचाना !

"हीरा परखै जौहरी, शब्द को परखै साध !
जो कोई परखै साधको, ताकी मति है अगाध !"

'शब्द को परखै साध !' कुछ पूर्व पुण्योदय था, तो इन शब्दों में सत्य है - यह जाना; क्योंकि (कृष्णजी की) बिलकुल भिन्न शैली थी। वह शैली प्रतिपादन की नहीं थी, निरूपण की भी नहीं थी; संवाद की थी। वे कोई कॉलेज में गइ हुइ व्यक्ति नहीं थे और आपकी पदवियाँ-उपाधियाँ आदि नहीं थीं, उनके पास ! "सिर्फ़ जीवन और वे ख़ुद" - इसके सरल संयोग से जो नवनीत प्राप्त हुआ, वह शब्दों में प्रस्तुत करते थे; फिर एक ही बात दस बार भी कहनी पड़ती थी। तो, सुननेवाले लोगों को लगता था कि यह बहुत repetition है कृष्णमूर्ति में; पर वे समस्त विनम्र निवेदन - आर्जवपूर्ण प्रेम और करुणा के कारण ! "इस पद्धति से नहीं तो उस प्रकार से कहेंगे।" ऐसा कहकर फिर से कहते। उनके वक्तृव की आर्तता, उत्कटता ऐसी हृदय का भेदन कर के जाती थी कि देखते ही रह जायें ! तो, आपको यह जो समझ में आया कि उनके कहने में सत्य छिपा हुआ है ! यह योग्य है, ये जो कहते हैं, वही ठीक है - इतना तो आप पहचान पाये ! यह तीसरी महत्त्वपूर्ण घटना है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साक्षात्कार की नई व्याख्या नहीं चाहिए

अब इसके पश्चात् का जो मार्ग है, वह बहुत खड़ा चढ़ाव है। It's a stiff climb after than. यहाँ तक तो ठीक था, पर उसके पश्चात् वहाँ कसौटी होती है कि यह जो कहा जाता है, वह सत्य मुझे भी प्राप्त हों, यहाँ तक ठीक, लेकिन वह जो सत्य की उपलब्धि है - आत्मोपलब्धि है, वह उनके जीवन में जिस प्रकार से व्यक्त हुई, उसी प्रकार से मेरे जीवन में व्यक्त हो या होनी चाहिए - ऐसा आग्रह या 'व्यक्त होगी' ऐसी आशा; याने उनका Transformation का जो कोई event था - घटना थी, उसे हमने एक Authority बनाया। उसे हमने एक Point of destination बनाया कि उन्हें तो Ojai में बुद्ध दिखा और वह सामने आया और फिर उनके भ्रूमध्य में ज्योत बनकर घुस गया, वैसा हमें भी दिखना चाहिए।

अजी ! उनके जीवन की तो पृष्ठभूमि ही विलक्षण नाट्यपूर्ण - dramitic थी ! तब Transformation का event और तत्पश्चात् Star of the East का विसर्जन - उन्होंने तो दुनिया को धक्के ही धक्के दिये ! धक्के पे धक्के देते ही गये वे ! तो, आपके जीवन में यदि परिवर्तन हुआ भी, तो क्या वह ऐसी धक्का देनेवाली घटना ही होगी ? क्या वह जग को मालूम होनेवाली है ? क्या वह आपके संग रहनेवाले पति या पत्नी को मालूम होनेवाली है ? उसका क्या कोई स्फोट-explosion होनेवाला है ? - 'ऐसा सब' समझ ने की आवश्यकता नहीं है, जी ! पर हमने उनके परिवर्तन की जो पद्धति थी, उसका एक ढाँचा, Pattern बनाया है। उनके शब्दों का हमने प्रामाण्य - Authority बनाया है। एक वह ढाँचा और 'वैसा कुछ हमारे बारे में भी धटित होनेवाला है' यह समझ; फिर वह 'धटना' नहीं, इसलिए हमें ऐसा लगता है कि हममें कुछ घटित ही नहीं हुआ। साक्षात्कारों की पुरानी मान्यताएँ ढकेल दी और नई साक्षात्कार की एक परिभाषा – उनके निवेदन से हमने बनाई, और फिर वह एकमात्र (Exclusive) दिशा बनाई : 'पर कुछ घटित नहीं हुआ !' इसलिए मैंने कहा कि अति कठिन चढ़ाव है। वह भी मोह त्यागना पड़ता है। You cannot create a direction and a point of destination out of the communications of Krishnamurti. You have to be on your own. He mercilessly throws you on your own, completely. हमें लगता है, कहीं तो वे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हमारी उँगली पकड़े या उनकी उँगली हमें पकड़ने दें और जिस-जिस समय आप उनकी उँगली पकड़ने का प्रयास करेंगे, उनसे माँगने जायेंगे कि - आप अब यहाँ कुछ कहिये ! - तब बिलकुल कठोरता से, निर्ममता से वे आपको दूर ढकेल देते हैं। "Sir, it is up to you to find out. Sir I am not your Guru. I am not your Authority. - ऐसा वे कह देते हैं।

तो, वह चढ़ाव चढ़ते समय उन्होंने मार्ग दर्शाया तो भी, वे आधार बनने, आश्रय तो दूर ही रहा, आधार भी बनने को तैयार नहीं हैं। विज्ञान के द्वारा जो परिपक्वता मानव की बुद्धि में आई हुई है, उसकी समझने की शक्ति जो बढ़ गई है, उससे इतनी ज़िम्मेदारी हमें लेनी चाहिए, ऐसा नहीं क्या ? किन्तु हम उसे स्वीकारते नहीं।

अनुशासन के ढाँचे नहीं चाहिए

जिस प्रकार वे 'प्रामाण्य नहीं चाहिए' (No Authority) कहते थे। उसी प्रकार - 'अनुशासन के ढाँच भी छोड़ दीजिये' ऐसा, कहते थे। (No Discipline). 'ये जो अनुशासन के ढाँचे बनाये गये हैं, 'Patterns of discipline which you follow and which you repeat mechanically and to which you try to approximate your actions an your life' - वे छोड़ दें' - कहते थे। 'अनुशासन' न हो।

हमें लगा कि न करने का यह बहुत अच्छा पंथ है। (Cult of rejection); करो reject, क्योंकि 'ऐसा कुछ नहीं चाहिए' - यह कहना हमारे लिये लाभ का था। लेकिन उनका ऐसा कहना सिर्फ़ 'नकारना - rejection' नहीं था, - वह क्रान्ति-सूचक था, Revolution में सर्जन अभिप्रेत रहता है, विध्वंस नहीं।

वे ऐसा कहते थे कि - A kind of orderliness on the physical, verbal and the mental level, emerges out of understanding. मुझे यदि मालूम होता हो कि प्रातः ४ या ५ बजे जागना स्वास्थ्य की दृष्टि से योग्य है, आवश्यक है; व्यायाम करना – फिर वे आसन हो, प्राणायाम हों; – यह आवश्यक है; तो फिर मुझे नियम करने की क्या आवश्यकता है ?

जीवन के साथ साथ जानना, जो जान लिया वैसा करना, जानने जैसा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने के लिए incentives निर्माण करना और फिर उन incentives - (प्रेरकबल) के संप्रदाय बनाना, इस प्रकार मानव-समाज जीता आया है । कृष्णमूर्तिजी कहते हैं कि - आप देखो, जो कुछ आप समझें, उस प्रकार आचरण करो । उस आचरण से एक व्यवस्था-एक orderliness एक संयम, संयम का संगीत जन्म लेगा । आप क्यों अपनी बुद्धि जैसे या अन्य किसी की बुद्धि जैसे जीवन के ढाँचे बनाते हैं, Discipline का Structure बनाते हैं ? और फिर 'समझ में नहीं आया, तो भी करो !' - ऐसा किसी पर थोपना क्यों ? अनुशासन अन्य किसी ने भी थोपा हुआ हो या अपनेआप पर लादा हुआ हों, उसमें जान नहीं आती । तो, हमने आधा सुना कि - No discipline ! और कृष्णजी का जीवन आपने देखा हों, तो ! पाँच बजे उठते थे, ७५ वे या ८० वर्ष की आयु तक ! योगासन और प्राणायाम को छोड़ा नहीं । टहलने जाते थे; दस -दस मील चलते थे । सानेन में रहे तब १०-१० मील टहलते हुए उन्हें मैंने देखा है । कभी आल्ड्स् हक्स्ले के साथ, तो कभी यहूदी मेन्युइन के संग । हम तो उस समय ३-४ मील से अधिक चल नहीं पाते थे, उनके संग । बहुत ज़ल्द चलते थे । हिन्दुस्तान में रहे तो किस प्रकार का आहार, युरोप में रहे तो कैसा आहार; हज़ार काम रहे, तो भी वे भोजन का समय नहीं टालते थे । उनका एक लयबद्ध जीवन था । हमारे जीवन का अनुशासन गया और order तो आयी ही नहीं; आयी क्या ? यह हमें देखना चाहिए । यह किसी एक व्यक्ति का प्रश्न नहीं । यह आपका, मेरा, सभी का प्रश्न है, ऐसा गृहीत कर के कह रही हूँ ।

तो, यदि केवल rejection आया होगा और - 'यह नहीं चाहिए, वह नहीं चाहिए, (जो है) यह बुरा' - लेकिन किसी भी प्रकार का (अच्छा) शुभ यदि हमारे जीवन में आया ही न होगा तो ? अनुशासन (ज़बरदस्ती थोपा नियम-पालन का नियंत्रण) गया और संयम (समझ मेंसे स्वत: जिया जानेवाला) आया, तो फिर कुछ तो सर्जनात्मक काम हुआ । आँखें भरकर जीवन की ओर देखें, समझ लेने का प्रयत्न करें, समझ लेने पर, वह जो समझा हुआ है, वह जियें । **"The first and the last step is understanding, because, Sirs, understanding is Action. Understanding is Total Action. Then you do not have to make timebound efforts. Then the Velocity of spontaneity permeates your being."** - कुछ कहना तो उन्होंने शेष रखा ही नहीं । ऐसा यदि हमारे जीवन में बनता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं, तो मुझे ऐसा लगता है कि हम बीस नहीं, पचास वर्ष भी यदि उनके ग्रंथ पढ़ते रहें और उनके audio - video केसेट्स् सुनते-देखते रहें तो भी, परिवर्तन नहीं होगा। थोड़े-बहुत peripheral changes – ऊपर-ऊपर के फ़र्क होंगे और उन changes में - वे जो कुछ परिवर्तन होते हैं, उनमें यदि सुख लगने लगा, तो फिर सें वह महाशय (कृष्णजी) खड़े गर्दन पर! कहते हैं - **"Change is not growth. Growth is in the Totality and change is compartmental and partial. And you become conscious of the changes. That which is partial remains as attribute of the consciousness. That which vibrates in the Totality of your consciousness results in growth.** - क्योंकि, यह विज्ञान था, शुद्ध विज्ञान! विज्ञान और अध्यात्म का एक मधुर संगम था, एक समन्वय था।

कल्पना, धारणा – इनका स्थान

हमने उनके ग्रंथ पढ़ लिये, उनके प्रवचन सुनें, उनकी छोटे-छोटे समूहों के साथ की हुईं चर्चाएँ सुनीं, और समझो कि हमें मालूम हुआ कि every mental movement is a mechanistic movement - यांत्रिक गति है, उनकी कहने की जो एक पद्धति थी, वह हम सभी को परिचित है, इसलिए कह रही हूँ। तो, यह mechanistic movement है, repetitive movement है, यह हमें मालूम हुआ, तो उसका अनुबंध हमने हमारे जीवन से जोड़ा है क्या ? 'मैं भारतीय हूँ' यह कल्पना (concept) ही है न ? 'आप मानव हैं - यहाँ भी मैं concept को लेकर जाऊँगी, क्योंकि (वहाँ भी) आकृति से संबंध है। आप जीवन के एक आविष्कार हैं, अभिव्यक्ति हैं। You are an expression of the cosmic energy; पर वहाँ तक मैं आज आपको ले नहीं जाती।

. . .

'मैं भारतीय हूँ' - यह एक मान्यता है न! यहाँ आपने जन्म लिया इसलिए, हिन्दू-परिवार में जन्म पाया इसलिए, I am a Hindu, I am a Indian - ये सभी मा-यताएँ, धारणाएँ हैं या नहीं ? I am husband, I am wife. This is good. This is bad - ये भी मान्यताएँ और धारणाएँ ही हैं न! मानसिक गति के साथ इनका कोई संबंध है या नहीं ? Are they not

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

mental movements ? Have we allowed all these concepts, evaluations, judgements, categories; have we allowed all of them to drop-away, the moment we realise that it is all a mental movement ? वे ऐसा कह सके कि - I have no nation. I belong to no nation. I have no religion. I am just a human being. हमसे ऐसा कहना हो सकेगा क्या ? हमारा जीवन ऐसा है क्या ? Are we committed to life and the Truth of life ? या हमारे commitments भिन्न हैं ? और वे जो हमारे Physical, Psychological Commitments हैं, उनके साथ इस सत्यता को क्या adjust करना है हमें ? देखो, जी ! मैंने 'Revolutionary' कहा, It is not a matter of rejection; it is a matter of revolution and the Total Revolution at that. यह छूट गया, तो हम छोड़ देने को तैयार हैं क्या ? भारतीयत्व गया, हिन्दुत्व गया, स्त्रीत्व-पुरुषत्व का भी भान गया ! अच्छे-बुरे की, पाप-पुण्यों की, समस्त परिभाषा भी पोंछी गई; अस्मद्-युष्मद् प्रत्यय देनेवाला जो 'अहं' का केन्द्र था, वह भी स्वच्छ हुआ, कुछ शेष न रहा, ऐसा Nobodyness और Nothingness, nakedness, The nudity of consciousness - यह जीने के लिए हम तैयार हैं क्या ? - सिर्फ़ एक घंटा सभा में बैठकर नहीं, जी ! व्यवहार में । हैं तैयार इस चीज़ को जीने ?

इसके लिए हमारी तैयारी नहीं है । हम वे मान्यताएँ, वे परिभाषाएँ - यह सारा रखना चाहते हैं । वे commitments रखना चाहते हैं । और जो सत्य विदित होता है या दर्शाया जाता है, उसके साथ फिर उन commitments के compromise करना चाहते है, adjustment करना चाहते है; - यह तो उन्हें अभिप्रेत नहीं है, जी ! 'Unconditional Freedom' कहते हैं वे ! 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' - का उद्‌घोष करनेवाले शंकराचार्य को भी इसके अतिरिक्त - अलग कुछ अभिप्रेत नहीं था । 'जाणोनी नेणते करी माझें मन । तुझी प्रेमखूण दावोनिया ।' कहनेवाले महाराष्ट्र के सन्तों को भी इससे भिन्न कुछ अभिप्रेत नहीं था; किन्तु हमने वह देखा नहीं और इस व्यक्ति ने हमारी आज की परिस्थिति के संदर्भ में वह हमें दर्शाया, हम समझ सकें ऐसी परिभाषा में उसने हमें बताया; पर हमें यह जानना-न जानना जहाँ कहीं ले जायेगा, वह हमें चाहिए । किन्तु जानने की संवेदना स्वयं यदि चली गई, वह नहीं चाहते ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञान अज्ञान को ले जाय, ज्ञान हमें चीज़ दिखाये; पर (ज्ञान खुद) ज्ञानरूप से सदा रहे हमारे पास; नहीं तो फिर 'मुझे आत्मज्ञान हुआ है' - ऐसा मैं कैसे कह पाऊँगा? यदि ऐसा न हुआ, तो कहने को नहीं मिलेगा; पर ज्ञान यदि अज्ञान का हरण करेगा तथा 'चीज़' देकर स्वयं का भी लोप कर देगा, तो फिर इस बात से हम ड़रते हैं ! हमें वस्तुरूप-चीज़ स्वरूप नहीं चाहिए । वह सिर्फ़ 'होनापन' नहीं चाहिए । We are not contented with the Beingness of life. हमें कुछ न कुछ Process of Becoming चाहिए । 'इन्होंने कृष्णमूर्तिजी को सुना और इनमें परिवर्तन हुआ' - यह चाहते हैं हम । उपलब्धि की भाषा भी अधूरी होती है, जी ! प्राप्ति तो हुई ही नहीं और उपलब्धि की भाषा अधूरी !

परिवर्तन अन्यों को प्रतीत होगा

मुझे ऐसा लगता है कि हम कृष्णमूर्तिजी को उबाल कर पियें, लगातार उनकी बातें कहते रहें – यह सब यदि करते रहें, तो भी हमारे मन में जो सारा सामान भरा पड़ा है, उससे हताशा, निराशा लगती है । अन्यथा हताशा, निराशा की कोई ज़रूरत नहीं है । आपके चित्त के किसी भी कोने से (उस 'भरे पड़े' के प्रति भी) Resistance नहीं, Commitments के नामपर भी नहीं, ऐसा यदि रहा - **The moment there is willingness, resistance-free willingness,** यदि एक ऐसा - **Willingness to live the Truth you understand** रहा, तो मुझे लगता है कि परिवर्तन की घटना अवश्यंभावी है, उसे कोई भी रोक नहीं सकेगा । वह घटना घटित हुई - यह भी आप समझ नहीं पायेंगे । इतनी सूक्ष्मता से, 'इन्द्रियांतें चोरून जेवी !' पुष्प-पराग का मधु जैसे भ्रमर चूसकर - ले जाता है, 'तैसी आहे परी या सेवनाची.' - तो, यह घटना घटित होने पर आपके आसपास, आपके साथ – रहनेवाले लोगों के ध्यान में आयेगी । – 'अरे ! यह व्यक्ति भीतर से बदल गया, जी ! बाहर से हमारे साथ है, बातें करता है, साथ चलता है, हमारे संग भोजन करता है और फिर भी वह और कहीं खो-सा गया है, यहाँ नहीं है ! सब करता है, उस बारे में तकरार की कोई गुंजाइश भी नहीं; फिर भी इसका अनुसंधान और इसके जीवन का जो रस है, वह कहीं और जगह पर है, अपनेमें नहीं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर पर हाथ रखा तो भी क्या होगा !

तो, 'मुझे ऐसा अर्थ समझ में आया और परिवर्तन का जो मैंने अर्थ किया और केवल अर्थ नहीं किया, उसके साथ एक चित्र भी तैयार किया और उसके अनुसार कुछ घटित नहीं हुआ,' - इसकी हताशा है। वह आग्रह यदि वहीं का वहीं लुप्त हुआ, विलीन हुआ, तो आज जो आँसू बह रहे हैं, निराशा है, हताशा है, - 'क्या करें ? कहाँ जायें ? किसीको तो कहें कि सर पर हाथ रखें। हाथ रखने से धटित हुआ तो भी चलेगा' - ऐसी जो depression की भाषा है प्रश्न में, जिसके कारण मेरा मन भर आता है ! समझो कि कोई हमें मिला और सर पर हाथ रखा और वह हुआ भी, तो भी वह स्वायत्त नहीं होगा न ?! वह घटना स्वायत्त नहीं होगी।

यह कहते हुए, बोलते हुए स्वाभाविक ही मन में एक कल्पना झाँक गई कि लोग कहेगें कि - आपके सर पर हाथ रखा था, अतः हुआ और अब हमें ऐसा कह रही हैं ! - ऐसा प्रश्न यहाँ बैठे हुए मंडली मेंसे किसीके तो चित्त में, मेरे यह कहते समय उठा होगा; क्योंकि विचारों के रंग होते हैं, गंध होतीं हैं और यहाँ वे अगर किसीके चित्त में हमारा कहना सुनने पर उठे, तो वे हम तक पहुँचते हैं। - 'गुजरात में इतना सारा कार्य करते हो, धन, कौन देता है आपको ?' कल हम कह रहे थे न ! उसे सुनते समय ये सभी बातें मन में उठती हैं। यह कुछ मराठी मन की एक रचना है, खूबी है !

सर पर हाथ रखा और कान की व्याधि ठीक हुई, जो व्याधि ठीक नहीं हो सकती—ऐसा डॉ. बी.सी. रॉय जैसे व्यक्ति ने कहा था; लंदन के गाय् हॉस्पिटल के तज्ञ कहते थे और जिसके लिए १४ महिनें - कम से कम १०-१२ महिने तो दवाखाने में मैं रही थीं, वह व्याधि कृष्णमूर्तिजी के हस्तस्पर्श से दूर हुई - यह नितांत सत्य है, ऐतिहासिक सत्य है। उसका अस्वीकार कैसे करूँ, जी ? किन्तु, संयोग से यदि कोई स्फोट उस घटना के प्रश्चात् घटित हुआ था, तो उसका संबंध केवल हस्तस्पर्श से नहीं है। यह बात कृष्णमूर्तिजी ने ही मुझे समझाकर कही थी। मैं बहुत घबरा गई थी और इसी कारण उनके पास जाने को तैयार नहीं थी। कई बार उन्होंने बुलवाया कि - आओ आप ! तो मैं कहती थी - नहीं, आपने यदि हाथ रखा और मेरा रोग यदि ठीक हुआ, तो आपके-मेरे संबंधों में परिवर्तन आयेगा, बदलाव आयेगा। I do not want to be

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

obliged. Let there be pure love and respect between us. तीन महिने लिये मैंने ! जाने को तैयार नहीं थी मैं। विनोबाजी ने मुझे तैयार कर के भेज दिया। यह घटना हुई, तो क्या कहा, उस महापुरुष ने ? उन्होंने कहा, "You have been Listening to me and what you understand was Sinking in your Being. It was permeating your Being. The earth was ready and the rains came - इतना ही है। तुम झूठा संबंध मत जोड़ो !"

तो, आनुवंशिक बातें छोड़ दीजिये आप। किन्तु, आयु के पाँचवे वर्ष से - 'भगवान कैसा होता है ? कहाँ रहता है ? आत्म-साक्षात्कार याने क्या ? यह मैं खोजती रही। नागा बाबा के अखाड़े से लेकर हठयोग-आश्रमों से, सन्त-महन्तों के मठ-मंदिरों से, पंढरपुर की 'वारी' तीर्थयात्रा तक; पाँच वर्ष की आयु से क्या नहीं किया होगा हमने ? इन सभी का कहीं न कहीं तो विस्फोट होने ही वाला होगा और वह भाग्यवंत घटना निमित्त बनी होगी। उस प्रेम को पकड़ने की शक्ति, वह पाँच वर्ष की आयु से जो कुछ पहले से ही होता रहा था, उसके कारण (वह शक्ति) आयी होगी ! कुछ कह नहीं सकती; पर केवल इतना आज भी कहती हूँ कि सर पर हाथ रखने से जो घटित होता है, वह स्वायत्त नहीं रहता, केवल सर पर हाथ रखने से। केवल अपने प्रत्यय के प्रकाश में एक कदम रखा गया, तो वह माँग लिये हुए और उधार लिए हुए प्रकाश में रखे सौ कदमों से भी अधिक मूल्यवान रहता है; इसलिए, 'हमें समझ में नहीं आया अथवा हममें परिवर्तन नहीं हुआ' - इतना भी जो प्रकाश फैला है, उसका महत्त्व मैं बड़ा समझती हूँ। The Divine discontent that the Totality has not exploded. The energy has not taken a quautum jump in another dimension - यह जो मालूम हुआ है, यह अत्यन्त बहुमूल्य वस्तु है। बिलकुल 'वैजयन्ती का कौस्तुभमणि' कहोगे न, वैसा है यह !

परिवर्तन कालबद्ध घटना नहीं

तो, हताश न हों। यह कोई कालबद्ध घटना नहीं है। Understanding is timeless. When the sensitivity permeats the Totality, वह संवेदनशीलता रग-रग मेंसे, धमनियों मेंसे नाचने लगेगी, उस समय वह घटना घटित होगी ही, - in the timlessness. फिंर हम क्या करें ? तो, मैं किसलिए कहूँ ? आपने प्रश्न पूछा है कृष्णमूर्तिजी की शिक्षा के संदर्भ में।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक कृष्णमूर्तिजी के प्रेमी मिले थे, कुछ महिनों पहले। सत्तर (७०) से अधिक आयु होगी और लगभग पचास वर्ष कृष्णमूर्तिजी से परिचय; बहुत निकटता का परिचय, इतना कि उनके साथ युरोप, अमेरिका में रहे भी थे। उन्होंने एक विनोद की बात कही। मुझसे कहा कि - मैं ६० वर्ष का था, उस समय खास भारत से जाकर कृष्णमूर्तिजी के पास पहुँचा और उनसे कहा कि - इतने वर्ष तो आपको मैंने सुना और अभी तक कुछ विशेष हुआ, ऐसा मुझे लगता नहीं। (वैसे मानो हम सूखे पाषाण रह गये (!), यह भाषा मैं स्वीकार नहीं करती। प्रश्न करनेवाले का जीवन सूखे पत्थर जैसा रहा ऐसा में नहीं मानती) पर इस व्यक्तिने जाकर उनसे पूछा कि मैं अब क्या करूँ ? उस पर कृष्णजी ने कहा, "From this moment; live as if you are dead to the whole world and to yourself."

'निराशा' भी अहंकार की ही 'चाल'

तो, परिवर्तन का आग्रह त्याग दें। कृष्णमूर्तिजी के जीवन में घटित हुआ - वे ही पड़ाव, उसी क्रम से, उसी प्रकार हमारे इस देह में भी होंगे, यह भ्रम छोड़ दें। समझा हुआ जो है, उसकी कृतज्ञता रहे। हृदय में आर्द्रता रहे, ऋजुता-तुष्टता का भाव रहे, जीवन का बड़ा अनुग्रह है - ऐसी कृतज्ञता रहे, और कुछ माँगना है ही नहीं, कुछ भी नहीं चाहिए- ऐसी एक सुंदर Divine emptiness, एक शून्यता लेकर जियें। Leave the doors open for the **'OTHER'** to step in. अपने आग्रह से, अपनी हताशा व निराशा से ही, जो घटित होनेवाला है, वह शायद न होता होगा तो ? इन हताशा-निराशाओं के कारण Psycho-physical inhibition (मनो-शारीरिक कुँठा) होता है और Psycho-somatic symptoms भी निर्माण होते हैं; तब, हताशा-निराशा - ये जो अंतिम रुकावट है या अहंकार का यह जो अंतिम कदम या चाल है, उस अहंकार का जो रूदन है, उससे होनेवाली यह हताशा-निराशा है, उसकी कोई परवाह न करें। उसे महत्त्व ही न दें। वह प्रत्यवाय (अवरोध) अलग रखकर जो शेष जीवन है, वही जीते रहें।

यह जो प्रश्न है, वह कृष्णमूर्तिजी के संदर्भ में यद्यपि पूछा गया है, तो भी मुझे ऐसा लगता है कि उसका जो आशय है, वह बहुत व्यापक है। हम सबके लिए भी काम का है वह ! मैं आप सभी से जब बोल रही हूँ, तब खुद अपने से बोल रही हूँ और इसीलिए शब्द रूप संवाद मैंने आपके सामने रखा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो जानना है, उसका जीने से अनुबंध करना चाहिए। जानने का अनुबंध जीवन जीने से होता है, तब सिर्फ़ अज्ञान चला जाता है, ऐसा नहीं ! तो ज्ञान और अज्ञान (जानना और न जानना) - इसके उस पार जो है, 'वह जीवन' और आपका 'जीने का कर्म' - इनके संयोग से जो निष्पन्न होता है, वह क्या है, उसे शब्द न दें। उसे 'परिवर्तन', 'Transformation', 'Enlightenment', 'Liberation' ऐसा कोई भी नाम न दें। सभी नाम गत काल के हैं। समस्त व्याख्याएँ भूतकाल की हैं। जाने दीजिये वह सारा भूतकाल !

निगूढ संस्पर्श

'Communion' को मैं "निगूढ संस्पर्श" कहती हूँ। जीने के कर्म में जीवन के और आपके निगूढ संस्पर्श मेंसे एक मधुर मिलन निर्माण होता है; क्योंकि वह Communication नहीं है, वह mental नहीं है, intellectual नहीं; Your **'Totality' meeting the 'Totality of Life'** around you; the 'wholeness of your Being', meeting the 'Wholeness outside your skin', - ऐसा वह मधुर रहता है। इसे हमारे यहाँ व्यक्ति-चेतना और विश्व-चेतना का मिलन कहा गया है; सूफ़ी लोगों ने The lover और Beloved – आशिक-माशूका की भाषा का उपयोग किया है; हमारे यहाँ शिव-शक्ति के मिलन का रूपक दिया है। कई लोगों ने कई रूपकों का इसके लिए प्रयोग किया है और उसके लिए समपर्ण की भाषा की उपयोग किया है; किसीने शरणागति की भाषा का प्रयोग किया है और अभी यहाँ पर "Communion with Life" - जीवन का निगूढ संस्पर्श - यह भाषा आयी है।

यह विज्ञानयुग का अध्यात्म है। There will be a new psychology in the nuclear age and there will be a new Scientific approach to spirituality with which the whole spiritual terminology is going to be changed. अतीत से सीखें, नम्रतापूर्वक सीखें। उसमेंसे प्राप्त हुए सत्य की जो तेजकिरणें हैं, वे भी ग्रहण-धारण करें; किन्तु आपको और मुझे जीना है विज्ञानयुग में; अतएव इस अभिनव दृष्टिकोण से हम अध्यात्म की ओर देखें, यह प्रार्थना करते हुए आज के सत्र को यहीं विराम देती हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन नवम

परस्पर संबंधों की समस्या

मौन – वैयक्तिक व सामाजिक पहलू

प्रश्न : 'ऐसे शिबिर का मैं पहली बार अनुभव कर रहा हूँ । मुझे लगता है कि "मौन" यह व्यक्ति के संदर्भ में है । व्यक्ति तथा समाज के संबंध कुछ न कुछ व्यक्त करने से ही होते रहते हैं और शब्द, संवाद - ये व्यक्त करने का, संबंध प्रस्थापित करने का एक उत्तम साधन है । इस संबंध में आप अपने विचार व्यक्त करें ।

उत्तर : "मौन" यह वैयक्तिक जीवन या समाज-जीवन से ही केवल संबंधित है, ऐसा नहीं । तो, मानवीय-चेतना में बुद्धि व विचार के परे जो आयाम है, उसको खोजने का वह मार्ग है ।

इन्द्रियाणि पराण्याहुः इन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्योबुद्धेः परतस्तु सः ।।

बुद्धि के उस पार कुछ तो है ! उसे 'सः' कहो, उसे 'तत्' कहो, जो चाहे सो संज्ञा उसे दो; पर यह 'कुछ' तो है ! जो जीवन का आयाम है, चेतना का आशय है, उसको खोजने का "मौन" यह एक मार्ग है, और यदि इसकी थाह पा ली गई, तो आज जो हमारे समाज में याने संबंधो में और व्यक्ति के वैयक्तिक जीवन में जो असंतुलन हैं, खिँचाव या दबाव हैं, इन सभी का निर्मूलन होने की संभावना है । मनुष्य चिंता करे, अंदर ही अंदर कुढ़ता रहे, वह विकारों के अधीन हों, विचारों की चौखट में स्वयं को बंदी बनाएँ - इसके लिए मानव का जन्म नहीं है, जी ! इन समस्त इन्द्रियों का उपयोग करते समय, बुद्धि नाम की इन्द्रिय का तथा उसकी गति का उपयोग करते समय, संतुलन साधने के पुरुषार्थ के लिए मानव का जन्म है । तब - आप "मौन" को केवल 'बोलने का अभाव' - ऐसा न मानें । वह एक अति विश्रान्त, विश्रब्ध - अवस्था है तथा उसमें अज्ञात शक्तियों का भण्डार है, ऊर्जाओं का भण्डार है । उसमें परा-पश्यन्ती-वाक् - इनका संचार हो सकता है । परा तथा पश्यन्ती का संबंध Cosmic Consciousness या वैश्विक चेतना से है, जैसे वैखरी और मध्यमा का संबंध संस्कारयुक्त चेतना से है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आपने प्रश्न में ऐसा कहा है कि संबंधो के लिए शब्द, संवाद उपयुक्त हैं। यह तो निर्विवाद है। 'शब्द' आकाश का गुण है और इसलिए उसमें पार्थिवता अल्प है। उसमें चिन्मयता अधिक है। तो, यदि भुवन–मनमोहिनी-वाग्विलासिनी शारदा के भण्डार से चित्-कलिका रूपी शब्दों को हम खोज सकें, उठा सकें, उनकी पवित्रता बनाये रख के उनका उपयोग कर सकें, तो कुछ न कुछ व्यक्त करने के लिए शब्दों का उपयोग होता है। पर हम जो शब्दों का प्रयोग करते हैं या इस्तेमाल करते हैं, वह इस हेतु करते हैं क्या ? - इसकी जाँच करनी चाहिए। मन में जो है, वह छिपाने के लिए हम शब्द का उपयोग नहीं करते क्या ? मन में होता है एक और दूसरा ही कुछ है, ऐसा दिखाने के लिए हम शब्द का उपयोग करते नहीं है क्या ? ग़लतफ़हमियाँ होतीं हैं, वे किस कारण से होतीं हैं ? तो, शब्दों का प्रयोग यदि उचित प्रकार से हुआ, तो कैसा रहेगा ? यह शब्द ब्रह्म है और संबंधों में शब्दों का उपयोग अनिवार्य है, इसमें तो दो मत रह नहीं सकते; किन्तु, "चार ही वाचा शृंगार अविद्येचा" ऐसा कहनेवाले ज्ञानदेवजी ने शब्दों की जो मर्यादा कही है, वह हमें पहचाननी चाहिए और इसीलिए मौन की साधना यह मानव-जीवन की समस्याएँ – आजतक जो सुलझ नहीं पायीं उनको – सुलझाने के लिए आवश्यक है - ऐसा मुझे लगता है।

हमें इस शून्य की खोज, इस शून्य का निष्कर्ष निकालकर शून्य के रस का प्राशन कर के उसके भी परे जांने की तथा आत्मस्थ होने की युक्ति या कला साध्य करना और यह केवल अपनी व्यक्तिगत सिद्धि के लिए नहीं, पर समस्त मानव-समाज के लिए और उनके द्वारा यह आंतरिक क्रान्ति साध्य करनी है।

अपमान का सामना कैसे करें ?

प्रश्न : 'जीना यानी संबंधित रहना; किन्तु एक सामान्य शान्तिमय जीवन जीते समय कुछ घटनाएँ ऐसी घटित होती हैं, ऐसी परिस्थिति बन जाती है, जब वातावरण तप्त होता है, कठोर शब्दों को सुनना पड़ता है, हम बाह्यतः शांत रहें, तो भी अंदर ही अंदर तूफान चलता है। दूसरों की भूल है (इन्हें छोड़ दें)- ऐसा कहकर बार-बार उसे टालने का प्रयास किया गया, तो हम भोले हैं, Simpleton (बुध्दू-उल्लू) हैं, ऐसी लोगों की समझ होकर हमारा और भी ज़्यादा अपमान व छल होने की संभावना रहती है। उसी प्रकार दुःख, नैराश्य, अकेलापन – जैसे उद्वेग निर्माण करनेवाली भावनाओं की ओर केवल देखने से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नष्ट नहीं होतीं अपितु उनका और ही फैलाव होता है, ऐसा अनुभव है। ऐसी अधिक कष्टदायक भावनाओं से भागने के पारंपारिक रास्ते हैं; पर ऐसी परिस्थिति में संबंधित होने का, रहने का उत्कृष्ट उपाय क्या है ?

उत्तर : वातावरण तप्त होता है कि हम भी उत्तेजित होते है ? उन्होंने कहा है कि शान्तिपूर्वक हम जीते रहते हैं और वातावरण तप्त होता है। किनके द्वारा होता है ? क्या कोई अन्य व्यक्ति हैं ? इस प्रश्न का अध्यास (अध्याहार) ऐसा है, ऐसा समझकर मैं कहती हूँ कि अन्य कोई कठोर शब्द बोले, किसीने कुछ अंपमानकारक कहा, इसलिए वातावरण तप्त हुआ ? उन कठोर शब्दों के कारण वातावरण में उत्तेजना आयी या वह सुनने से आपके चित्त में जो उद्वेग उछला, एक चिढ़-सी आयी, आपको क्रोध आया और उसके कारण वातावरण तप्त हुआ ? क्या है क्या ? झमेला क्या है ?

कोई कठोर कहेगा नहीं, कोई अपमान करेगा नहीं, सभी बिलकुल सात्त्विक, सौम्य व स्निग्ध रीति से आपसे व्यवहार करेंगे, यह तो संभव नहीं। विविधता, विचित्रता, विलक्षणता- यह तो जीवन का ऐश्वर्य है ! तो, वातावरण क्यों तप्त हुआ ? उसने कहा और आपको अपमान लगा न ? अहंकार को चोट लगी न ? यदि उस व्यक्ति का कहना अयुक्त रहा हो, अयोग्य रहा हो, तो वातावरण को तप्त किये बिना याने आपकी प्रतिक्रिया से, ख़ुद तप्त हुए बिना निर्भयता से, दृढ़ता से कहना चाहिए था कि – आप जो बोल रहे हैं, वह ग़लत है। आप जो कह रहे हैं, वह ठीक नहीं है; पर ऐसा कहने में आपको भय लगता है, समस्या वहाँ पर है; क्योंकि सभी को प्रसन्न रखने की इच्छा रहती है। अपमान लगा, वह आपको अनुभव होता है, तो कह दो न कि – आप ऐसा अपमानास्पद कह रहे हो या मुझे इसमें अपमान लगा। अगर आपकी ऐसा सोचने में भूल रही हो, तो सामने का व्यक्ति कहेगा कि – मेरा कोई ऐसा अभिप्राय नहीं था, मेरे मन में ऐसा कुछ नहीं था। और सचमुच ही दुंष्टता, कुटिलता हो तथा छद्म (कपट) से ही वह व्यक्ति वैसा कहता हो, तो आप स्पष्ट कह सकते हैं कि यह आपका करना उचित नहीं है। हमें साथ में काम करना है या जीना है। तो, आप स्पष्टवक्ता रहें, आपमें निर्भयता हो, दृढता हो; पर आपकी जो प्रतिक्रिया होती है, उससे चिढ़-सी आयी हुई रहती है, क्रोध आया हुआ रहता है और उस कारण संतुलन रहता नहीं। उनका एक दिशा से गया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुआ रहता है और हमारा दूसरी दृष्टि से जाता है। ऊपर से शांत रहना यानी क्या ? शान्ति ऊपर से व भीतर से नहीं रहती, जी ! शान्ति जो होती है, वह चित्त की स्थिति है। तो, बाहर से शान्ति दिखायें और भीतर से धधकते रहें - इसे ही मैं पाखंड कहती हूँ, ढोंग कहती हूँ और इस कारण हमारी हानि होती है। भीतर से यदि धधकते रहें, तो वह जो nervous system है, उस नाड़ी-तंत्र में कितना तनाव आता है ! आपकी प्रतिक्रिया के कारण शरीर में उष्णता बढ़ेगी। आँखों पर, मस्तिष्क पर, पेट पर उसका परिणाम होगा। कष्ट औरों से भी ज़्यादा आपको होगा। तब, उसके बजाय आप स्पष्ट कहें, निर्भयता से बोलें; फिर वह कोई भी क्यों न हो ! आपकी ग़लती हो, तो आपकी समझ में आयेगी और उनकी ग़लती हो, तो उनके ध्यान में आयेगी। तब कहने में टालमहोल न करें। हम वह टालने का प्रयत्न करते हैं। Never avoid. Face it ! टालना तो पलायन हुआ ! ऐसे पलायनवादी क्यों बनना, भाई ? पर हम बिलकुल Hyper-sensitive हैं और यूँही हमारे मन में हंमेशा संशय और भय रहता है संबंधों का। और कोई कुछ कहें, तो वे मुझे दुखाने के हेतु ही नहीं न कहा ! - ऐसा हम संशय करते रहते हैं, उस व्यक्ति के मन में भी नहीं होगा; पर संशयात्मा जो कोई होते हैं, उन्हें प्रत्येक स्थान में ऐसा लगता है कि कोई तो हेतु रहना ही चाहिए, कुछ तो भी भला-बुरा मन में होना ही चाहिए। इसकी भी संभावना हो सकती है न ! किन्तु इस संभावना को rule out करने के लिए नकार ने के लिए खुले मन से कहना चाहिए और आपके कहने पर भी अप्रसन्न रहे या दुगनी कठोरता से कहने लगे, तो वह सहन करने की, पचाने की शक्ति होनी चाहिए। मन में कुढ़ना नहीं, जी ! पर as a part of the game ! हमें जो कहना था, वह हमने कहा, तो तत्पश्चात् जो परिणाम होगा, उस परिणाम को हमें निर्भयता से सहन करना चाहिए, ऐसा मुझे लगता है।

अब प्रश्न के उत्तरार्ध में आप ऐसा कह रहे हैं कि - हमारा अधिक अपमान और छलना होने की संभावना है, यदि हमने कुछ कहा नहीं तो।

यह अपमान, छल आदि मेरी समझ में नहीं आता; यानी घर में सास, श्वशुर, बहू - ऐसे कुछ रिश्ते हैं क्या ? यह प्रश्नकर्त्री क्या कहना चाहती है ? कहा गया है - वह अन्यों की ग़लती है - ऐसा कहकर टालने की भावना होती है। उनकी भावना हो या न हो, आप वह टालें नहीं। स्पष्ट कहना चाहिए। तो,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्भयता व दृढ़ता । और लड़कियाँ कहें नहीं, महिलाएँ बोले नहीं, ये सभी परंपराएँ व रुढ़ियाँ होंगी न, उसे फेंक देना चाहिए । आप नागरिक बनीं है, आपको पुरुषों की बराबरी के, कानून से संवैधानिक, अधिकार दिये गये हैं । आप विद्यालयों में जातीं हैं, नौकरियाँ करतीं हैं, संसार चलातीं हैं; फिर वे पुरानी कुछ परंपराएँ हों, उनका यदि कोई प्रभाव रहा हो मन पर, तो भी वह निकाल कर फेंकना चाहिए ।

'दुःख, नैराश्य, अकेलापन - ये जो भावनाएँ है, ये केवल देखते रहने से जाती नहीं । यहाँ प्रश्न करनेवाले के मन में 'देखने' का क्या अर्थ है ?

प्रतिक्रियामुक्त देखना

दुःख की ओर आपने देखा । हम मान लेंगे कि हमने देखा, और देखते समय देखने के साथ साथ "मुझे यह कितना दुःख हुआ है ! मेरे ही भाग में यह क्यों आया ?" ऐसा कहकर यदि उस दुःख को 'देखने के कर्म' मेंसे आत्मदया निर्माण की गई तो ? फिर वह 'देखना' नहीं रहा, जी ! 'हमारे ही भाग में किसलिए ? अन्यों के भाग में क्यों नहीं ?' - ऐसी तकरार अगर की गयी, ऐसी जीवन के विरुद्ध, समाज-विरुद्ध शिकायत यदि अपने ही अंदर की गई, तों फिर वह 'देखना' छूट गया न ? 'देखने' में 'मूल्यांकन' नहीं होता । 'देखने' में प्रतिक्रिया नहीं होती । यह 'प्रतिक्रियामुक्त देखना' - reaction-free perception, यह होना चाहिए । जो दुःख है, उसे टालना है, उससे दूर भाग जाना है, उसे दबोचना है, उसे नष्ट करना है, उस पर विजय पाना है – ऐसे सभी attitudes रखें नहीं; क्योंकि फिर वह 'देखना' घटित नहीं होगा । सामने योद्धा बनकर जाना नहीं । आख़िर सुख व दुःख संवेदनाएँ हैं । अनुकूल और प्रतिकूल संवेदना जब तक इस मानवदेह में हम हैं, तब तक होती रहनेवाली है; पर दुःख याने कुछ अप्रिय, दुःख याने कुछ अमंगल है, अशुभ है, अभद्र है और मुझे उसे टालना चाहिए, ऐसा आपके मन ने समझ लिया है । अपने याने मानव के मन ने समझ लिया है, समझ रखा है ।

मुझे ऐसा लगता है कि सुख व दुःख ये जो संवेदनाएँ हैं, इस शारीरिक सतह पर अनुकूल और प्रतिकूल जो संवेदनाएँ हैं, वे तो टाली नहीं जा सकतीं । शरीर को कष्ट होता है, किसीके शरीर को शीत सहन होती है, किसी के शरीर को उष्णता अनुकूल रहती है, किसीको कोई आहार रास आता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(अनुकूल पड़ता) है और शरीर को ये अनुकूल या प्रतिकूल संवेदनाएँ होतीं रहतीं हैं । It's a Physiological fact; पर इस सुख-दुःख पर, 'सुख - यह मुझे प्रिय है और वह मुझे बार-बार मिले और वह हाँसिल करने की कुछ तरक़ीबें निकालनी चाहिए ।' सुख के पुनरावर्तन की इच्छा और उस दृष्टि से प्रयत्न - इसमेंसे आपत्तियाँ आतीं हैं; और 'दुःख यह अप्रिय है, उसे टालना चाहिए ।' - यह जो उस बारे में प्रियता और अप्रियता है, उसे हटाकर देखो तो ज़रा दुःख की ओर ! समझो, मेरे परिवार में किसीकी मृत्यु हुई और बिलकुल वह अपमृत्यु थी, अकाल मृत्यु थी और अकस्मात् (अचानक) इतना बड़ा धक्का लगा शरीर को ! धक्का लगा याने आप जिसे 'मन' कहते हो, उसको ही लगा ! वह आंतरकाया ही है न ! संपूर्ण neurochemical system जो है, उसे बड़ी तीव्रता से धक्का लगा । उस ठोकर से संभलने में समय लगेगा । इसे यदि 'दुःख' कहना हो, तो उसे टाल नहीं सकते । ऐसे जो धक्के लगते हैं, अचानक, अनपेक्षित, अकल्पित - वे तो सहन करने ही पड़ते हैं, पचाने ही पड़ते हैं, पर 'यह मृत्यु क्यों हुई ? इतनी भगवान की पूजा करती हूँ और मेरे ही घर में क्यों ? मुझ पर ही यह प्रसंग किसलिए ?' – ऐसा कहोगे, तो You are creating suffering out of the pain of separation. वियोग हुआ, उसकी प्रतीति हुई और उसका दुःख हुआ - यह तो स्वाभाविक है; पर इसके आगे मनुष्य जाता है और उस दुःख से, उसे अप्रिय मानने के कारण मृत्यु को भी हम अशुम समझते हैं, अप्रिय मानते हैं । इसीलिए suffering - याने Continuity of the pain होता है । Pain has no continuity except on the physical level; परंतु मन के स्तर पर वह जो continuity है, उसे हम निर्माण करते हैं, बहुत-सा दुःख मनोनिर्मित रहता है । मन ही उसको गति देता है, मन ही उसका पोषण करता है । दुःख को पालते हैं हम ! सुखों की स्मृति और दुःखों की स्मृतियाँ और दुःख होने पर बहुत कड़वा लगने पर भी उस दुःख के संबंध में बार-बार, अड़ोस-पड़ोसवालों से, रिश्तेदारों के साथ बातें करते समय ज़रूर कुछ मीठापन लगता है, उस अहंकार को ! क्योंकि 'मेरा दुःख' है न वह !

इसलिए मैं कहती हूं कि जिस समय दुःख होगा, उस समय उस पर प्रियता या अप्रियता लादो मत । देखिये आप ! उसे ज़रा भी हाथ मत लगाईये, छूएँ नहीं - उसे कुछ करिये मत, केवल देखते रहिये, आत्मदया निर्माण किये बिना, उस परिस्थिति में बदलाव लाने की ज़िद न रख के, उससे दूर जाने की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोई भी तरक़ीब ढूँढे बिना,- केवल स्थिर रहें; फिर वह दुःख हों, नैराश्य हों, विकार हों, कुछ भी हों। To be with the fact - वह बहुत बड़ी बात है। अजी ! निराशा यह भी मनोनिर्मित नहीं है, क्या ? कुछ घटनाओं के संबंध में यश-अपयश के हमारे जो ढाँचे हैं, हमारी जो कसौटियाँ हैं, उन्हें ही लगाकर हम उनसे निराशा निर्माण करते हैं। हताशा, निराशा - ये समस्त प्रतिक्रियाएँ हैं। देखो ! केवल सुख व दुःख - अनुकूल तथा प्रतिकूल संवेदन - यह शारीरिक स्तर पर होने से वह Natural है - स्वाभाविक है। कष्ट होता है शरीर को और जहाँ कष्ट हुंआ, वहाँ हम 'दुःख' शब्द का उपयोग करते हैं। आराम मिलता है शरीर को, तो उसे भी agreeable, अनुकूल हुआ तो 'सुख' शब्द का प्रयोग करते हैं। मेरी दृष्टि से प्रियता तथा अप्रियता लादने का यह जो उपद्व्याप (उधम) है, वह छूट जाना चाहिए। उससे आत्मदया निर्माण न होने पाये और उन घटनाओं की ओर देखने की दृष्टि आनी चाहिए। नैराश्य निर्माण होनेवाली घटना की ओर ठीक तरह से देख सकें, यह होना चाहिए।

यह जो 'देखने का- निहारने का' पराक्रम है, इसमें जो हमारी प्रतिक्रिया है - दुःख या नैराश्य की जो प्रतिक्रिया है, उसके स्वरूप में बदलाव कैसे आता है, चित्त परसे उसकी पकड़ कैसे निकल जाती है - यह एक बड़ा अद्भुत पर्व रहता है जीवन का। इसका हमें अभ्यास नहीं, इसके संस्कार नहीं है। नैराश्य की ओर देखकर, दुःख की ओर देखकर और मन में हमारी अपने बारे में कोई प्रतिमा रही तो - 'मैं तो अति धीर-गंभीर व्यक्ति हूँ, मुझे यह कैसा दुःख हुआ ? मुझे वह कैसी निराशा हुई, मुझमें यह कटुता कैसे आई ?' - इस तरह स्वयं की जो कुछ प्रतिमाएँ हमने बनाईं हैं, वे गिर जातीं हैं, टूट जातीं हैं, इसलिए जो अवलोकन का कर्म है, वह विशुद्ध नहीं रहता। Pure perception, bare cognition, a flame of attentiveness, free of all comparison and evaluation - यह एक नई चीज़ है, देखो ! तो, उस देखने के कर्म में भूतकाल तो आता नहीं। हम उस देखने या अवलोकन के कर्म को सामान्य वस्तु न समझें। एक बड़ा अभिनव अभिक्रम है वह ! यह विशुद्ध द्रष्टृत्व-साक्षित्व भी नहीं, साक्षित्व भी एक भाव है; पर 'उस भाव' के भी उस पार यह जो विशुद्ध द्रष्टृत्व में शरीर की समस्त शक्तियाँ केन्द्रित होतीं है, उस द्रष्टृत्व की जो गति तथा उत्कटता है, वह जो कुछ भी आप देखते हैं, उस पर परिणाम करती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अजी, आपका सामान्य जीवन देखिये न ! आप क्रोध में रहते हैं, क्रोध में आप देखने लगे, तो भी वस्तु पर परिणाम होता है । प्रेम से देखने पर भी असर होता है । वनस्पति पर प्रभाव पड़ता है । अगर आपके घर में बगीचा है और फूलों के पौधे रखे हैं और बस केवल पानी देना है पेड़ों को, इसलिए सिर्फ़ पाईप फिराते हो, तो बात अलग है, लेकिन अगर आपका उनके प्रति प्रेम है और जैसे खुद जल पीते हैं या आहार लेते हैं, वैसे यदि उन पौधों को खाद देते हैं, पानी देते हैं या उनकी ओर प्रेम से देखते भी हैं, तो उसका भी प्रभाव पड़ता है । The act of perception has tremendous explosive power ! Potential - संभावना बहुत है उसमें ! एक ही शर्त रहती है कि उसमें अन्य कोई भी प्रतिक्रियायें घुस न पाये ।

'ऐसी परिस्थिति में संबंधित रहने का उत्तम उपाय कौन-सा है ? - अर्थात् उन निराशा निर्माण करनेवाली, दुःख देनेवाली व्यक्तियों के साथ कैसे रहें या संबंधित हों ? ऐसा प्रश्न है न ?

कुछ बोले, तो उनकी ओर ध्यान क्यों देते हो ?

यदि कटु कहनेवाली, दुःख देनेवाली, अपमान करनेवाली - ऐसी व्यक्तियाँ हों और उनकी वह आदत हो, उनकी यदि वह सिर्फ़ आदत ही है, ऐसा रहा है तो उनके साथ एक ही स्थान में रहना संभव है । आपको समझ में आया कि यह उनकी आदत है, then you can afford to ignore it; पर इससे अधिक उनमें कोई मानसिक असंतुलन ही हो, psychic case या एक दुष्टता, वक्रता अथवा कुटिलता ही है, ऐसा वहाँ अनुभव आया और आपको सहन नहीं हो रहा, आपका भी संतुलन जा रहा है ऐसा लगा, तो फिर उस संबंध में रहने में कोई अर्थ नहीं । कहना चाहिए कि- मुझमें यह सहन करने की शक्ति नहीं, - एक बार किया, दो बार किया, दस बार किया, लेकिन अब मुझसे जीना नहीं हो पायेगा ! पर जीना तो है मुझे भी । जीवन पवित्र है और जीने का कर्म पवित्र है । फिर वहाँ से हाथ जोड़कर अलग होना चाहिए तथा स्वतंत्र ढंग से जीना चाहिए । यदि स्वतंत्र ढंग से जीने की हिंमत हो, तो इस परिस्थिति से बाहर निकलें । यदि स्पष्ट कहने पर उनका प्रतिकार होता है और यदि वे केवल आदत से, मन में कोई दुष्टता नहीं और बस यूँही केवल बोलने की आदत है इसलिए बोलते हों - जैसे कुछ लोगों को आदत होती है - तो, उसकी ओर ध्यान न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दें। आपको जो करना हो, वह करें। Ignore the outburst and do the needful. हँसते-हँसते करें। दृढ़ता से करें। 'हमनें इतना क्रोध किया और आपने कोई ध्यान नहीं दिया',- ऐसा कहे तो आप भी कहें - 'ध्यान देने जैसा आपका क्रोध है नहीं। हमें एक साथ जीना है, तो आपकी जो स्वाभाविक वक्रता है, उसकी ही कहाँ परवाह करते बैठूँ ?' So do the needful. Respond to the necessity that living together brings about and ignore the frivolousness (व्यर्थता) of temperamental outbursts. यह संभव हो, तो करें; पर हम ही यदि रुग्ण होते रहें, तो, हम ही एक psychic case बननेवाले हों, nervous breakdown होने तक यदि जानेवाले हों, तो वहाँ से बाहर निकलें; फिर वह घर हो, परिवार हो, संस्था हो या संगठन हो; Life is Divine. Life is too precious to be wasted in such things.

आपके मन में प्रेम है क्या ?

इस संबंध में एक और मुद्दा बताना चाहती हूँ। जिस व्यक्ति के साथ हम रहते हैं, उस व्यक्ति के प्रति अगर हमें प्रेम हैं, तो ! वह व्यक्ति कठोर है, वह हमारे साथ वक्रता का व्यवहार करता है, अपमान करता है, सबकुछ है ! पर अगर आपके चित्त में प्रेम हो, तो !

व्यवहार में जिसे 'प्रेम'कहते हैं, वैसा नहीं कह रही हूँ मैं, जी ! 'हमने इतना प्रेम किया और देखो न ! उनको कोई परवाह ही नहीं।' जब ऐसा कहते हैं, तब वहाँ प्रेम करने में हमें कोई अपेक्षा थी (ऐसा अर्थ होता है) ! किन्तु, प्रेम तो सदा निरपेक्ष होता है। वह ख़ुद को लुटा देना ही जानता है। आत्मोत्सर्ग ! कल हम इस जीवन-यज्ञ का पहलू देख रहे थे तथा उस संबंध में चर्चा कर रहे थे। तो, यदि प्रेम हो, तो कठोरता आदि जो समस्त बातें हैं न, मान और अपमान - ये सब वहाँ प्रतीत ही नहीं होते। कठोरता की संवेदना हो सकती है। It is registered as harshness or brutality. उसका प्रतिकार भी होगा; पर चित्त में उसके कोई संस्कार नहीं रहते। उसकी ग्रंथि नहीं बनती। आत्मदया, self-pity नहीं, depression नहीं, नहीं तो फिर हम ही depressive psychosis के मरीज़ हो जायेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्वकर्म और संस्कार

प्रश्न : पूर्व-कर्म, पूर्व-संस्कार प्रबल रहते हैं क्या ? फिर अध्ययन और संस्कारो का महत्त्व क्या है ? शारीरिक व्याधि पूर्वजन्म का फल है क्या ? मानसिक व्यथा यह 'हमारी' निर्मिति है या 'प्रारब्ध की' ? कुछ व्यथाओं को शांत बुद्धि से विसर्जित करने पर वे पुनः वापस क्यों उठतीं रहतीं हैं ?

उत्तर : 'पूर्वकर्म, पूर्व संस्कार प्रबल रहते हैं क्या ? - पूछा गया है। पूर्व संस्कार : अब यह हमारा शरीर जो है, वह पूर्व संस्कारों का फल है। वह अपना प्रारब्ध है। आप कहेंगे कि माता-पिता ने शरीर दिया है न ? ठीक है। बात सही है। माता-पिता से शरीर प्राप्त हुआ है और माता-पिता ने जिसका प्रारंभ किया होगा - उनके गुण-दोष, उनकी वासनाएँ - अतृप्त, संतृप्त - ये सब कुछ हममें; biological and psychological inheritance; और ये समस्त बातें अब विज्ञान ने आपको दर्शायी भी हैं। कहाँ तक वह (आनुवंशिकता) जाती है ? कितनी पुश्तों (पीढ़ियों) तक जाती है कि जिस कारण यह जो शरीर आपको मिला है, वह पूर्व संस्कार का ही फल है, ऐसा मान लें ?

अब इस समय वह विषय प्रस्तुत नहीं और उतना समय भी नहीं कि - How thought chooses it's own parents ? How we choose our own parents ? मैं यहाँ genetic engineering की बात नहीं कर रही। इससे बिलकुल अलग बात अभिप्रेत है मुझे; पर इस प्रश्नकर्ता के प्रश्न तक ही यह विषय हमें सीमित रखना है।

पूर्व संस्कार प्रबल रहते हैं क्या ? तो, देखिये, आपका शरीर है। उस शरीर की कोई विशिष्ट रचना है। इसकी मर्यादाएँ हैं। शरीर में बुद्धि आई, शरीर में भरे हुए समस्त संस्कार आये; ये प्रबल तो हैं ही ! उनकी एक गति है और वह हज़ारो वर्षों की है; केवल माता-पिता के संस्कारों की ही नहीं - समूची मानव-जाति के संस्कारों की भी। उसमें स्तर पर स्तर हैं इन संस्कारों के; तो, वे प्रबल हैं, उनकी स्वायत्त (अपनी) गति है और वह गति हमारे स्वाधीन नहीं है - इस आशय से 'गीता' में 'प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति' ऐसा कहा गया है; पर पूछते हैं कि शिक्षण और संस्कार से इनका क्या नाता है ?

तो, इस देह में कौन-से संस्कार आये हैं, इसका अंदाज़ा आने लगता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। बालक के दूसरे, तीसरे,चौथे वर्ष में वे संस्कार दिखने लगते हैं। उनमें क्या वक्रता है, कौन-सी Weakness-कमज़ोरियाँ हैं, कमियाँ क्या हैं, त्रुटियाँ कौन-सी है, और क्या क्या excellences - शक्तियाँ है, विशेषताएँ हैं - ये सब समझ में आने लगता है, फिर उन वैशिष्ट्यों को संभालना, उनका संवर्धन करना और जो कुछ जन्मगत दोष या कमियाँ हैं, उन्हें निकालने के लिए पढ़ाई का प्रयोजन है। Dedging the weaknesses, encouraging the excellences, यह कार्य तो हम कर पायेंगे। अशुभ-निवारण, निराकरण का अन्य कोई मार्ग नहीं, शुभ संस्कार-चिञ्चन के सिवा !

तब, यदि योग्य वातावरण रहा, प्रेम का, स्नेह का और यदि आस्था रखनेवाले, कोई संरक्षण देनेवाले (अभिभावक) आयु के चौदह वर्ष तक बालकों को प्राप्त हुए, तो उनकी बहुत-सी आदतें बदली जा सकती है। तब तक उन्हें जीवन की ओर देखने की दृष्टि दी जाती है। उनका मनोबल बढ़ाने के उपाय किये जाते हैं; शारीरिक शक्ति बढ़ाने के उपाय किये जाते हैं। अर्थात् जो कुछ उनका 'प्रारब्ध-पूर्वसंस्कार' (प्रश्नकर्ता के शब्द कां उपयोग करना हो, तो) - यदि अनिच्छनीय दृष्टि से आने लगे, तो उससे जो गति आती है, उस गति के हम शिकार न बनें, बल्कि उसे पहचानें और उससे सावधान रहें। यह शक्ति शिक्षा की सहायता से और जो शुभ संस्कार प्राप्त हुए हों, उनकी सहायता से मनुष्य में आ सकती है।

प्रश्न करनेवाले को निश्चित पूछना क्या है ? - 'शिक्षा, संस्कार का महत्त्व कितना ?' मुझे ऐसा लगता है कि उनका महत्त्व अपार है और यह शिक्षा, संस्कार कब से प्रारंभ करें ? तो, **From the moment of conception (गर्भधारण के पल) the education begins.** Pre-natal condition (जन्म के पूर्व की स्थिति या अवस्था) में भी शिक्षा लेना संभव है। तो, शुभ संस्कार-सिञ्चन की बात मैं जो करती हूँ, वह कोई आपके किंडरगार्टन या नर्सरी को लेकर नहीं कहती। इस प्रकार यदि आपने सावधानी रखी, तो इन पूर्व संस्कारों पर विजय पाने की शक्ति मनुष्य में आ सकती है।

आगे चलें, 'शारीरिक व्याधि पर पूर्वकर्म का फल रहता है क्या ?' कौन-सी शारीरिक व्याधियाँ ? genetical deseases ? आनुवंशिकता से आयीं हुईं ? तो, फिर उन्हें पूर्वकर्म का कहना हो तो कहो; पर सर्वसाधारण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शारीरिक व्याधि - चूँकि हमारा शरीर से परिचय नहीं रहता, सृष्टि से परिचय नहीं रहता, "अन्नं एव औषधि: ।" - यह हमे ज्ञात नहीं रहता, आहार-विहार का हमें भान नहीं रहता, जीवनचर्या, ऋतुचर्या, दिनचर्या - किसीका भी ध्यान नहीं रहता, ज़िम्मेदारीपूर्वक जीते नहीं - इसमेंसे बहुत-सी बीमारियाँ होतीं हैं; पर कई शरीर के भीतर भी रहती हैं, हाँ । और ये जो शरीर के भीतर व्याधियाँ रहतीं हैं, ये कौन-सी उम्र में उठेंगी, - ६० वे, ८० वे, ५० वे वर्ष की आयु में - यह कह नहीं सकते; पर मुझे ऐसा लगता है कि यदि जीवन जीने की वैज्ञानिक पद्धति को हमने जान लिया, तो बहुत अच्छा रहेगा ! (मुझे ऐसा लगता है कि इस विषय पर डॉ. गुँडेजी आपसे कहते होंगे, उनका अधिकार बड़ा है । इस विषय का उन्होंने अध्ययन किया है और कहने की कला भी उन्हें अवगत है ।)

मानसिक व्यथा का पोषण न करें

(पूछा गया है कि) 'मानसिक व्यथा यह अपनी निर्मिति है ? हाँ जी, यह अपनी निर्मिति रहती है । व्यथा यानी घटनाओं की ओर देखने की अपनी दृष्टि, घटनाओं के साथ जीने की अपनी वृत्ति और अपनी प्रणाली - इनमेंसे व्यथा निर्माण हो सकती है; कारण ऐसा है - देखिये ! व्यथा यानी उस भावना की Continuity है न ? एक क्षणभर ही हुआ वह दुःख । कोई भी कुछ भी कहे या हमें जो अपेक्षित था, वह घटित न हुआ, धक्का लगा - यह Physical fact है न ? इस कारण कष्ट हुआ तथा पलभर चित्त को क्लेश भी हुआ । यह तो हम समझ सकते हैं; पर इस पलभर में जो क्लेश हुआ, इस क्षण में जो दुःख लगा, वह अगले क्षण तक कैसे गया, जी ? इसको Continuity किसने दे दी ? 'यह मुझे दुःख हुआ है' - ऐसा कहकर उस दुःखद घटना को आप यदि अपनी अनुभूति बनने नहीं देते, तो फिर वह इस क्षण का दुःख अगले क्षण तक जानेवाला नहीं । It is the habit of converting events into experiences of pleasure or pain that stimulates the imaginary continuity. Pain is a fact. Suffering is created by the mind. और इस व्यथा को कितना दीर्घकालीन बनने दिया जाये, वह आप पर निर्भर है । मित्रों, **Religion is nothing but ending the psychological pain.** दुःखों का अन्त करने के लिए धर्म है, और यह दुःख याने यह व्यथा !

कब होता है दुःख ? जिस समय हमारी अन्यों से अपेक्षा रहे, समाज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से अपनी कोई अपेक्षा हो, उस समय हमें दुःख होता है। काम करना हो, मकान बनवाना हो, इंजीनियर है, कॉन्ट्रॅक्टर है, कुछ साहित्य लाना है, विद्यालय चलाना है, संस्था चलानी है, साथ में कार्य करना है, उस स्थान में करना पड़ता है, आयोजन करना पड़ता है, सबकुछ तय करना पड़ता है, उसका क्रम निर्धारित करना पड़ता है और वहाँ अपेक्षा रखनी ही पड़ती है, पर मानवीय संबंधों में एक-दूसरे के संग जीते हुए हम कैसी अपेक्षा रखें ? और किनसे ? और किस कारण रखते हैं ? **When we do not know ourselves completely, how are we entitled to expect from other ?** और ये जो अपेक्षाएँ रहतीं हैं न, उनका मूल क्या है ? मेरे साथ एक कदम उठा के चलो और देखो तो ! क्योंकि यह सहयात्रा है।

अपेक्षा के मूल में क्या है ? अपेक्षा के मूल में है हमारी अपने खुद के बारे में की गई कोई धारणा। **One has certain image about oneself. Recognition of that image by others gives us pleasure.** उसमें हमें **security** लगती है, सुख भी लगता है और उस **image** को यदि **recognition** मिला नहीं, उसकी उपेक्षा हुई या आपकी जो **image** है, धारणा है, वह झूठी है - ऐसा किसी और ने कहा, तो आपको ठेस पहुँचती है, दुःख होता है। अध्यात्म है - स्वयं की कोई भी प्रतिमा, धारणा, मान्यता न बनाकर जीना। यही तो मौन का अर्थ है। There is a movement of knowledge in you, without creating the knower, the movement of experiences in you without creating the experiencer. आपने ज्ञानार्जन किया भी, पर 'मैं ज्ञानी हूँ' - ऐसी यदि अपनी स्वयं की मूर्ति बनाई नहीं; धर्म को जीवित रखा, पर 'मैं धार्मिक हूँ' - ऐसी प्रतिमा बनाई नहीं, तो आप सौम्यता, स्निग्धता, सज्जनता से जिये; पर 'मैं सज्जन हूँ, मैं साधु हूँ, मैं संन्यासी हूँ' - ऐसी प्रतिमा यदि आपने नहीं बनायी तो ! फिर धक्का लगेगा किसको ? धक्का लगता है इन प्रतिमाओं को ! The images get Shattered (चूर चूर हो जातीं हैं) because our movement of relationship is nothing but projecting the images that we imagine other people would like. किसे अपनी मूर्ति कैसी अच्छी लगेगी, कैसी प्रतिमा प्रिय होगी, यह देखकर हम वैसी वह (प्रतिमा) extend करते रहते हैं, project करते रहते हैं। हम जैसे हैं, वैसे प्रकट नहीं होते। हम जैसे हैं, वैसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकट हुए और किसीको प्रिय लगा, किसीको अप्रिय लगा, किसीने ईर्ष्या की, किसीने द्वेष किया - It is their problem, not ours'. किसीने हमारी ईर्ष्या की और हमसे क्षुद्रता से व्यवहार किया, उसका दुःख हमें किस कारण ? यह तो मेरी कुछ समझ में ही नहीं आता; तब हमारी जो खुद के बारे में कोई न कोई योग्यता-अयोग्यता - इन सभी के संबंध में कल्पना रहती है, वही अपेक्षा के मूल में रहती है ।

'सब क्षणिक है' - यह हम मानते नहीं

तब, दुःख का मूल वहाँ पर है । व्यथा या दुःख की दूसरी जड़ ऐसी है कि हम खुली आँखों से देखते रहते हैं कि यह जो नामरूपात्मक, पदार्थात्मक जगत् है,- गतिमान, गतिशील, गतिवन्त - ऐसा जो जगत् है, इसमें सतत कुछ न कुछ परिवर्तन होता रहता है । It is a Flux of changes. 'सर्वं अनित्यम् ! सर्वं क्षणिकम् !' जो रूप इस क्षण में है, वह अगले क्षण में नहीं, इस क्षण में जो वृत्ति है, वह अगले क्षण में रहती नहीं - यह हम देखते रहते हैं, प्राणी, पशु, पक्षी - इन सबको मरते हम देखते हैं, वृक्षों को सूखते हुए, मरते हुए देखते हैं और फिर भी ऐसा मानते हैं कि हमारे परिवार में लोग और खुद हम जैसे कभी मृत्यु पायेंगे ही नहीं, और यदि मृत्यु सचमुच आयी, तो लगता है '- कितना बड़ा अनर्थ हुआ ! अरे, विश्व में देखता नहीं था क्या ? अपना संबंध रहा तो, यानी अपने संबंध में कोई आया, इसलिए क्या वह जायेगा नहीं ?

तो, यह 'सर्वं अनित्यम् । सर्वं क्षणिकम् ।' - जो है, यह परिवर्तनशील जो है, - उसमें हम कुछ अपरिवर्तनीय ढूँढ़ते हैं, लेकिन पदार्थों के जगत में अपरिवर्तनीय कुछ भी होने की सँभावना नहीं । और संबंधो में आज आपसे जिन्होंने ठीक वर्ताव रखा, वे कल भी अच्छे-भले रहेंगे ही या जो आज कटु कहते हैं, वे कल भी वही करनेवाले हैं, यह हम किसके बल पर और किसके आधार पर मानें ?

तो आज का, भविष्य का, भूतकाल का विचार न करते हुए, जिस क्षण में जो सामने आया, उसीके साथ हम जी लें । उसमें हमें सुख हुआ तो उत्तम है । दुःख में भी जी लें । भले आँसू निकल आये, तो भी क्या आपत्ति है ? क्लेश हुआ, दुःख लगा; पर उसे एक क्षण से दूसरे क्षण तक, एक दिन से अगले दिन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तक घसीटकर, खींचकर, तान कर ले जाने में कोई अर्थ नहीं। It is a crime against life to allow the shadow of what has happened this moment to be stretched over the next moment; क्योंकि जो next moment या अगला क्षण है, वह उस जीवन की अमरता का, सनातनता का नया ही रूप है। उसका उस पहले क्षण से कुछ भी संबंध नहीं। 'क्षणे क्षणे नवनवताम् उपैति।' - ऐसा यह जीवन है।

अतः इस क्षण में हुए सुख को, दुःख को सम्मुख-अभिमुख रहकर पूर्णतः - संपूर्ण मुक्तता से हम जियें और जीने के पश्चात् वहीं उसका अन्त ! उसकी स्मृति न बनने दें। उसका चित्त पर संस्कार न पड़ने दें। Live it and die to it. ऐसा कर सकें, तो व्यथा होगी क्या ? फिर अपेक्षा रहेगी किसीसे ? जो हम केवल सामाजिक कार्य करते हैं, उनकी बात छोड़ दो। वहाँ योजना तथा सहकार्य से कार्य करना, किसीने काम नहीं किया या ग़लत किया, तो उसे निकालना, उसे दूर करना - ये सब बातें करनी पडेंगीं। अगर आप कोई नाटक कर रहे हों और उसमें किसीको राजा की भूमिका, किसीको चपरासी की, तो किसीको भिखारी की भूमिका दी गई और यदि अपनेमेंसे किसीने बीच में कह दिया कि - मैं अब नहीं होता राजा ! अब मुझे रानी की ही भूमिका करना प्रिय लगता है ! - तो रसभंग हो जाता है कि नहीं ? उसी प्रकार हमें यह जो जीने का दायित्व प्राप्त हुआ है, उसे हमें स्वीकार करना चाहिए। पर, अब मुझे दुःख हुआ, अतः मैं जीऊँगा ही नहीं, अगले क्षण से मेरा संबंध ही नहीं - ऐसा कहकर, यह जो इस क्षण में घटित हुआ, उसकी स्मृति लेकर और उस स्मृति को ही मन में बार-बार दोहराते हुए उस स्मृति के मृत शरीर के साथ जीना, यह जीने के रंगमंच से, पलायन करना है। All the psychological suffering is an escape from the responsibility to live. तो, व्यथा जिसे आप कहते हैं, यह व्यथा जो हैं, वह मनोनिर्मित ही है।

(पूछा है) 'कुछ व्यथाओं का शांत बुद्धि से विसर्जन किया, तो भी वे पुनः बार-बार क्यों उद्‌भूत होतीं हैं ?' क्योंकि सिर्फ़ आप कुछ व्यथाओं का ही विसर्जन कर रहे हैं; पर व्यथा होती ही क्यों है ? - इसके मूल कारण तक हम नहीं जाते। तह में जाना चाहिए, जी ! **The ending of Suffering is the content of religiosity.**

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्लेश व दुःख

दुःख ही होनेवाला नहीं - इतनी समझ इस जीवन की तथा जीने के कर्म की, जीने की युक्ति की आनी चाहिए। क्लेश होंगे, हाँ ! 'Pain' ! but not 'Suffering'; और इसकी एकदम पराकाष्ठा का उदाहरण आपको दे दूँ ?

१९८२ में अमेरिका के कॅलिफोर्निया राज्य के ओहाय गाँव में Dakgrove स्थान में कृष्णमूर्तिजी की सभा चल रही थी। कृष्णमूर्तिजी की प्रश्नोत्तरी की सभा होगी, discussion meeting होगी, शायद ! तो, एक सज्जन खड़े होकर कहने लगे कि - आप इतनी सारी बातें सुनाते हैं, but I am dying of cancer ! उनके मन में वह दुःख बना रहा होगा; अगर उन्हें cancer हुआ होगा, तो उसका उनके मन में दुःख होगा। सचमुच जैसे कि वे कृष्णमूर्तिजी पर क्रोधित होकर कह रहे थे कि आप ये समस्त बातें कह रहे हैं और I am dying of cancer. तो कृष्णमूर्तिजी कहते हैं - "No Sir ! You are standing, you are not dying. Sir, you are standing. Please sit down. You are not dying. Death comes only once." उस सज्जन के मन में, कॅन्सर से मैं मरनेवाला हूँ - यह विचार सतत चल ही रहा था। - 'I am going to die, I am dying of cancer, I am dying.' - वही उनका जाप चल रहा था। वर्तमान में जीना बड़ा तप है, जी ! अतीत की स्मृतियाँ से वर्तमान में जीना प्रदूषित न हों तथा उधार लिया हुआ (न हो) - काल्पनिक - जो 'कल' या 'भविष्य' है, उसकी छाया भी उस पर न पड़े। सावधानता से, समग्रता से जो जीवन सम्मुख है उसे निहारें, उसको प्रतिसाद दें, जूझ भी लें उसके साथ और उसी समय उसे समाप्त भी करें। 'योगियां साधली जीवनकला.' यह जीवन की कला ऐसी है कि जिस क्षण में जो जिया जाता है, वह वहीं समाप्त होता है। शरीर पर उसके संस्कार रहेंगे; क्योंकि शरीर किशोर रहता है, युवक होता है, प्रौढ़ बनता है, वृद्ध बनता है और एक दिन उसे मृत्यु की घटना से गुज़रना पड़ता है। तब शरीर पर संस्कार होते नहीं, ऐसा नहीं; किन्तु consciousness पर उसके कोई संस्कार अपनी मुहर नहीं लगाते। It is not recorded. Suffering does not get recorded in the consciousness though the pain is felt physically.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और एक घटना की याद आयी, कश्मीर की। सन् १९५९ - हाँ, उनसांठ ही होगा ! कृष्णजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं था और पहलगाम से श्रीनगर को आये थे तथा डॉ. करणसिंग के राजमहल में ठहरे थे। हम उस समय कश्मीर में थे। दादा धर्माधिकारीजी को कृष्णजी से मिलने जाना था। मैं साथ थी। हम गये। मुझे लगता है कि शंकररावदेव भी साथ थे। तो, दादाजी ने सहज कहा कि- आपको कितना दुःख हो रहा होगा !'

उस समय कृष्णजी बीमार थे और घुटने में कष्ट था। वे उठकर टहल नहीं सकते थे। You must be suffering - ऐसा कुछ वाक्य दादाजी के मुँह से निकल पड़ा। कृष्णमूर्तिजी क्या एक शब्द भी जाने देनेवाले थे ! वे कहते हैं - "No sir ! no sir ! the pain is there only in the knee. Not here, - (हृदय की ओर अंगुली दर्शाते हुए) The pain is there in the knee and the needful is being done. It's not here". 'Pain' और 'Suffering' देखी, शब्दों की पवित्रता ! शब्द को कितना सँभलकर स्पर्श करना चाहिए ! देखा ? The pain is there. मेरे घुटने में दर्द है, जी ! कष्ट है, घुटने में ! व्याधि का शरीर को कष्ट है। मेरे मन में उसकी व्यथा नहीं है।

इतना अंतर हमें यदि करने आया, तो मैं ऐसा कहूँगी कि हमें जीने की कला साध्य हुई।

प्रश्न : हमें प्राप्त हुई चीज़ों के बारे में, औरों को यदि वैषम्य, दुःख लगता हो, उसका उन्हें यदि शारीरिक-मानसिक कष्ट होता हो, तो उसका दायित्व हम पर आता है क्या ?

उत्तर : बिलकुल नहीं। It is their funeral. Let them attend to it.

प्रश्न : 'पुण्य पर-उपकार, पाप तें पर-पीड़ा।' - 'पुण्य पर-उपकार है और पर-पीड़ा पाप है।' - हमारे सुख के कारण अन्य कोई दुःखी रहता है, तो वह पाप कहा जा सकता है क्या ?

उत्तर : जहाँ दुःख देने का उद्देश्य होगा, वहाँ पाप है। That which divides you from others is sin. और पाप क्या होता है ! तो, आपके चित्त में यदि उद्देश्य होगा, अन्यों को कष्ट देने का, दुःख देने का, अपमान करने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का, उपेक्षा करने का, तो उसके कारण जो निष्पन्न होगा, वह पाप है; परंतु आपके जीने से यदि अन्यों को दुःख होता हो, वे आपके साथ स्वयं की तुलना कर रहे हों और उन्हें वैषम्य लगता हो, तो वह उनका प्रश्न है। वह अपने सर पर लेने की भूल न करें। उद्देश्य बिना पाप या पुण्य नहीं ! और सच कहूँ ? यदि कोई सच्चा जीवन-साधक रहा हो, तो वह पाप-पुण्य की बहुत चिंता न करे, पाप और पुण्य की परिभाषा की ओर लक्ष-ध्यान न दे। "तेणें पापात्मकें पुण्यें स्वर्गा जाइजे." और "क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।" पुण्य के भी पापात्मक कहने का साहस किया है संतों ने ! यह तो उचित ही है कि समाज में हम रहते हैं, तो एक-दूसरे को दुःख क्यों दें ? समाज के एक घटक के नाते वह हमारा दायित्व है, पर कोई स्वयं को यदि कर ही लेता है दुःखी, तो उसका दायित्व हम पर नहीं आता।

साधना और लाभ

प्रश्न : 'बच्चे, बहुएँ, पौत्र-पौत्रियाँ - इनकी सुख-सुविधा देखते हुए संसार चलानेवाली मुझ जैसी प्रौढ़ गृहिणी को मनःस्वास्थ्य के लिए कौन-से साधन लाभ-दायक रहेंगे ?

(१) केवल आधा-पौन घंटा मौन या (२) दिन में दो समय विपश्यना या (३) इष्टदेवता की मूर्ति का ध्यान मन में लाते हुए दो बार मन में नाम--साधना, जप -इनमें से कौन-सी साधना लाभदायक रहेगी ?

उत्तर : लाभ किस कारण देखते हो जी, साधना में ? यहाँ लाभ और हानि का कहाँ प्रश्न आया ? आपको विपश्यना करने में आनन्द आता है, क्या ? क्योंकि आपने ऐसा लिखा है कि बच्चे, बहुएँ, पौत्र-पौत्रियाँ हैं, इसका मतलब कि जीवन की आधी मंज़िल से तो आगे गया है काम। 'जीवेत शरदः शतम्।' इसमेंसे पचास शरद तो गये होंगे। शेष, कहो कि आधे रहे हैं।

आपको विपश्यता में आनन्द आता है क्या ? क्योंकि 'स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथ-गाथा।' अब शेष रहा जीवन आपके आनन्द के लिए है। मौन में बैठने में आनन्द आता है क्या ? (तो) वह करें। विपश्यना में आनन्द आता है क्या ? (तो) वह करें और आपको इष्टदेवता के सम्मुख जप करने में आनन्द होता है, तो वह करें। आनन्द होता हो, वह करें। तनाव-खिँचाव से कुछ न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करें। सहजता से होना चाहिए। जीने की कला साध्य होने का प्रमाण क्या ? तो, यही कि उसमें सहजता रहती है। Effortlessness in whatever you do.

हिंसकता और दोषैकदृष्टि

प्रश्न : मेरे परिवार की एक व्यक्ति अति हिंसक वृत्ति की है और दूसरी व्यक्ति परम नैराश्यवादी - great cynic है। मानसिक उपचार का कोई लाभ नहीं हुआ। ऐसे समीप के व्यक्ति के संग कैसे व्यवहार करें ?

उत्तर : मानसिक उपचार का लाभ नहीं हुआ। इसका अर्थ व्याधि असाध्य नहीं तो भी उसका बहुत प्रकोप है; यानी acute condition है, ऐसा तो प्रश्न से लगता है और मुझे इनके संग जीना है, ऐसी भी आवश्यकता (प्रश्न में) दिख रही है; क्योंकि वे मंडली समीप की है तथा उनके संग रहना है मुझे। मेरे परिवार के हैं और उन्हें सँभालने का दायित्व मुझ पर है, ऐसा भी अर्थ मैं इस प्रश्न से निकालती हूँ।

तो आईये, कल्पना करते हैं कि मेरे पास कुछ परिवार है और ऐसे लोग हैं, तब मैं क्या करूँगी ? सबसे पहले मैं यह खोज लूँगी कि मुझमें कहीं कोई हिंसक वृत्ति तो नहीं ? क्योंकि मुझे यदि उपचार करना है, उनके साथ रहकर जीते-जीते यानी treatment through relationship itself. तो, मेरा व्यवहार ही उनकी Therapy होनी चाहिए। मेरा व्यवहार यही उपचार-योजना बनानी चाहिए। मेरे व्यवहार से, कहने से, दृष्टि से, उपस्थिति से - अरे ! उपस्थिति की भी एक परिभाषा होती है, दृष्टि की भाषा होती है तथा वस्तुशक्ति होती है - तो, मेरी पहली ज़िम्मेदारी यह होगी कि मुझमें हिंसकवृत्ति की कहीं भी जड़ें हों, तो उसे ढूँढ निकालना चाहिए और 'अहिंसा अभावो वर्तते।' संपूर्णतया आक्रमण नहीं, भय नहीं (ऐसे होना चाहिये); क्योंकि भय से हिंसा होती है, Assertion से arrogance. Arrogance यानी हिंसा है; तब अगर वह अपनेमें हो, तो निकाल फेंके, तो फिर, 'तत्सन्निधौ वैरत्यागः। अहिंसा - प्रतिष्ठायाम्।' अहिंसा की यदि प्रतिष्ठा हुई, तो उस स्थान में 'तत्सन्निधौ वैरत्यागः।' अजी ! बाध-शेर -ये भी अपना वैर त्याग देते हैं, फिर ये तो मेरे परिवार-जन हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आग से आग नहीं बुझती

साधक की दृष्टि कहती हूँ, जी ! मैं कोई डॉक्टर हूँ नहीं और psychiatrist भी नहीं । मुझे उसका ज्ञान नहीं । समझमें भी नहीं आता उसमेंसे कुछ ! पर जीवन विदित होता है और यदि मुझे जीने पड़ेगा, तो अहिंसा की साधना करने के लिए, वह जो हिंसक व्यक्ति है, वह मुझे सहायता करती है, ऐसा मैं समझती हूँ । अर्थात् मेरे चित्त में उसके Violence से अहिंसा का उद्‌गम होगा चाहिए । (Violent – ऐसा होगा, हिंसक बनता होगा और हाथ-पाँव बाँधने पड़ते हों, तो हाथ-पैर बाँधकर भी रखना पड़ेगा । यह सब तो करना ही पड़ेगा । वह मुझे (यहाँ बैठकर) बताने की आवश्यकता नहीं, उसकी हिंसा से परिवार का संरक्षण करना पड़ेगा ।

पर मैं उस ओर मुड़नेवाली नहीं हूँ । आप कह रहे हैं कि मानसिक उपचार का उपयोग नहीं । तो, उसके भी परे अब कुछ आवश्यक है और उसके परे तो सिर्फ़ अध्यात्म ही रहता है, जी । अन्य क्या रहेगा ? और सत्य का सौरभ यानी अहिंसा, आत्मा का लावण्य और आर्जव यानी अहिंसा ।

पूर्ण अहिंसक रहिये

तो, मुझे अपनेमें वह जागृत करना चाहिए और वह जो हिंसक व्यक्ति घर में है, उसकी हिंसा से होनेवाला जो उपद्रव है, वह मेरी अपनी साधना का अवसर मान लेना चाहिए । आप देख रहे हैं, संबन्ध बंधनापादक नहीं हैं । संबंधों को मुक्तिदायक बनाने की शक्ति हममें बंधनापादक नहीं है । संबंधों को मुक्तिदायक बनाने की शक्ति हममें है; इसलिए उस व्यक्ति के हिंसक व्यवहार से मेरा चित्त प्रक्षुब्ध नहीं होगा, 'क्यों मेरे भाग्य में इस व्यक्ति से संबंध आया' - ऐसा मुझे लगेगा नहीं और वहाँ हिंसक वृत्ति का बल तो यहाँ अहिंसक वृत्ति का बल । आग लगी हो और उसे बुझानी हो, तो जल ही लाना पड़ता है न ! और आग लगाकर आग का प्रतिकार नहीं होगा, जल ही लाना पड़ता है । 'विश्व झाले वह्नि - तरी सन्तें व्हावें पाणी.' - तो, सन्तों को ही पानी बनना पड़ता है, जब सारे विश्व में आग लगती है तब ! 'ताटी उघडा ज्ञानेश्वरा.' - तो वह हिंसक व्यक्ति आपको संत बना देगा - यदि आप सावध रहे तो ! अब आप कहते हैं कि अन्य व्यक्ति है, वह great cynic (भारी उद्धत) है और ऐसे व्यक्ति के संग हम कैसे जियें ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बड़ी करुणाजनक स्थिति है । ये दो छोर हैं । Cynicism and Violence. The Violence inverted, becomes cynicism. वह अंदर गया । भय, आक्रमण, सब भीतर गया । भय व आक्रमण - भय (fear) और aggression (आक्रमकता) - ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, जी ! एक ही सिक्के की दो सतह हैं । जहाँ एक रहेगा, वहाँ दूसरा रहता ही है । भय है और आक्रमण नहीं - इसकी संभावना ही नहीं रह सकती ।

अब यह नैराश्यवादी या cynic व्यक्ति है, उसके संग जीने में - मुझे ऐसे जीने का यदि प्रसंग आया तो - मैं एक देखूँगी कि - तू cynic है - ऐसा उसे कभी नहीं कहूँगी । वहाँ तो केवल स्नेह-सिञ्चन ही करना चाहिए । एक Pathological depression की स्थिति आ सकती है cynisism से और यदि ऐसी स्थिति आ गई होगी – melancholia (विषाद रोग) ऐसी भी स्थिति उस रुग्ण की ही कहना चाहिए उन्हें – हुई होगी, तो वहाँ पर स्नेह-सिञ्चन इसलिए कहती हूँ कि intentional expression of your affection. नहीं तो सामान्यत: हम इतनी अभिव्यक्ति नहीं करते । परिवार में एक-दूसरे में स्नेह वैसे गृहित ही होता है, ऐसा कुछ व्यक्त नहीं करना पड़ता है; पर ऐसी यदि व्यक्ति हो; (तो ऋजुता प्रेरित स्नेह की मुखर अभिव्यक्ति छू ले सकती है !) किस कारण से नैराश्य आया हो ? क्या हुआ ? - यह तो आपके प्रश्न से समझ में नहीं आता; परंतु परिवार का प्रश्न है, तब तो उस व्यक्ति को जितना स्नेह दे सकते हैं और उसमें जो कुछ गुण होंगे, To draw out the best in the person. 'तू cynic ही है, तू किसी काम का नहीं है । इससे यह कभी होगा ही नहीं ! तू ऐसा ही है !' - (इस प्रकार का कोई भी) No value judgement passed on the action of a cynic. हम दिनभर हमारे Value judgement की ही चर्चा करते रहते हैं और उसका दुष्परिणाम होता है, देखो ! तो, Value judgement नहीं । स्नेह की अभिव्यक्ति उद्देशपूर्वक एक उपचार (उपाय) समझकर, चिकित्सा के रूप में करें तथा उस व्यक्ति में अपनी जानकारी के अनुसार जो कुछ वैशिष्ट्य होंगे - कोई creativity हों, वह creativity - वह सृजनशीलता बाहर आये ऐसे यदि कोई उपाय किये गये, तो मुझे लगता है कि आपको उसके साथ रहना संभव होगा । वह एक बड़ा तप ही है, ऐसे व्यक्ति के साथ जीना ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न्यूरोसिस (ज्ञानतंतु का रोग) और ध्यान

प्रश्न : Excitement और depression को डॉक्टर लोग neurosis - ऐसा कहते हैं और उसे आजीवन chemical treatment दी जाती है। इस पर आजीवन meditation का उपयोग करने के लिए आप मार्गदर्शन करेंगे क्या ?

उत्तर : नहीं करेंगे; क्योंकि वह व्यक्ति meditation का मार्ग अपनाने की अवस्था में नहीं है। देखिये, meditation यानी concentration नहीं। धारणा का अभ्यास यानी meditation नहीं। meditation कोई प्रक्रिया नहीं, कोई क्रिया नहीं। देखो, समस्त मानसिक ऐच्छिक और अनैच्छिक गतियों का शमन होने देना, उन्हें शान्त होने देना और उनकी शान्ति में प्रकट होनेवाले शून्य में प्रतिष्ठित होना, इतना पुरुषार्थ है, medication में।

आज एकदम excitement (आवेश-उत्तेजितता) है या depression है, उस जगह वह सहन करने की क्या उनकी शारीरिक स्थिति है ? The energies concealed and contained in the emptiness have hundred times, thousand times, more velocity and momentum than the momentum of thoughts, emotions etc. - और यदि विचारों की और भावनाओं की गति का आपके शरीर पर परिणाम होता है, लिवर पर होता है, किड्निं पर होता है, pancreatic gland (अग्नाशयी ग्रंथि) पर होता है, intestines (आँतों) पर होता है, तो फिर शून्यावस्था में प्रतिष्ठित होकर, जिस समय वह energy of the wholeness begings to get activised, वह व्यक्ति यह सब कैसे सहन करेगा ? अतएव जिन्हें neuroses (ज्ञानतंतु का रोग) हुआ हो, वे meditation का मार्ग अपनाएँ ऐसा मैं तो कदापि कहनेवाली नहीं। हाँ, ऐसी व्यक्ति को यदि concentration का (एकाग्रता-धारणा का) अभ्यास करने आया, यदि उनके समीप बैठकर करवा लेना हो पाया, तो ठीक। धारणा-शक्ति बढ़ायें। Depression क्या या exitement क्या ! धारणा-शक्ति का ही अभाव है न ! या धारणा-शक्ति की अपरिपक्वता है। They cannot contain what is happening; और यह जो containing है, वह nervous system का कार्य है न ! Chemical system का कार्य है न ! वह हमें समझ में नहीं आता; अत: हम अकारण ही उससे घबराते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं या उसे अवास्तविक महत्त्व देते हैं।

तब, जहाँ depression है या excitement है, वहाँ पर नाडी-तंत्र, रसायन-तंत्र इस ध्यानावस्था को धारण नहीं कर सकते। उन्में वह शक्ति नहीं है; तो फिर आप उसकी कुछ सहायता कीजिये। उसे नाम-स्मरण का आधार दीजिये, उसके सम्मुख उसको प्रिय लगनेवाली ऐसी मूर्ति रखिये। उसे श्वासोच्छ्वास पर ध्यान देने को कहिये। उन्हें विचारों की ओर देखने को मत कहिये, क्योंकि वह स्वयं की ओर देखना, उसे सहन नहीं होगा, Depression (गमगीनी -अवसाद) बढ़ेगा। Nervous break-down भी होगा या जो excitement हैं, उसमेंसे Violence (हिंसा) की ओर भी मनुष्य जायेगा। वह खिलवाड़ नहीं। You cannot go around these things casually and lightly. They are dead serious things. एकदम गंभीर चीज़ है वो ! Meditation अति सस्ता बना दिया है लोगों ने ! यह कोई बच्चों का खेल नहीं है, हं ! 'अध्यात्म नव्हे लेकुरांच्या गोष्टी !' अर्थात् अध्यात्म लड़कपन का खेल नहीं है ! तब, neurosis के रोगी को आप शून्यावस्था या Meditation आदि की ओर कृपया न ले जायें। उसे सहायता चाहिए, Therapy चाहिए। बहुत-सी हठयोग की क्रियाएँ, The Therapeutical (चिकित्सीय, आरोग्यकर) use of yogasanas, pranayams, concentration, has been experimented with, in Europe. The Yoga and Ayurveda University in Italy, The Wholistic Education Centre near Milano in Italy and such centres in West Germany and others, have explored the possibility, therapeutical (रोगहर) view of the whole thing. तो, योग-शास्त्र में इसके उपाय हैं। उपचारों की जहाँ आवश्यकता है, वहाँ आप ध्यान और समाधि ये आयामांतर (जो चीज़ें) हैं, वे लायें नहीं ! ये कोई नामांतर, वेषान्तर नहीं, यह केवल अवस्थान्तर भी नहीं। यह अल्पकालीन भी नहीं। यह उड़ान है। यह आरोहण-उत्थान है ! Quantum jump of consciousness, from one orbit to the other, from one dimension to the other. (एक आयाम मेंसे उससे नितान्त भिन्न परिमाण में आयामीय या गुणवत्तात्मक सद्योत्थान). फिर उसकी जो अज्ञात ऊर्जाएँ हों, वे सहन नहीं हुईं तो ?! कई लोग यह शक्तिपात, कुंडलिनी जागृति और क्या क्या उलझनें कर लेते हैं। वे ऊर्जाएँ जागृत होने पर पूरे शरीर और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन का शुद्धीकरण न हुआ हो, तो वे सहन नहीं होतीं, धारण नहीं होतीं और फिर कहीं किसी उन्माद में आदमी फँस जाते हैं। कभी-कभी उनकी समस्त शक्ति का ह्रास हो जाता है, nervous break down (ज्ञान-तंत्र का छिन्न-भिन्न होना) में जाते हैं। ऐसे एक-दो नहीं, जी, सैंकड़ों नमूने न्यूझीलॅन्ड, ऑस्ट्रेलिया से हवाई तक, दक्षिण-उत्तर अमेरिका से युरोप के देशों तक देखे गये हैं।

अतएव-इसलिए ही मैं कहती हूँ कि Meditation उस व्यक्ति के लिए नहीं।

प्रश्न : मेरे सम्मुख कोई भी प्रश्न. रुकावट या समस्या आने पर वह प्रश्न सुलझाने से पहले मेरे मन में प्रथम उसकी negative sides - आतीं हैं और उसके बाद Positive sides ध्यान में आतीं है। अर्थात् प्रश्न हल करते समय समस्त पहलुओं को ध्यान में रखकर ही प्रश्न को सुलझाती हूँ।

उत्तर : फिर अब क्या प्रश्न शेष रहा ! अब कुछ प्रश्न रहा नहीं; पर प्रश्न पूछनेवाले पूछ रहे हैं कि प्रथम मन में उस प्रश्न का नकारात्मक पहलू क्यों आता है ! घर के अन्य व्यक्तियों के जीवन में वैसा नहीं होता, मेरे जीवन में क्यों होता है ?

ऐसा होगा कि जिस व्यक्ति ने यह प्रश्न पूछा है उन्हे, - मैं जो कुछ करती हूँ - करता हूँ - वह एकदम सौ प्रतिशत बराबर ही होना चाहिए, सभी को प्रिय लगना चाहिए, वह निर्णय निर्दोष ही रहना चाहिए - ऐसा सब लगता होगा। Terribly concerned about doing right things, doing things correctly - ऐसा कुछ होगा, तो फिर - 'ऐसा तो नहीं होगा, इसका परिणाम ? इसका परिणाम वो तो नहीं होनेवाला ? इससे विपरीत तो नहीं होगा ?' - ये समस्त शंकाएँ प्रथम आतीं हैं। Hyper - Sensitivity about the correctness of the decision or action. कुछ व्यक्तियों के मन की ऐसी रचना ही रहती है और यह यदि केवल उस व्यक्ति के मन की रचना का ही प्रश्न न हो, तो फिर हमें जाना पड़ेगा इसके पीछे।

At the moment of conception, either of the two, the husband or the wife must have been haunted by some fear or some inferiority complex, and the quality of the conscious-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ness got inhibited, at the very moment of conception. - ऐसा भी हो सकता है।

पर यदि प्रश्न के दोनों पहलुओं को देखकर पश्चात् निर्णय लेने की सावधानता है, तो किस कारण प्रारंभ में नकारार्थी पहलू आता है ? - इसका विचार करके मस्तिष्क को कष्ट न दें। 'अन्यों को नहीं, मुझे क्यों ? - (अरे ! भाई,) ठीक है। किसीमें कुछ दोष रहते हैं। किन्हीं में कोई त्रुटियाँ रहतीं हैं। आपमें यह कमी है; पर ये कारण हो सकते हैं और मनोविज्ञान की तो मैं कोई expert - तज्ञ नहीं हूँ। कोई specialist - विशेषज्ञ हों, तो उनसे पूछें; पर मुझे - दो ही कारण संभव है, ऐसा लगता है। A terrible concern for doing right things or something wrong at the moment of conception with either of the couple.

निश्चय क्यों टिक नहीं पाता ?

प्रश्न : निश्चय से कोई बात करनी हो, तो दो-ढाई महिनों से अधिक समय वह टिक नहीं पाती। फिर से निश्चय किया गया, तो भी नहीं टिकती। तो, जैसा तय किया है, वैसे ही सतत करता रहूँ, इसलिए मैं क्या करूँ ?

उत्तर : दो-ढाई मास कार्य करना हो पाता है - यह कुछ कम है क्या ? कोई तो रात को निश्चय करते हैं और सुबह बदल देते हैं और आज के संकल्प कल टिक नहीं पाते उनके। दो-ढाई मास टिकते हैं न ! ठीक है। दो-ढाई मास टिके उसके पश्चात् बदल गये, तो फिर से नया संकल्प करें। अजी ! युक्ति करनी पड़ती है ! दो-ढाई मास नहीं, मैं कहती हूँ कि सातत्य से एक मास रहा, सवा मास रहा, तो भी कम नहीं। मैंने किसी विषय के संदर्भ में परसों कहा था कि हमें स्वतंत्रता की आदत नहीं है। When we are on our own and there is no compulsion from outside to get things done by us, फिर उस स्वाधीनता में और स्वतंत्रता में हमारा initiative- अभिक्रम-(स्वायत्त पहल) टिक नहीं पाता। हमें लत लगी हुई है कि - To live is to react to compulsions of situation. फिर कोई परिस्थिति न रहे, तो हम निर्माण करते हैं और we go on reacting - a chain of reactions to compulsions outside. तो, किया हुआ निश्यय दो-ढाई मास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहता हो, तो इसके कोई कारण होंगे और फिर वह टूट जाता है। तो कोई आपत्ति नहीं, फिर से करें। - 'केल्याने होत आहे रे, आधी केलेचि पाहिजे।' अर्थात् करने से होता है रे! पहले करना चाहिए।

सत्सङ्ग

यह एक मार्ग है और यह नहीं, तो फिर ऐसी व्यक्ति अगर उनके परिचय के कहीं सत्सङ्ग के स्थल हों या आश्रम हों, तो वहाँ जाएँ, जहाँ उन्हें आश्रम के आँगन में कदम रखते ही कोई 'मेरी शरण में आओ;' - ऐसा न कहता हो, आपको यदि आपकी स्वतंत्रता कायम रखते हुए जीने मिलता हों, तो; कुछ बारह मास तक वह व्यक्ति वहाँ ज़ाकर वास करे और किये हुए निश्चय वहाँ स्थिर रहते हैं क्या ? - वह देखे।

मास-दो मास हुए और निश्चय अल्प-सा क्षीण पड़ रहा है ऐसा भास हुआ, तो आपके कोई रिश्तेदार हों, जिन्हें इस विषय में रुचि हों, रस हों, जो सत्सङ्गी हैं, उनसे वार्तालाप करें, फिर एक-दूसरे को सहायता करें, विचार-विमर्श करें; तो संभव है कि "स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते। स्वजनस्य हि अग्रतः दुःखम् विवृतद्वारं इव उपजायते।" याने कि स्वजन के निकट जाने से (अपने) दुःख को प्रकट होने के लिए मानो द्वार ही खुल जाता है!

तब, भीतर दुःख रहता है, वह निकल जाता है, तनाव रहा हो, तो वह निकल जाता है और one mind fertilises another. आपके मित्रों के, सत्सङ्गी-सहयोगी जनों के कारण आपकी शक्ति या बल में वृद्धि होगी। इसलिए जहाँ सत्सङ्ग करने को मिले, ऐसे स्थान में जाकर निवास करें। प्रति दो मास के बाद एक बार दो-तीन दिन जाकर आयें, तो संभव है यह स्थिर रहेगा।

पर ये प्रश्न इतने वैयक्तिक रहते हैं और मुझे उन व्यक्तियों की जानकारी नहीं रहती, उस कारण वैयक्तिक प्रश्नों का उत्तर देना, वह बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी लगती है। यदि सामान्य सैद्धान्तिक पक्ष का या तात्त्विक प्रश्न रहा तो उत्तर देना बहुत दायित्व का नहीं रहता, उसमें धोख़ा कम रहता है।

मुझे ऐसा लगता है कि प्रश्नोत्तरी की इस बैठक को यहीं विराम दूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन दशम

ईशावास्य उपनिषद् और मानवता

नई मानव-संस्कृति

प्रश्न : 'ईशावास्य-उपनिषद्' का महत्त्व कृपया समझाएँ ।

उत्तर : प्रश्नकर्ता को यह ज्ञात होगा कि हम ऐसे एक युग के द्वार पर खड़े हैं कि जिस युग में विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय से एक नया समन्यित जीवन-दर्शन जन्म पा रहा है । ऐसे युग के प्रांगण में आकर हम खड़े हैं - हम यानी समस्त मानव-समाज । समस्त मानव-समाज के, हज़ारों वर्षों से संघटित हुए जो धर्म हैं, institutionalised and organized religions and their denominations, उन संघटित धर्मों, उनके संघटनों और संप्रदायों का (अपना-अपना) प्रभाव कम होकर एक उज्जवल 'मानव'-धर्म जन्म पा रहा है । देश व काल के सापेक्ष जो अनेक सभ्यताएँ और संस्कृतियाँ विकसित हुईं, वे अस्त होकर एक 'मानवीय'-संस्कृति जन्म पा रही है । इस मानव-धर्म और मानवीय-संस्कृति का यदि कोई दार्शनिक आधार है, तो वह वेदों और उपनिषदों का है ।

वैदिक दर्शन - वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण, आरण्यक, संहिता, वेदान्त और उन पर आधारित षड्दर्शन- इनमें मानवजाति ने एक Metaphysical Foundation and Philosophic Foundation पाया है । इन वैदिक दर्शनों के उत्तराधिकारी केवल इस देश में रहनेवाले लोग नहीं हैं । इन दर्शनों पर केवल हिन्दुओं का ही स्वामित्व नहीं है । हिन्दू समाज वैदिक दर्शनों की उत्पत्ति के बाद-बहुत शतकों के पश्चात् अस्तित्व में आया है । ये दर्शन तो हिन्दू समाज के पूर्व के ही हैं । ये अपौरुषेय हैं या नहीं और वे किनसे लिखे गये, कहाँ लिखे गये, यह विषय आज प्रस्तुत नहीं है; किन्तु मानव और मानव का गौरव एवं गरिमा तथा मानवीय मूल्य व मानवीय मूल्यों के आधार पर की गई समाज-रचना, अर्थ-रचना, राज्य-व्यवस्था - ऐसी एक मानवीय-संस्कृति - इसे जगत में वैदिक दर्शन के अतिरिक्त कोई भी आधार नहीं है ।

विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय

विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय यदि होनेवाला हों, तो एक और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पदार्थ-विज्ञान (Physics) व गणितशास्त्र और दूसरी और यह वैदिक दर्शनों से अभिव्यक्त किया गया अध्यात्म – इन दोनों से ही वह समन्वय होनेवाला है। The science of physics is nearly at the thrshold of metaphysics. It has already started communicating in the language of metaphysics. यह बात मुझे आपको बताने की आवश्यकता नहीं है। इस Physics अर्थात् पदार्थ-विज्ञान को, आज ऐसा कहना पड़ रहा है कि- matter के आगे भी Energy है या matter is nothing but solidifield Energy यह जो Energy-ऊर्जा है, - innumerable variety of the Energies, Streams and Flows – इसके भी आगे एक सत्ता है। ढूँढने गये matter, उसमें प्राप्त हुई 'Energy'। Energy का रहस्य निरीक्षण करने गये, तो उनको शून्य का साक्षात्कार हुआ। शून्य का भेद-वेध कर के ये Physicist समूह आगे चला और आज एक सत्ता तक आकर ठहर गया है। उसे उन्होंने **"Is-ness of Life"** - ऐसी संज्ञा दी है। **"The Existential Essence"** - ऐसा नाम दिया है। यह जो सर्वव्यापी सत्ता है, उसे युरोप में, अमेरिका में - लेटिन अमेरिका में Physicists, Chemists, Biologists - इन्होंने ऐसे कई नाम दिये हैं। जहाँ-जहाँ भी Energy-ऊर्जा दिख पड़ती है, वहाँ-वहाँ सत्ता है ही ! इस सत्ता का जो "होना" है - "होनापन" है, वह देखकर - वे लोग स्तंभित व स्तिमित-स्तब्ध हैं।

ये वैदिक दर्शन भारतवर्ष में निर्माण हुए, ऐसा हम इतिहास के आधार पर मानते हैं; किन्तु इस देश का दुर्भाग्य है कि - १९५७ के पश्चात् The psyche of the Indian people, जो बनाना चाहिए था, राष्ट्र का निर्माण होना था, - इस देश की मूल शक्ति और जो ऐश्वर्य है वैदिक दर्शनों का, उनके आधार से – वह हुआ ही नहीं ! वह आधार लिया गया ही नहीं ! वह आधार लिया जाये ऐसा हम चाहते हैं।

बालक, सात-आठ वर्ष का होते ही विद्यालयों में उसे उस दर्शन का परिचय करा देना चाहिए; क्योंकि उसकी सहायता से ही वह बालक 'विज्ञान' को जान पायेगा। क्या कहा है "ईशावास्य" ने ? ईशावास्य उपनिषद् के कुछ भिन्न-भिन्न पाठ हमें ऋग्वेद और यजुर्वेद में मिलते हैं, मंत्रो की संख्या भी भिन्न-भिन्न हैं। ऋग्वेद में तो अठारह, तो यजुर्वेद में इक्कीस मंत्र हैं। आर्यसमाजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोगों के कहने के अनुसार सोलह ही हैं। वह हम रहने दें; किन्तु जो उपनिषद् हैं वह समस्त वेदों का सार - 'ऋग्यजुः साम अथर्व' - इन सभी का सार, इस एक "ईशावास्य" (उपनिषद्) में प्राप्त होता है और प्रथम मंत्र ही देखिये !

"ईशावास्यं इदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत् ।"

इस गतिशील जगत् में - 'गति' शब्द से या 'जगत्' शब्द से यह ऊर्जामय है और ऊर्जा की क्रिया-प्रक्रिया से, आघात-प्रत्याघात से यह 'विश्व' या यह 'जगत्' प्रकट हो रहा है, यह सूचित किया गया है।

तो, यह जो ऊर्जामय जगत है; इसमें व्याप्त क्या है ? किससे यह भरा हुआ है ? किससे सघन है ? किससे सबल है ? 'ईशावास्यम्' यानी 'ईश से भरा हुआ।' 'ईश' शब्द तत्त्ववाचक है, व्यक्तिवाचक नहीं -। 'ईशते, राजते इति ईश्वरः।' हमें थोड़ा-सा संस्कृत भाषा का परिचय कर लेना पड़ेगा, जो इस देश का वैशिष्ट्य है। अर्थवाहिनी, अर्थगंभीर-ऐसी यह भाषा है। इतनी संपन्न भाषा शायद लेटिन के सिवा अन्य नहीं।

'ईश्वर' ! 'ईश्वर' ! - यह शब्द हम उच्चारण तो करते हैं, परंतु इसका मूल अर्थ क्या है ? धात्वर्थ क्या है ? हम सोचते नहीं। धात्वर्थ देखें, यौगिक अर्थ देखें, लक्ष्यार्थ देखें, वाच्यार्थ देखें, परंपरागत अर्थ देखें। एक शब्द से परिचित होने में एक वर्ष लगेगा, यदि प्रेमी कोई हो, तो ! कितना सौन्दर्य हैं ! ज्ञानदेवजीने जो अभिनव वाग्विलासिनी, भुवन-मनमोहिनी शारदा का भंडार कहा है, वह केवल रूपक नहीं था ! वह क्रान्तदर्शी कवि द्वारा किया गया दर्शन है। उन्होंने तो शब्दों के रंग देखे, शब्दों की सुगंध लीं, शब्दों के रूप निहारे ! The Metaphysics of Sound Energy - ये ज्ञानदेवजी को ज्ञात था !

तो, इस ऊर्जामय जगत् में 'सर्वं' याने जो भी है, उसमें एक 'ईश' तत्त्व है। The Unity of life, the Homogeneity of life, The Wholeness of life, - इस एक मंत्र के पूर्वभाग-आधे भाग में, उन्होंने हमसे क्या नहीं कहा, जी ?! यदि यह सीख मिली बालकों को संसार की ओर, सृष्टि की ओर देखने की - यदि यह दृष्टि मिली, - "ईशावास्यं इदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत् ।" - तो सभी मानव-निर्मित भेद के जो कुछ भी तंतु हैं, उन तंतुओं की मर्यादा, उन बच्चों की समझ में आयेगी। मानवकृत भेद के तंतु हों ही नहीं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसा समाज असंभव है। हम कहते ही हैं न ! - कि यह देश भारत है, यह अमेरिका है। नाम देते ही हैं न ? ये सभी हम ही ने तो दिये हुए नाम हैं !

यह जो 'नाना-रत्ना वसुंधरा' है, इसके हम सुपुत्र हैं -इसकी हम संतान हैं, और conceptual existence of national distinctions, इससे अधिक उसे कोई महत्त्व नहीं; वह कोई Reality नहीं; किन्तु फिर वह ध्यान में आता है कि अनेक संघटित सम्प्रदाय बने - । 'एक सम्प्रदाय में मेरा जन्म हुआ। मैं 'प्रॉटेस्टंट' हूँ। मैं 'कॅथलिक' हूँ। मैं प्रेसबिटेरियन हूँ, युनिटेरियन हूँ, मेथॉडिस्ट हूँ; मैं मुसलमान हूँ, शिया हूँ, सुन्नी हूँ; मैं जैन हूँ, बौद्ध परिवार में जन्मा हूँ - और अभी उसी प्रकार मैं उपासना करूँगा।' जाति या संप्रदायों में जन्म लेने से कुछ संस्कारों की भूमि है मेरे पास। उस भूमि पर स्थित रहकर my point of contact with Divinity से संसार के मूल तत्त्व से संबंधित होने के लिये मुझे कहीं एक location प्राप्त हुआ है संस्कारों का। उस भूमि पर खड़ा रह के मैं उपासना करूँगा। किन्तु ये संघटित धर्म मनुष्यकृत है। इनके पीछे, इनके अधिष्ठानरूप जो मानव्य है या मानवता है, वह मेरा मूल स्वरूप है। यह मानवता या यह मानव्य भी "ईशावास्यम्" है - ऐसा उपनिषद् का कहना है।

अर्थात् मैं केवल हाड़-माँस का पुतला नहीं, मात्र संस्कारों का एक राशि या पुंज- amalgamation-(सम्मिश्रण) of conditionings नहीं। मैं भी उस सर्वव्यापी, सर्वाकार, सर्वाधार, सर्वात्मिक - सत्ता का एक उन्मेष हूँ, उसीकी एक अभिव्यक्ति हूँ - ऐसा उस व्यक्ति को प्रतीत होता है; तब उसे विवेकानंद का वह संबोधन "अमृतस्य पुत्राः !" समझ में आयेगा ! **We The Children of Immortality !"** - हम अमरत्ता की संतान है ! काव्य नहीं है जी, यह ! यह अमृततत्त्व है। 'ईश-तत्त्व' जो है, वह अमृत है। - जिसे मृत्यु नहीं वह अमृत ! अर्थात् जिसका 'नाश' नहीं वह अमृत !

कर्म करते-करते जीवन बितायें

अब आपकी समझ में आया न ! - कि ईशावास्य-उपनिषद् प्रार्थना में क्यों बोला जाता है ! 'न कर्म लिप्यते नरे ॥'

कुर्वन्नेवह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समा : ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति, न कर्म लिप्यते नरे ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसे ईशावास्य जगत् में, मानवदेह धारण कर के आने पर तेरा क्या दायित्व है ? तेरा धर्म क्या है ? जिसे "मानवधर्म" कहा जाता है, वह तुम्हारा धर्म है। 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि' - कर्म करते-करते तुझे जीना है। 'जिजीविषा' यानी prolongation of biological structure नहीं । Prolongation of vegetable (स्थूल पार्थिव-देहगत) life नहीं। Vegetating on this earth नहीं. 'जिजीविषा' में जीने की इच्छा है। जीना यह कर्म है। तो कर्म करते-करते तुझे सौ वर्ष जीना है । तो, कर्म का भय मत रख । 'न माम् कर्माणि लिम्पन्ति।' - ऐसा "गीता" में कहा गया है ।

उपनिषद्कार कहते हैं कि - 'न कर्म लिप्यते नरे।' कर्म कोई बंधनकारक नहीं होता। कर्म को बंधनापादक बनाना या मुक्तिदायक बनाना, यह तेरे पुरुषार्थ पर निर्भर है। तू यदि इन्द्रियों के प्रबल मनोवेग पर और तेरी बुद्धि में भरे हुए विचारों के आवेग से प्रवृत्त होकर व्यवहार करने लगा, तो उसमें परवश क्रियाएँ हैं। वह तेरा स्वायत्त कर्म नहीं; इन्द्रियों में सहज रहे विकार और तेरी बुद्धि में संचित संस्कार - इनकी ओर देखकर, उनका निरीक्षण कर के वे जान लेकर के, उनकी मर्यादाएँ समझकर, जिस समय तू जीवन में जीना प्रारंभ करेगा और सामने खड़े हुए जीवन को प्रतिसाद देगा, जो समस्याएँ या प्रश्न होंगे, उनसे सामना करेगा, आनंद मिला तो आनंद लुटेगा - यह सब तो कुछ तुझे करना है, वह तेरा स्वायत्त कर्म हो । परायत्त जीवन भारतीय संस्कृति को इष्ट और अभिप्रेत नहीं, इच्छनीय भी नहीं । उसे चाहिए स्वायत्त कर्म । यह कर्मपरायण जीवन की आराधना और उपासना करनेवाली संस्कृति है । पलायनवादी संस्कृति नहीं है । 'कुर्वन् एव इह कर्माणि' - इसमें 'इह' अर्थात् 'इस लोक में' यानी 'तू शरीर लेकर आया है। इन पञ्च महाभूतों से बना हुआ; पञ्चीकृत महाभूत हैं, उनके अनंत रूप हैं और उनके साथ तुझे जीना है । 'इह कुर्वन् एव कर्माणि' याने दायित्व के साथ, समझ बूझकर, ध्यान देकर यदि कर्म करेगा नहीं, तो फिर क्रिया- प्रतिक्रियाओंका यह जो चक्र है, उस चक्र से तेरा छुटकारा होगा नहीं। वह घूमता ही रहेगा; क्योंकि देह में उसकी गतियाँ पड़ी हुईं हैं । The momentum of the total human past, in the biological and the psychological structure will Victimise you, unless you learn to act with the Totality - The Wholeness of your Being.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्म बंधनकारक नहीं, वृत्ति बंधनकारक

यदि कर्म किया नहीं और प्रमाद में, पलायन में फँसा, क्रिया-प्रतिक्रियाओं की परवंशता का यदि तू दास बना, तो फिर तू आत्महनन करेगा ।

"असुर्या नाम ते लोकाः अन्धेन तमसावृताः ।
ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥"

आत्महनन करनेवाले वे लोग हैं, जो कि यह समझते नहीं और ज़िम्मेदारी से अपना कर्म करते नहीं । लेपन कर्म का नहीं है । लेपन अथवा बन्धन हमारी वृत्ति का है । और 'न क्रम लिप्यते नरे ।' - यह कहा गया है । अतएव आगे जाके पातञ्जल योग में 'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः ।' कहा गया, कर्म-निरोध नहीं कहा । "प्रवृत्ति और निवृत्ति के उद्‌गम में जो वृत्ति है, उसका छेदन करें, तो फिर वह योगावस्था है ।" - यह मुनि पतञ्जलि ने कहा, इसे आधार "ईशावास्य" का है । आप षड्‌दर्शनों से कोई भी दर्शन लें - "न्याय" लें, "सांख्य" लें, "वैशेषिक" लें, "योग" लें, "पूर्व मीमांसा" - "उत्तर मीमांसा" लें; कपिल, कणाद्, पतञ्जलि - इन सभी दर्शनों का अधिष्ठान समस्त उपनिषदों का सार - ऐसे इस "ईशावास्य" में आपको मिलेगा । The source of the teachings is contained in this beautifully elegant small Upanishad of eighteen mantras.

तदेजति तन्नैजति तद्‌दूरे दद्वंतिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥

वह गतिशील है, गतिमान है और स्थिर भी है - गतिमुक्त भी है । यानी हमारे जीवन का गति का एक आयाम है । Dimension of motion and movement. 'गतिमुक्त स्थिति' - यह भी हमारे जीवन का एक आयाम है । The motionlessness in the dimension of Silence is a dimension of Life itself. गति यह जैसे जीवन का एक आयाम है, वैसे ही गतिमुक्त स्थिति भी जीवन का आयाम है । संबंध भी जीवन का आयाम, तो संबंधमुक्त एकान्त भी जीवन का आयाम । शब्द जीवन का आयाम, तो "मौन" भी जीवन का आयाम ।

हमारे पूर्वज बड़े रसिक थे । संकेत करते हुए आगे बढ़ते थे । "तद्‌दूरे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तद्वंतिके । 'तदन्तरस्य सर्वस्य' सब में सभी का 'अंतर' यानी आशय - The content (सारसत्त्व), जो कुछ 'सर्वम्' कहा जाता है - 'The content of the whole cosmos', 'The content of cosmic life is 'that' यानी जो सत्ता है, ईशतत्त्व है, वो है । वह, जो कुछ समस्त जगत है, उसका अंतरंग-अंतस्सत्त्व है, उसका गर्भ है, उसका सत्त्व है, Existential Essence है, वह यह सत्ता है - **The Supreme Intelligence, that cosmic consciousness, that supramental Universal consciousness.** इसलिए वह हमें दूर भी लगता है और समीप भी है । हमारे भीतर भी वही है और बाहर भी वही है । अजी, वे 'भीतर-बाहर' शब्द शरीर-सापेक्ष हैं । उपनिषद् कह रहा है कि जीवन को भीतर-बाहर ऐसा कुछ नहीं होता ।

समस्त भूतों में "मैं" हूँ और "मुझमें" समस्त भूत हैं -

'तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः ॥'

ऐसी जीवन की एकता जिसने जान ली, उसे मोह कहाँ से ? शोक कहाँ से ? यह मंत्र यदि यहाँ नहीं कहा जाता, तो फिर स्थितप्रज्ञ की विशेषता जो "गीता" में कही गई है -

" स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥ "

- इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए वासुदेव को आधार नहीं मिलता । यह मंत्र उसके उत्तर का आधार है - 'तत्र को मोहः क शोकः एकत्वमनुपश्यतः ॥'

अविद्या और विद्या

किन्तु इससे भी आगे चलिये ।

" अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ॥ "

कितनी भयानक बात कही है, देखिये ! केवल अविद्या की उपासना करनेवाले तो अंधकार में डूबते ही हैं । अब ध्यान से इस सांकेतिक भाषा की ओर देखना चाहिए, जी ! 'अविद्या' किसे कहा गया है, वेदों में या उपनिषदों में ? 'पदार्थ-ज्ञान' को 'अविद्या' कहा है । 'जाने अपनेआप को, इसका नाम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञान !' 'अध्यात्मविद्या' को 'विद्या' कहा गया है और बाकी सभी अविद्या; अत: मैंने कहा कि Codeword है यह वेदों की भाषा; और वेदों का संस्कृत जो है, वह पाठशाला में 'राम: रामौ' कहने से आता नहीं । कुछ गहराई में उतरकर उसका अध्ययन करना पड़ता है ।

तो, इस पदार्थ-सृष्टि का ज्ञान करा देनेवाली जो कुछ विद्याएँ, कलाएँ हैं, वे प्राप्त हुईं, वृद्धिगत हुईं, तो वे भी अंधकार में ले जातीं हैं । किस अंधकार में ले जातीं हैं ? हमारे यहाँ ये 'अंधकार' शब्द केवल 'अहंकार' के संबंध में उपयोग में आता है । 'मैं' हूँ; 'अहं ज्ञानी', 'अहं विद्वान्', 'अहं योगी', इत्यादि । इन विद्याओं का अभ्यास करते-करते जैसे उन विद्याओं को धारण करनेवाली कोई एक व्यक्ति है (!) - ऐसा आभास होने लगता है और आत्मा का संकोच होकर अहंकार का जन्म होता है । अहंकार यानी अन्य कुछ नहीं है, जी ! यह तो आत्मा का संकोच है - संकुचित होना और प्रसरण पाना । पानी जमकर उसकी बर्फ बनी, तो भी पानी और बर्फ अलग है, ऐसा नहीं कह सकते । बर्फ पिघला और पानी हुआ, तो पानी का जो मूल का आर्जव है, वह प्रकट होता है, उसी प्रकार संकुचित बना हुआ जो आत्मा का आभास है, वह फिर उसका जो स्वरूप है, उसे धारण करता है । उनको दो भिन्न मानने का कारण नहीं । तो, ये जो अविद्याएँ हैं, उनके कारण अहंभाव का अंधकार पूरी चेतना पर एक आवरण बन कर रहता है ।

किन्तु अब, उसके भी आगे देखो । उससे भी घने अंधकार में तिमिर में ले जानेवाली, वह विद्या कौन-सी ? 'आत्मविद्या–अध्यात्म-विद्या' ! यदि आप आत्मा को 'ज्ञान का विषय' बनाओगे, 'ज्ञेय' बनाओगे और उस संबंध में 'ज्ञान धारण करनेवाले हम आत्मज्ञानी हैं', ऐसा कहोगे, तो वह जो अहंकार है, उस अहंकार का अंधकार उस पूर्व अंधकार से भी अधिक गूढ, घना और दुर्भेद्य-सा है ।

अब, इससे अधिक क्या कहें, जी, आपको ?! मैं मानव-धर्म को दार्शनिक आधार देनेवाली यह उपनिषदों की, श्रुतिमाता की वाणी है, ऐसा जो कहती हूँ, वह किसलिए कहती हूँ, यह अब आपकी समझ में आया होगा । मुझे समस्त "ईशावास्य-उपनिषद्" को आपके सम्मुख प्रस्तुत करना नहीं है । एक-एक मंत्र लेकर कहना नहीं है । 'ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ।।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और इसलिए,

"विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभयं सह।
अविद्या मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतम् अश्नुते ॥"

जहाँ क्षण-क्षण प्रति पल क्षरण है। 'क्षीयते इति शरीरम्।' जिसका क्षण-क्षण हर पल क्षरण ही होता रहेता है। नित्य परिवर्तनशील, क्षरणशील - ऐसा यह मृत्यु-लोक है। इस इह-लोक में, मृत्यु-लोक में नाम-रूप की ,पदार्थों की सृष्टि में हमें रहना हैं। 'मृत्युं तीर्त्वा' इस मृत्युलोक में यदि तुम्हें ठीक ढंग से जीना हो, - बिलकुल जन्म के बिन्दु से मृत्यु के बिन्दु तक ठीक से जीना है और अमृतत्व की उपलब्धि कर लेनी है और जन्म-मृत्यु से सर्वथा स्वतंत्र, 'अजर-अमर' ऐसा जो जीवन का सनातन "होनापन" है, उसका स्पर्श यदि पा लेना है, तो फिर जो विद्या है - आत्मविद्या - उसके स्पर्श से अमृतत्व की उपलब्धि होती है, किन्तु पदार्थविद्या, पदार्थज्ञान, जिसे हमने 'अविद्या' कहा है, वह भी योग्य ढंग से जीने के लिए आवश्यक तो है ही !

अब आपकी समझ में आयेगा कि मैं इस प्रार्थना को, इस उपनिषद् को क्यों महत्त्व देती हूँ ! जिस किसी समय इस देश में, सचमुच 'जनता की सरकार' कहा जाये, ऐसी सरकार आयेगी, जिस सरकार को इस राष्ट्रीय संस्कृति की कुछ परवाह रहेगी कुछ अदब-मुलाहज़ा-सम्मान रहेगा और यदि वह सरकार अपनी संस्कृति के आधार पर शिक्षण पद्धति निर्माण करेगी, तो उस समय उन्हें विद्यालयों में यह उपनिषद् पढ़ाना होगा। मानव्य को अन्य आधार है ही नहीं ! मानव कितना उन्नत हो सकता है, कितना उसका परिष्कार या **refinement** - परिमार्जन -परिशोधन हो सकता है, मानवीय चेतना-**The human consciousness** - कितनी परिष्कृत-परिमार्जित-परिशुद्ध हो सकती है, यह देखना हो, तो इस उपनिषद् के मंत्र लिखनेवालों की चेतना देखिये ! ये संस्कृत में ही पढ़ाएँ - ऐसा नहीं। आप संस्कृत में पढाएँ, किन्तु भारत की समस्त भाषाओं में इसका अनुवाद होना चाहिए; और जो जो भारत के नागरिक हैं, - फिर उनके उपासनाओं के धर्म-हिन्दू, इस्लाम, ख्रिचन - कोई भी रहें - परंतु जिन्हें इस देश में रहना है, भारत के नागरिक कहलाना है और इस राष्ट्रीय संस्कृति को जीवित रखना है, उन सभीके लिए - जिसे आप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"Compulsory Education" कहते हैं, वैसे इन उपनिषदों का होना चाहिए। इसके बिना इस देश में मानव स्थिर खड़ा नहीं होगा। अब Higher Secondary Schools में Moral Education कहकर कुछ आरंभ कर रहे हैं, ऐसा हमने सुना है।

पाश्चात्यों का योगाभ्यास

हम कोई सरकार में हैं नहीं; राजनीति हमारा क्षेत्र नहीं; किन्तु जिस-जिस स्थान में युवकों व प्रौढ़ों के शिबिर होते हैं, उस-उस स्थान में दिन का प्रारंभ हम इस उपनिषद् से करते हैं। इस वैदिक दर्शन का महत्त्व पाश्चात्यों के ध्यान में आ गया है। मॅक्समूलर आदि तो बहुत पुराने हो चुके। वेदों का अभ्यास करना हो, तो पश्चिम जर्मनी में जाना पड़ेगा। वहाँ जितने वेदों के भाष्य प्राप्त होते हैं, उतने भारत में भी प्राप्त नहीं होते! योगशास्त्र का यदि आपको अभ्यास करना हो, तो आप जायें इटली में, अल्बेनिया, रूमेनिया, रशिया - इन देशो में। हठयोग और पूरे पातञ्जल योग का अभ्यास किये हुए पाँच हज़ार योगशिक्षक 'युरोपियन फेडॅरेशन ऑफ योग' में हैं।

आज प्रातःकाल आप लोग गायत्री मंत्र का उच्चारण कर रहे थे, तो मेरी आँखों के सामने वह योगशिक्षकों की परिषद् का चित्र आया, जहाँ गत वर्ष मुझे निमंत्रित किया गया था। पाँच हज़ार मेंसे पाँच सौ श्रेष्ठ योगशिक्षकों के बीच एक सप्ताह मैंने बिताया। ब्रह्मविद्या और योगशास्त्र पर उन्हें कुछ प्रवचन सुनने थे। वे लोग सुंदर गायत्री मंत्र बोलते थे! पिछले दस वर्षों में उन्होंने "पातञ्जल योग" का अभ्यास समाप्त किया और अब "स्मार्तयोग" का अभ्यास प्रारंभ किया है।

"याज्ञवल्क्य स्मृति" और "याज्ञवल्क्य योगशास्त्र" का भी अभ्यास शुरु किया है। संस्कृत भाषा का भी अभ्यास वे लोग कर रहे हैं। सूत्र सीख रहे हैं, बोल रहे हैं। "भगवद्गीता" के अध्याय बोलते हैं। योगशास्त्र के दोहन से शिक्षा की पद्धति में क्या-क्या परिवर्तन करना चाहिए, इसका संशोधन पूर्व युरोपीय देशों में चल रहा है। - वैदिक दर्शनों का अभ्यास जर्मनी, नेदरलॅण्ड, फ्रान्स और अमेरिका के कुछ भागों में विशेष रूप से चल रहा है। अर्जेन्टिना, चिली, ऑस्ट्रेलिया, पोलॅण्ड - इन देशों में भी अभ्यास करनेवाले लोग हैं। उनका ध्यान खींचा गया है, इस ओर। ये सभी देश अभ्यास करते रहें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और हमारे देश में वह हों नहीं !?

संत विनोबाजी तेरह वर्ष और सात महिनों तक भारत में पदयात्रा करते रहे। प्रत्येक राज्य में घूमे, उनकी यात्रा में सम्मिलित हम जो युवक-युवतियाँ थे, उनसे विनोबाजी यह प्रार्थना करवा लेते थे; प्रातः तीन बजे। वे कहते थे कि यह राष्ट्रीय प्रार्थना है। ऐसी ही एक राष्ट्रीय प्रार्थना सायंकाल सामुदायिक प्रार्थना में महात्मा गांधीजी ने प्रारंभ की थी और वह थी, "स्थितप्रज्ञ" के श्लोक।

स्थितप्रज्ञ - दर्शन - नागरिकता

प्रश्न : आपके (शिविर में) सायंकाल की प्रार्थना में 'स्थितप्रज्ञ' के श्लोक किस कारण रखे जाते हैं ?

उत्तर : जिस प्रकार 'ईशावास्य-उपनिषद्' यह मानव-धर्म का दार्शनिक आधार है, उसी प्रकार 'स्थितप्रज्ञ' के श्लोकों में, नागरिक-चेतना वस्तुतः क्या है, समाज में समाज के घटक के रूप में यदि रहना है, तो Social consciousness - (सामाजिक-चेतना) कैसा हो - इसके संकेत हैं; और जो सामान्य अहं-केन्द्रित चेतना है, उसके परे जाकर जीवन जिया जा सकता है, इसका दर्शन है।

"स्थितप्रज्ञस्य का भाषा, समाधिस्थस्य केशव।" - भाषा यानी शब्द से जो कहा जाता है, वह नहीं और किसीको शायद ग़लतफ़हमी होगी, इसलिये आगे कहते हैं कि -

"स्थितधीः किं प्रभाषेत, किमासीत व्रजेत किम् ॥"

यानी वह कैसे घूमता है ? कैसे चलता है ? कैसे बात करता है ? अर्थात्, यह 'समाधि' नाम का जो आयाम - dimension है, वह व्यवहार में व्यवहृत होनेवाला है। समाधि में पहुँचे हैं, तो अब कुछ करना शेष नहीं - ऐसा समझकर कर्म से, समाज से, ज़िम्मेदारियों से - अर्थात् जीवन से निवृत्त हुए हैं - ऐसा कहना नहीं है इस संस्कृति को। इस संस्कृति को कहना है कि – जो अहं-केन्द्रित चेतना है – self-centered consciousness है, - जिस आयाम में-dimension में हम जन्म लेते हैं और जीते हैं - उससे भी अलग तुम्हारे पास एक और dimension है-आयाम है और वह आयाम समाधि का है। **SAMADHI IS A DIMENSION OF CONSCIOUSNESS** - स्थितप्रज्ञ अवस्था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ।। "

'स्थितप्रज्ञ' के शब्द से प्रारंभ किया है और 'ब्राह्मीदशा'-'ब्राह्मी-स्थिति' से उन्होंने श्लोकों का उपक्रम समाप्त किया है। "ईशावास्य उपनिषद्" जैसे वहाँ भी सत्रह-अठारह श्लोक होंगे। दिन का प्रारंभ "ईशावास्य" से तथा दिन की समाप्ति इस "स्थितप्रज्ञ" के श्लोकों से करें। 'मनोगत सभी काम त्यज दे, जब पार्थ ! तब (-स्थितप्रज्ञता की उपलब्धि कही जाती है ।) ।' मानव की जो सब मनोगत इच्छाएँ, वासनाएँ हों, वे सब छूट सकते हैं, यह कहा गया है यहाँ।

"ध्यायतो विषयान् पुंस सङ्गस्तेषूपजायते ।" - इसके उस पार की **psychology** चाहिए हमें ? मनोविज्ञान के कितने सूक्ष्म पहलु हैं, देखो तो ! हमारी प्रचलित मनोदशा का वर्णन है और इस मनोदशा से मुक्त होकर अन्य एक चेतना के आयाम में हम जी सकते हैं, इसके संकेत इन "स्थितप्रज्ञ" के श्लोकों में हमें मिलते हैं और 'प्रसाद' नाम की अवस्था आती है।

"प्रसादे सर्वदुःखानाम् हानिरस्योपजायते ।" कितनी बड़ी प्रतिज्ञा है ! देखो, जी ! 'हानिरस्योपजायते' - सर्वदुःखानाम् हानिः उपजायते । जितने भी मानव को हो सकनेवाले संभाव्य दुःख हैं, उन सभीका अंत होता है, इस 'प्रसाद' की उपलब्धि में !

सब दुःखों की समाप्ति

इसलिए मैंने कल कहा था कि - **RELIGIOSITY IS ENDING THE MOVEMENT OF SUFFERING.** दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति, यह धर्मसत्त्व है। ऐसा नहीं कि एक दुःख समाप्त किया, फिर दूसरा है, तत्पश्चात् तीसरा है, जीवनभर उन दुःखों का निवारण ही करते रहें, ऐसा नहीं ! 'हानिरस्योपजायते'। समस्त दुःख और व्यथाएँ शांत होतीं हैं, शमन होता है उनका ! 'उदासीनो गतव्यथः । निर्गता व्यथा ।' जिसके चित्त से व्यथा निकल ही गई, व्यथा होने की संभावना ही शेष नहीं; केन्द्र में अहंकार मूलतः ही नहीं । अतः "स्थितप्रज्ञ" के श्लोकों में मुझे 'नागरिकत्व का रहस्य' मिलता है । 'समन्वयात्मक सामाजिक संबंधों का रहस्य' मुझे 'वहाँ' प्राप्त होता है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस देश में अभी तक 'नागरिक' का जन्म हुआ नहीं है, होना बाकी है । **'Individualistic consciousness is the greatest anti-social element' in our life.** इस देश में और अन्य देशों में भी, इस individualistic consciousness से, अहं-केन्द्रित चेतना के जाल से, पाश से हमें मुक्त करने की शक्ति इन "स्थितप्रज्ञ" के श्लोकों में है, यदि इनका अर्थ हम समझ लें और उस तरह से उच्चारण करने लगें तो ! अर्थ को समझकर यदि अपनी-अपनी भाषा में हम उच्चारण करेंगे, गायेंगे-बालबच्चों सहित बैठकर, घर में, द्वार में, विद्यालयों में, क्लब में, खेलकूद के मैदानों पर; - और राष्ट्र का जो आकाश है, वह "ईशावास्य" के मंत्रों से और "स्थितप्रज्ञ" के श्लोकों से अगर गूँजने लगेगा, तो अहं-केन्द्रित चेतना के पाश से हम मुक्त हो सकते हैं । मराठी, हिन्दी, गुजराती, तमिल, मलयालम, असमीया, उड़िया - इतनी भाषाओं में हुए उसके अनुवाद मुझे ज्ञात हैं । उर्दू भाषा में "ईशावास्य" का अनुवाद अभी तक मेरे देखने में आया नहीं है, "गीता" का अनुवाद देखने में आया है ।

सन् १९८३ में पंजाब में भीषण रक्तपात चल रहा था– हिन्दुओं और सिक्खों के बीच ! मैं उस समय पंजाब में घूम रही थी । भारत और पाकिस्तान की एकदम सीमा पर के गाँव में मैं थी, कुछ डेढ़-दो किलोमीटर का अंतर था । मैं वहाँ थी । एक उच्च कुल के सदाचारी मुसलमान, (इस्लाम-धर्म का गौरव ऐसे ही उच्च कुल के मुसलमानों में हमने देखा हुआ है) - तो, वे आये थे ख़ास मिलने के लिए । "ज्ञानेश्वरी" का उर्दूभाषा में अनुवादित ग्रंथ उनके पास था । उन्हें कोई अंदाज़ा नहीं था कि हमारा और ज्ञानेश्वरजी का कुछ प्रेममय नाता है । पहले कभी उनसे मुलाकात नहीं हुई थी । कहने लगे, "मेरे दादाजी की दी हुई, मेरे पास एक धरोहर है, उसे अत्यन्त प्रेम से संभाल के रखी है । मेरे बाल-बच्चों को तो इसकी रूचि नहीं है । अतः आप ही इसका कोई प्रबंध करें । तो, कहना चाहती हूँ कि "ज्ञानेश्वरी" का उर्दू भाषा में अनुवाद हुआ है । "ज्ञानेश्वरी" की बड़ी चाह लगी थी मेडम ब्लेर्वट्स्की को ! 'The Voice of Silence' में उन्होंने उल्लेख किया था, जिससे सारे संसार को "ज्ञानेश्वरी" की जानकारी हुई । मैंने ऐसा सुना है कि आजकल रशियन भाषा में "ज्ञानेश्वरी" के अनुवाद का कार्य चल रहा है ।

तो, "स्थितप्रज्ञ" के श्लोक हों या "ईशावास्य उपनिषद्" हों, इन्हें मैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

केवल हिन्दूधर्म की प्रार्थना मानती नहीं हूँ । मैं समझती हूँ कि यह राष्ट्रीय प्रार्थना है । हिन्दू-समाज ने उसका अंशतः स्वीकार किया है । उनकी पूजा करते हैं, मन्दिर निर्माण करते हैं, पाठ करते हैं, इसलिए 'आंशिक स्वीकार' कहती हूँ; किन्तु इसका स्वीकार भारत में रहनेवाली समस्त जातियों को करना चाहिए तथा उनसे करा लेना चाहिए - ऐसा माननेवालों मेंसे मैं एक हूँ; क्योंकि भारतीय-संस्कृति में मानव-धर्म, मानवीय मूल्य और मानवीय संस्कृति - ये सभी छिपे हुए हैं ।

आज के प्रवचन में एक और ऐसे ही गंभीर विषय को हमें लेना है ।

चिदाकाश

प्रश्न : 'चिदाकाश में विश्व समाया हुआ है ।' - ऐसा क्यों कहा जाता हैं ?

उत्तर : 'घटाकाश', 'चिदाकाश', 'महदाकाश' ऐसे अनेक प्रकार के पारिभाषिक शब्द हैं । कुछ नाथ सम्प्रदाय के शब्द, कुछ अवधूत संप्रदाय के, तो कुछ भक्तिशास्त्र के हैं । कुछ तंत्र-मंत्र, हठयोग व योगशास्त्र के भी आते हैं । ये सभी पारिभाषिक शब्द हैं । पता नहीं कि जिन्होंने प्रश्न पूछा है, उनका इस आकाश शब्द से या शून्य शब्द से परिचय है या नहीं ।

"शिव-संहिता", गोरखनाथ के ग्रंथ, उनसे पूर्व - अभिनव गुप्त के लिखे हुए ग्रंथों से और उसके पूर्व भी जाना हो, तो 'कश्मीरी शैवदर्शन' में 'आकाश' और 'शून्य' पर विस्तारपूर्वक विवरण, विवेचन, समीक्षाएँ देखने को मिलते हैं ।

तो, 'आत्मनः आकाशः संभूतः ।' जो आत्मसत्ता है, उस आत्मसत्ता में अपनी ही इच्छा से जिस समय ऊर्जा स्पन्दित होने लगती है - मैंने अभी विज्ञान की भाषा का उपयोग किया है, जी ! - The energy, The self-willed energy gets activised in the ocean of Is-ness. ऐसा किसने कहा है, यह अगर पूछें तो मॉरिस निकॉल, डेविड बोम, डॉ. उम्बेर्तो, फ्रीट्सॉफ क्राप्रा - ये सभी जो आजकल की मंडली हैं, ये World Association of Physicists के अतिरथी-महारथी व्यक्ति हैं । उनका ऐसा कहना है कि यह जो cosmos है, It is an explosion that has taken place in the Emptiness. The Emptiness has exploded. तो, फिर यह emptiness

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहाँ था ? तो - कहने लगे, 'Is-ness' में था; फिर इस 'Is-ness' से emptiness कैसे explode हुआ, भाई ? 'Who exploded it ? तो वे कहते हैं कि 'Who' नहीं वहाँ कोई ! - **It is a self-willed movement on the part of the energy** !! अपनी इच्छा से, वह जो ऊर्जा थी, वह स्पन्दित होने लगी और 'आकाश' या 'अवकाश' नाम का एक तत्त्व प्रकट हुआ। हमारे यहाँ उसे 'लीला' कहते हैं। वे उसे 'self-will' कहते हैं। हमारे यहाँ जो एक लीलावाद है न ! - कि किस कारण 'जगत्' हुआ ? कहते हैं 'लीला' है, उस सत्ता की। 'स एकाकी न रेमे।' उस सत्ता को अकेलेपन में मज़ा नहीं आता। सो 'एकोऽहं बहुस्याम्।' - 'मेरी एकता का दर्शन करने के लिये मैं अनेकता का दर्पण निर्माण करता हूँ' - ऐसा कहके (उसने यह विश्व बनाया); 'स अकामयत्'। और फिर उसने विश्व निर्माण किया। यह उसकी लीला है; ऐसा वर्णन हमारे यहाँ आता है और उनके यहाँ वे कहते हैं कि - 'Self-willed motion of the energy'.

तो, वह जो self-willed movement of the energy है - वह जो explosion है, उसमें 'emptiness' प्रकट हुआ - 'आकाश' प्रकट हुआ। अब आगे -

'आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी।' हमारे यहाँ Cosmogenesis में इस आकाश मेंसे ही अन्य जो महाभूत हैं उनकी निर्मिति हुई। पृथ्वी, औषधि, वनस्पति और उससे मानव आदि। इसका अर्थ क्या है ? अर्थात्, जिसे हम 'आकाश-अवकाश' कहते हैं और जो रिक्त स्थान (पोल) ऐसा लगता है, जो emptiness - ऐसा प्रतीत होता है, पदार्थ दिखता नहीं, अतः रिक्तता है - ऐसा कहते हैं, There is 'no-thingness' in it. इसलिए हम उसे 'nothingness' कहते हैं। 'No-thing-ness' - 'Nothingness' - तो वह कोई पदार्थ नहीं। 'पदार्थ' नहीं अर्थात् हमें दृश्य हों ऐसा वह नहीं। The energies are not Solidified. They are perhaps in a nebulous state. आकाश में ही सभी ऊर्जाएँ हैं, ये सभी भूत समाविष्ट हैं; और इसीलिए 'आकाश में विश्व समाविष्ट है' - ऐसा कहा जाता है; फिर वह आकाश आपके अंदर रहा तो, घट के भीतर रहा तो, आप उसे 'चिदाकाश' कहो या 'घटाकाश' कहो; या घट के-पिंड के बाहर है, इसलिए 'महदाकाश'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

या 'महाकाश' कहो; जो नाम देने हैं वे दे दो। आकाशतत्त्व है या आत्मसत्ता का प्रथम प्राकट्य है। विचार या विकार यह जो पार्थिवता का अंतिम स्पर्श है, आखरी सूत्र है, उसे निवृत्त होने देकर और मौन में प्रतिष्ठित होकर जो उस आकाश तक पहुँचते हैं, वे आकाशस्थ हुए। देह में रहते हुए भी वे आकाशस्थ हुए, गगनस्थ हुए। कबीर महाराज की वाणी में इसके कई दृष्टान्त और विवरण हमें प्राप्त होते हैं। उनकी 'खेचरी मुद्रा' हुई। 'खं नाम आकाशं गगनं च।' 'ख' शब्द आकाश या गगन के लिए है।

"उनकी समस्त मुद्रा 'खेचरी' है।" तो, मुद्रा यानी केवल मुख की नहीं, समूचे शरीर की आकृति की जो मुद्रा है, वह 'खेचरी मुद्रा' है; अर्थात्-संकल्प-विकल्प-मुक्त ऐसी उनके चित्त की दशा जो है, उसकी आभा उनके समस्त शरीर पर, इन्द्रियों पर छायी हुई है। 'ज्ञानमुद्राय कृष्णाय' कहा गया है न! वह मुद्रा केवल उनके मुख पर दिखती थी, ऐसा नहीं, वह 'मुखमुद्रा' नहीं, जीवनमुद्रा! 'देहमुद्रा' भी नहीं। "ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः॥" कितने मीठे मीठे शब्द होते हैं, देखो! 'एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः स्वर्गं नयति।' कहा होगा, मैं "कैवल्यं नयति।" कहती हूँ। स्वर्ग तो अत्यन्त हीन वस्तु है। 'सम्यक् ज्ञातः।' ! तो, आकाश में जिस समय हमारे विचार, विकार स्थिर होते हैं और मौन के आयाम में हम पहुँचते हैं, तब वहाँ जागृत होनेवाली वैश्विक प्रज्ञा जो हैं, उसका आवागमन, जागरण, संचारण हमने देखा, किन्तु उसे स्पर्श किया नहीं, उसका उपयोग किया नहीं और जिस प्रकार व्यक्तिगत विचार, ज्ञान, अनुभूतियों की गति शांत होती है, उसी प्रकार उस गति को भी अगर हमने शांत होने दिया, तो फिर सचमुच हम आकाशस्थ हो ही गये और फिर वहाँ उस वैश्विक प्रज्ञा का संचार हमारे जीवन में होता है।

In the explosion of the 'Emptiness' infinite Universes have come into existance - ये पदार्थ-विज्ञान के बिलकुल आधुनिकतम विचार हैं। एक Universe नहीं, infinite Universes ! Twenty four solar systems have been discovered by them up till now, but they say - We do not know how many more are existing - ये सारे सौर मंडल ! हम कहते हैं कि सूर्य-मंडल कितने हैं ? हमें तो एक ही सूर्य-मंडल दृष्टिगोचर होता है, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह, इत्यादि; किन्तु उनका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसा कहना है कि इन infinite Universes में infinite solar systems भी होंगे, सौर-मंडल होंगे, उनकी भिन्न-भिन्न ऊर्जाएँ होंगी। हम 'अनंतकोटी ब्रह्मांडनायक' आदि शब्दों का व्यवहार करते हैं और हम पूर्ण आदर व श्रद्धा से इन शब्दों का उच्चारण करते हुए नमस्कार भी करते हैं, परंतु उनका अर्थ धारण नहीं करते। शब्दों का उच्चारण अर्थ-ग्रहण के लिए और अर्थ-धारण करने के लिए है। शब्द वाहन हैं, माध्यम हैं। वे हमें अर्थ जताते हैं, अर्थ हमारे समीप लाते हैं, आत्मानुभवी जनों के – संतों के जीवनरस को वे सेतु बनते हैं, परमात्मा के और हमारे बीच; अतः व्यर्थ शब्दों के छिलके लेकर बैठें नहीं। शब्दों को छील-छील कर उसका अर्थ लें, रसप्राशन करें। चित्त का सत्त्व और जीवन का ऐश्वर्य उन शब्दों के अर्थ-ग्रहण और भाव-धारण मेंसे ही आता है।

तो, 'चिदाकाश में विश्व समाया हुआ है।' यह रूपकात्मक भाषा नहीं है, जी ! यह तो वैज्ञानिक तथ्य का सरल निवेदन है। It is a statement of fact, not a figurative (प्रतीकात्मक) way of putting things.

मैंने कहा था कि - विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का युग आ रहा है। यह अरुणोदय है ! लोगों को **nuclear war** और **winter** की संभावनाएँ दिखतीं हैं। लोग हताश और निराश हैं, किन्तु मेरी दृष्टि को मानवों की सामुदायिक आत्महत्या दिखाई नहीं दे रही। **The human race is not doomed, to commit a collective suicide. It has a role to play. It is a partner with the cosmic energy. In the play of Divine energy, we are partners of Divinity.**

तो, मुझे ऐसा दिखाई पड़ता है कि इस **Post-Indusatrial revolution** के युग में और अब तो **Post-Nuclear age** में, विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय अटल है, अनिवार्य है, अवश्यंभावी है। कहाँ होगा, किस भूमि पर होगा, वह कह नहीं सकते। घटित होने की संभावना-**Potential** इस देश में है, किन्तु इस देश के लोग मूर्च्छित पड़े हुए हैं ! वे जाग गये, तो उनके बस का खेल है यह ! परंतु वे मूर्च्छित पड़े हैं और बाकी के देश जागृत हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय-युग का अरुणोदय है; अतः आप यहाँ भारत में पूछते हैं इसलिए - मैं इसे (''ईशावास्य उपनिषद्'' और ''स्थितप्रज्ञ दर्शन'' को) राष्ट्रीय प्रार्थना कह रही हूँ। युरोप-अमेरिका में होती हूँ, तब कहती हूँ कि यह वैश्विक प्रार्थना है।

भारतवर्ष में इतनी जातियाँ, इतने धर्म, इतनी संस्कृतियाँ, इतनी भाषाएँ हैं कि जो भारतीय-नागरिक बनेगा, यह अपनेआप विश्व-नागरिक बनेगा ही ! यहाँ यदि एकता तथा अनेकता का समन्वय साध्य हुआ, भाषाओं की अस्मिता, साम्प्रदायिक अस्मिता - ये समस्त तो विविधताएँ हैं, उनका यदि राष्ट्रीय एकता के साथ मेल किया गया, उनका यदि समन्वय सधना हुआ, तो इस देश का नागरिक है, वह अपनेआप ही विश्व-नागरिक होता है। इतनी विविधता और किसी भी राष्ट्र में नहीं है ! इतना श्रेष्ठ उत्तराधिकार हमें प्राप्त हुआ है !

जीवन का संपूर्ण स्वीकार

यहाँ आपके महाराष्ट्र में यदि हम सौ-पचास व्यक्तियों के साथ बैठे हैं, तो भी हमारी आँखों के सम्मुख आती है यह ज्ञानदेवजी की महाराष्ट्र भूमि ! यह भूमि सन्त एकनाथ की, नामदेव-तुकाराम जैसे असंख्य सन्तों की भूमि है। और यहाँ बिलकुल मुकुंदराय, अमृतराय से लेकर ज्ञानेश्वर, तुकाराम तक सभीने अपने भजनों द्वारा अद्वैत के अधिष्ठान पर रहकर द्वैत के स्वीकार का एक महागान गाया है। जीवन का संपूर्ण स्वीकार और फिर भी अद्वैत के अधिष्ठान को छोड़ना नहीं। हम अद्वैत से द्वैत के आँगन का संमार्जन करते हैं - ऐसा कहा है, निवृत्ति और ज्ञानदेव ने। इसके आगे अब हम क्या कहें ? परिसीमा है !

''बीज भाजून केली लाही, आम्हा जन्ममरण नांही''

''बीज भूनकर खील बनाई, हमें जन्म-मरण नहीं।'' - यह तुकाराम महाराज की वाणी है। तुका कहते हैं कि - 'हम विट्ठल के दास, किया पिण्ड में ग्रास ब्रह्माण्ड का।'

यहाँ की जो भागवत-परंपरा है, वह अति उज्ज्वल है। अन्य प्रदेशों में हम घूमे-फिरे हैं। भारत का एक ज़िला नहीं कि जहाँ हमारा जाना हुआ न होगा। अतिशयोक्ति नहीं है, जी ! ऐसा तालुका नहीं, जहाँ हम गये नहीं, सन्त विनोबाजी की कृपा से। लेकिन वहाँ के वैष्णव-धर्म को ऐसा अधिष्ठान प्राप्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं है, जैसा महाराष्ट्र को प्राप्त हुआ है। थोड़ा-बहुत गुजरात-सौराष्ट्र को मिला है। नरसिंह मेहता, अखा, भोजा भगत, राजचन्द्र, प्रीतम, गिरिधर, केशव, दयाराम - अनेक सन्त (हुए यहाँ)! तो, सौराष्ट्र-गुजरात में थोड़ा-सा इसका स्पर्श है। **'विष्णुमय जग वैष्णवांचा धर्म, भेदाभेद भ्रम अमंगल.'** इसके सिवा आपका आज का विज्ञान भी क्या कहनेवाला है? भेद और अभेद दोनों भ्रम हैं, दोनों अमंगल हैं। 'विष्णुमय जग वैष्णवों का धर्म।' 'विश्' धातु का अर्थ है, व्याप्तिसूचक। तो, वह परमात्मा – 'विषय ही समूचा हुआ नारायण!' - **"विषयचि अवघा झाला नारायण।"** वह परमात्मा-विष्णु की जो सत्ता है, वह सर्वत्र ओतप्रोत, सर्वाकार है। इसलिए भेद-अभेद यह भाषा छोड़ दें। वे समस्त भ्रम हैं रे! बन्धन और मुक्ति – दोनों भ्रम हैं।

इतनी सारी यह बैठक आवश्यक होने के कारण आपके अनेक व्यक्तिगत प्रश्न रहते हुए भी जाते-जाते इस विज्ञान और आध्यात्मिक समन्वय की चर्चा आपको सुनाने की इच्छा हुई। गंभीर विषय है यह, किन्तु आपके दो-तीन प्रश्नों का आधार लेकर आज का प्रातःकाल का प्रवचन हुआ।

अब हम रुकेंगे।

"ब्रह्म-जिज्ञासा या अध्यात्म-जिज्ञासा एक ऐसी पवित्र अग्नि है, जो सारे जीवन के आन्तर-बाह्य को जला देती है। मैं जब हज़ारों लोगों को प्रवचनों में जाते हुए देखती हूँ, मन्दिरों में जाते हुए देखती हूँ, मस्ज़िदों में नमाज पढते हुए देखती हूँ, तो मैं भीतर ही भीतर काँप उठती हूँ कि हे प्रभो, ये सब लोग अपने जीवन के प्रति क्या खेल कर रहे हैं! ये खेल कर रहे हैं, क्योंकि एक बार उसका स्पर्श हो जाय, तो सवाल उठता है कि यह ऊर्जा कौन-सी है, जो अणु-रेणु में प्रकाशित है - जिसकी झलक देखते हैं, ओत-प्रोत है संसार जिसके तेज से, वह ऊर्जा कौन-सी? वह शक्ति कौन-सी? एक बार यदि ये प्रश्न उठे, तो उन प्रश्नों का उठना ही आपके जीवन का जो Status quo होगा, उसको उलट-पुलट कर फेंक देगा। यह हो नहीं सकता कि जिज्ञासा हृदय में जागृत हो और जैसा जीवन जिज्ञासा क़े जन्म से पहले चल रहा था, वैसा ही चले, असम्भव है! हो ही नहीं सकता। और यदि, वह होता है तो मान लेना चाहिए कि यह जिज्ञासा नहीं है। यह समस्त प्राणों की पुकार नहीं है। यह समस्त व्यक्तित्व की भूख नहीं है। ..."

[" मन के उस पार " मेंसे]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय-युग का अरुणोदय है; अतः आप यहाँ भारत में पूछते हैं इसलिए - मैं इसे ("ईशावास्य उपनिषद्" और "स्थितप्रज्ञ दर्शन" को) राष्ट्रीय प्रार्थना कह रही हूँ। युरोप-अमेरिका में होती हूँ, तब कहती हूँ कि यह वैश्विक प्रार्थना है।

भारतवर्ष में इतनी जातियाँ, इतने धर्म, इतनी संस्कृतियाँ, इतनी भाषाएँ हैं कि जो भारतीय-नागरिक बनेगा, यह अपनेआप विश्व-नागरिक बनेगा ही ! यहाँ यदि एकता तथा अनेकता का समन्वय साध्य हुआ, भाषाओं की अस्मिता, साम्प्रदायिक अस्मिता - ये समस्त तो विविधताएँ हैं, उनका यदि राष्ट्रीय एकता के साथ मेल किया गया, उनका यदि समन्वय सधना हुआ, तो इस देश का नागरिक है, वह अपनेआप ही विश्व-नागरिक होता है। इतनी विविधता और किसी भी राष्ट्र में नहीं है ! इतना श्रेष्ठ उत्तराधिकार हमें प्राप्त हुआ है !

जीवन का संपूर्ण स्वीकार

यहाँ आपके महाराष्ट्र में यदि हम सौ-पचास व्यक्तियों के साथ बैठे हैं, तो भी हमारी आँखों के सम्मुख आती है यह ज्ञानदेवजी की महाराष्ट्र भूमि ! यह भूमि सन्त एकनाथ की, नामदेव-तुकाराम जैसे असंख्य सन्तों की भूमि है। और यहाँ बिलकुल मुकुंदराय, अमृतराय से लेकर ज्ञानेश्वर, तुकाराम तक सभीने अपने भजनों द्वारा अद्वैत के अधिष्ठान पर रहकर द्वैत के स्वीकार का एक महागान गाया है। जीवन का संपूर्ण स्वीकार और फिर भी अद्वैत के अधिष्ठान को छोड़ना नहीं। हम अद्वैत से द्वैत के आँगन का संमार्जन करते हैं - ऐसा कहा है, निवृत्ति और ज्ञानदेव ने। इसके आगे अब हम क्या कहें ? परिसीमा है !

"बीज भाजून केली लाही, आम्हा जन्ममरण नांही"

"बीज भूनकर खील बनाई, हमें जन्म-मरण नहीं।" - यह तुकाराम महाराज की वाणी है। तुका कहते हैं कि - 'हम विठ्ठल के दास, किया पिण्ड में ग्रास ब्रह्माण्ड का।'

यहाँ की जो भागवत-परंपरा है, वह अति उज्ज्वल है। अन्य प्रदेशों में हम घूमे-फिरे हैं। भारत का एक ज़िला नहीं कि जहाँ हमारा जाना हुआ न होगा। अतिशयोक्ति नहीं है, जी ! ऐसा तालुका नहीं, जहाँ हम गये नहीं, सन्त विनोबाजी की कृपा से। लेकिन वहाँ के वैष्णव-धर्म को ऐसा अधिष्ठान प्राप्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं है, जैसा महाराष्ट्र को प्राप्त हुआ है। थोड़ा-बहुत गुजरात-सौराष्ट्र को मिला है। नरसिंह मेहता, अखा, भोजा भगत, राजचन्द्र, प्रीतम, गिरिधर, केशव, दयाराम - अनेक सन्त (हुए यहाँ) ! तो, सौराष्ट्र-गुजरात में थोड़ा-सा इसका स्पर्श है। 'विष्णुमय जग वैष्णवांचा धर्म, भेदाभेद भ्रम अमंगल.' इसके सिवा आपका आज का विज्ञान भी क्या कहनेवाला है ? भेद और अभेद दोनों भ्रम हैं, दोनों अमंगल हैं। 'विष्णुमय जग वैष्णवों का धर्म।' 'विश्' धातु का अर्थ है, व्याप्तिसूचक। तो, वह परमात्मा – 'विषय ही समूचा हुआ नारायण !' - "विषयचि अवघा झाला नारायण।" वह परमात्मा-विष्णु की जो सत्ता है, वह सर्वत्र ओतप्रोत, सर्वाकार है। इसलिए भेद-अभेद यह भाषा छोड़ दें। वे समस्त भ्रम हैं रे ! बन्धन और मुक्ति – दोनों भ्रम हैं।

इतनी सारी यह बैठक आवश्यक होने के कारण आपके अनेक व्यक्तिगत प्रश्न रहते हुए भी जाते-जाते इस विज्ञान और आध्यात्मिक समन्वय की चर्चा आपको सुनाने की इच्छा हुई। गंभीर विषय है यह, किन्तु आपके दो-तीन प्रश्नों का आधार लेकर आज का प्रातःकाल का प्रवचन हुआ।

अब हम रुकेंगे।

"ब्रह्म-जिज्ञासा या अध्यात्म-जिज्ञासा एक ऐसी पवित्र अग्नि है, जो सारे जीवन के आन्तर-बाह्य को जला देती है। मैं जब हज़ारों लोगों को प्रवचनों में जाते हुए देखती हूँ, मन्दिरों में जाते हुए देखती हूँ, मस्ज़िदों में नमाज पढ़ते हुए देखती हूँ, तो मैं भीतर ही भीतर काँप उठती हूँ कि हे प्रभो, ये सब लोग अपने जीवन के प्रति क्या खेल कर रहे हैं ! ये खेल कर रहे हैं, क्योंकि एक बार उसका स्पर्श हो जाय, तो सवाल उठता है कि यह ऊर्जा कौन-सी है, जो अणु-रेणु में प्रकाशित है - जिसकी झलक देखते हैं, ओत-प्रोत है संसार जिसके तेज से, वह ऊर्जा कौन-सी ? वह शक्ति कौन-सी ? एक बार यदि ये प्रश्न उठे, तो उन प्रश्नों का उठना ही आपके जीवन का जो Status quo होगा, उसको उलट-पुलट कर फेंक देगा। यह हो नहीं सकता कि जिज्ञासा हृदय में जागृत हो और जैसा जीवन जिज्ञासा के जन्म से पहले चल रहा था, वैसा ही चले, असम्भव है ! हो ही नहीं सकता। और यदि, वह होता है तो मान लेना चाहिए कि यह जिज्ञासा नहीं है। यह समस्त प्राणों की पुकार नहीं है। यह समस्त व्यक्तित्व की भूख नहीं है। ..."

["मन के उस पार" मेंसे]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन एकादश

जीवन का ऐश्वर्य

प्रश्न : 'हृदयग्रंथि क्या है ? वह कोई चक्र है क्या ? हृदयचक्र दायें भाग में रहता है, बायें भाग में या मध्य भाग में ?'

उत्तर : शास्त्र की एक परिभाषा रहती है। योग-शास्त्र, तंत्र-शास्त्र, मंत्र-शास्त्र – इन सबकी एक परिभाषा है। हम शरीर की Anatomy के संबंध में विचारने लगें तो विद्यालयों में जो पढ़ाया जाता है, जो शरीर-ज्ञान दिया जाता है, उसके अतिरिक्त हठ-योग या तंत्र-मार्ग का अभ्यास करने लगें तो, जो 'यौगिक Anatomy' पढ़ाई जायेगी, वह बहुत भिन्न रहेगी। चीन में Acupressure, Acupuncture - ऐसी पद्धतियाँ पढ़ाई जातीं हैं। उनके अनुसार शरीर में ७०० पॉईंट्स अत्यन्त महत्त्व के हैं कि जिन्हें स्पर्श करने पर जीवन-ऊर्जा का प्रवाह यदि अवरुद्ध हुआ होगा और उससे यदि कोई रोग, व्याधि हुई होगी, तो उसका निराकरण किया जा सकता है।

हठ-योग के अनुसार भी ऐसे सत्तर पॉईंट्स हैं। पश्चिम व पूर्व के देशों में कुछ मालिश करने की पद्धतियाँ, यौगिक मसाज आदि का यदि आप अभ्यास करने लगें, तो कहाँ से और किस प्रकार से आप स्नायुओं को, मज्जाओं को या नाड़ियो को स्पर्श करने पर, जो energy channels हैं, उन्हें सहायता होती है और The flow of energy accelerates यह आप जान सकते हैं। ये सभी शास्त्र हैं।

शास्त्रों की परिभाषा

आप जिसे 'चक्र' कह रहे हैं, ऐसे सप्त चक्र हैं।

" सप्त चक्र की माला पहनायी, बहुविध फूल लगायी।
तुकड्यादास बना एक झुलवा, आनंद ऊर न समायी ॥ "

सन्त तुकड्यादासजी कहते हैं कि - मेरे गुरु ने सप्त चक्रों की एक माला मेरे गले में डाल दी ! आप यदि कहेंगे कि शरीर के सप्त चक्र बतायें। तो, आप यदि शरीर को काटेंगे, तो वे सप्त चक्र दिखेंगे नहीं, साइकिल के पहिये जैसे ! गौ का शरीर काटोगे, तो दूध दिखेगा नहीं, रक्त ही दिखेगा; किन्तु यदि दूध दोहन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने की कला आप को अवगत होगी, तो दूध ले सकेंगे, काटोगे तो नहीं । फिर ख़ून ही निकलेगा । ऐसी यह शास्त्रों की परिभाषा है ।

हृदयचक्र, नाभिचक्र, नाभिचक्र में स्थित नाभिकमल की बावन पंखुडियाँ, उनमें स्थित बावन मातृकाएँ, नाद-बीज और स्वासोच्छ्वास की गति से या प्राणायाम की युक्ति से उस नाद-बिन्दु से, बावन मातृकाओं का विकास करना, बिन्दु मेंसे 'कला' साध्य करना या उस बिन्दु को ऊर्ध्व लेते-लेते वैख़री तक ले जाकर उसका स्फोट करना, आदि-आदि । अब कोई मुझसे पूछेगा कि - कहो, जी ! यह सब क्या है वह ? तो कैसे कहें ? यह अभ्यास का विषय है । तंत्र--शास्त्र में, योग-शास्त्र में चक्र-भेदन की प्रक्रिया है, वहाँ पर 'चक्र' शब्द का उपयोग करते हैं । "कुंडलिनी" शक्ति है ! कुंडलाकार ! शरीर काटोगे उस स्थान में, तो कुंडलिनी दिख़ेगी नहीं । "अधोमुख़ी सर्पिणी ।" - फिर उसे ऊर्ध्वमुख़ी बनाएँ । इडा, पिंगला - ऐसे नाम दिये गये हैं । चन्द्रनाड़ी-सूर्यनाड़ी - It's a code language-computers का electronics का अभ्यास करनेवाले हों, तो उनकी अपनी एक भाषा रहती है, The information that they feed into the machine is a code language. कॉम्प्यूटर में जो जानकारी भरी जाती है, वह उस यंत्र की सांकेतिक भाषा में ही । उसका decoding सीख़ना पड़ता है, तब आप वह भाषा व्यवहार में ला सकते हैं अथवा उस यंत्र का उपयोग कर सकते हैं ।

हृदयचक्र - Psycho-physical energy-centre

तो, हृदयचक्र यह कहीं वास्तव में चक्र है, एक physical organ है, ऐसा समझने का कारण नहीं । वे psycho-physical हैं । वह नाभि-स्थान में, energy-centres हृदयस्थान में होगा; कंठस्थान में, भ्रूमध्य में होगा अथवा सहस्रदल कमल-ब्रह्मरंध्र में होगा ।

जीवन-रसिकों ने शास्त्र बनाए । स्थूल से भी उनका सूक्ष्म में प्रेम अधिक । शब्दों से भी ज्यादा संज्ञाओं और संकेतों पर उनका प्रेम अधिक; अतः यह समस्त सांकेतिक भाषा है, जी !

प्रश्न आपने पूछा, "हृदयग्रंथि" क्या है ? ग्रंथि का सरल मराठी भाषा में अर्थ है "गाँठ" । अब हृदय में सचमुच यदि 'गाँठ' रही तो फिर, सर्जन को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुलवाना पड़ेगा। open-heart surgery, bye-pass surgery ये जो उपाय हैं, उनकी योजना करनी पड़ेगी। वैसी गाँठ तो नहीं न ? 'ग्रंथि' या 'गाँठ' याने "अविद्या का मूल कंद" या "अविद्या की गाँठ"। अविद्या को 'गाँठ' या ग्रंथि' कहा गया है। तो फिर कौन-सी 'गाँठ' ? जिसे हम अपना 'मैं'-पन समझते हैं, 'मैं' की कोई पृथक् सत्ता है और वह वैश्विक जीवन से अलग है और उसका अलगपन संभालकर रखने में, जीवन का यश है, ऐसा हम सब जो मानते हैं, उसे 'हृदयग्रंथि' कहा गया है। अहंकार की ग्रंथि। अविद्या की ग्रंथि। यह जो गाँठ कही गई है, वह है उस 'मैं'-पन का भान।

" भिद्यते हृदयग्रंथिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्यकर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ "

'भिद्यते हृदयग्रंथिः' हृदयग्रंथि का भेदन होता है; अर्थात् वह कोई physical process नहीं, वह शारीरिक प्रक्रिया नहीं; तो, उसमें "भ्रम-निरास" होता है, भ्रम का निराकरण होता है।

सब व्यापके भी प्रभु दश अँगुली शेष ही रहते हैं

इस विश्व का जो 'है'-पन है, 'होनापन' है, वह कोई एक वैश्विक व्यक्ति का रूप धारण नहीं करता। वह तत्त्वरूप से सर्वत्र व्याप्त है; किन्तु मेरा कुछ 'मैं-पन' है और इस विश्व का 'चालक', 'मालक', 'कर्ता', 'धर्ता', मैं ही हूँ, ऐसा कह के, वह जो वैश्विक 'होनापन' है, वह कभी आपके सामने खड़ा नहीं रहता। यह विभूतियों के परदे के पीछे छिपा रहता है और ख़ुद का जो तेज है, जो विभूतिमत्त्व है, उसे प्रकट होने देता है, कभी आदित्य-तेजोनारायण सूर्य के रूप में, कभी चन्द्र के रूप में, कभी शुक्र जैसा 'घन तमी शुक्र बध राज्य करी' - उस शुक्र के जैसा अत्यंत आकर्षक; सौम्य और स्निग्ध तेज के रूप में। ऐसा वह 'विभूतिमत्व' वह होनापन ख़ुद को प्रकट होने देता है।

इस विभूतिमत्त्व के पीछे, उसका जो 'होनापन' है, उसे उसने समस्त जीवन में मानो बाँट दिया है। "व्यापुनि अवघे दशांगुळें प्रभू उरला" - सब में व्याप्त। यह जैसा है, उसी प्रकार इस मानव-देह में भी 'वही जीवन' है, 'वही तत्त्व' है, वही 'विभूतिमत्त्व' है और उसीके साथ, मानव-समाज ने, सभ्यता व संस्कृति, समाज और सामाजिक जीवन का विकास – शारीरिक, मानसिक और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बौद्धिक शक्तियों की सहायता से करते-करते ज्ञान, अनुभव व संस्कार - ये कलाएँ निर्माण कीं और उनका संग्रह इस शरीर में भी है; किन्तु उसे जीने देने के बजाय हम ऐसा कहते हैं कि यह धारण करनेवाला "मैं" नाम का कोई है। इसीको 'ग्रंथि' कहा गया है।

जो है, उसे अभिव्यक्त होने देना चाहिए तथा दिक काल की मर्यादाओं में अर्थात् रंग, रूप, आकार - इन की चौखट में जो आया है, जिसे 'आरंभ' है, 'अंत' है, उसका अंत भी होने देना चाहिए। उसका 'जन्म', 'वृद्धि', 'क्षय', और जिसे मुक्ति कहते हैं, वह सब देखें, जब तक दिखाई पड़ता है तब तक! जीवन का साक्षात्कार मृत्यु की घटना में मिलता है - तब मृत्यु की जो अंतिम भेंट है, मृत्यु का जो क्षण है, उसको भी संवेदनशीलता से निहारें और विलीन हो जायें उसमें; किन्तु ऐसा हो नहीं पाता है, और चित्त को क्लेश होते हैं, वे इस हृदयग्रंथि के कारण; क्योंकि – मैंने यह निर्णय किया, मैंने यह प्राप्त किया, मैंने इतना सब कुछ बनाया और यह सब छोड़कर कैसे अब जाना ? (-ऐसा हमें लगता है)

अरे भाई ! रोज़ देखते हो न अपने आसपास – ऋतुचक्र घूमता है ! वनस्पतियों की सृष्टि में; पशु, पक्षी, प्राणियों - की सृष्टि में देखते हो न कि - जिसे आरंभ है, उसे अंत है ! जिसे आदि है, मध्य है, उसे अंत है ! विकास है, क्षरण है; और यह सब देखते हुए भी अपने बारे में भी वही होनेवाला है इस देह में, यह मानने को जीव तैयार नहीं होता।

वृक्ष कैसे अपने ऐश्वर्य में खड़े रहते हैं, जी ! आम्रवृक्ष, वटवृक्ष, अश्वत्थवृक्ष, पञ्च-महाभूतों का समूचा सत्त्व लेकर वह प्रकट करते खड़े रहते हैं। उन्हें कुछ 'मैं हूँ', 'मैं हूँ' ऐसा कहना नहीं पड़ता। वे वृक्ष, अपने वैभव से 'जीवन है', 'जीवन है' ऐसा स्पन्दित करते जीते हैं। सरिताओं द्वारा शांत बहनेवाला जल; सागर के नमकीन जल को लेकर उसमेंसे मधुर-मीठे जल की वर्षा करनेवाला मेघ; प्रकाश, उष्णता का संजीवन देनेवाले चन्द्र, सूर्य - इनमें ग्रंथि नहीं है। सिर्फ़ मानव के चित्त में ही यह ग्रंथि है। It is a wrong turn that human civilisation took, in extending the idea of a separate entity, from the biological to the psychological worlJ.

शरीर में आपका व्यक्तित्व है और उसकी आवश्यकता भी, उसका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संरक्षक है वह; किन्तु इस शरीर में संस्कारों के प्रवाह में कोई 'संस्कारी' है; ज्ञान के प्रवाह में कोई 'ज्ञानी' है, चिंतनों और विचारों की धारा बहती है, उसमें कोई 'विचार करनेवाला चिंतक' है। A conceptualisation grafted on the perceptual world - और फिर इससे मुक्त कैसे हों ? इसके लिए एक अन्य आडंबर, मनुष्य रचता है। आपने पूछा कि 'हृदयग्रंथि' क्या है ? तो यह ग्रंथि याने, यह 'अविद्या की ग्रंथि' है।

देह को एक नाम मिला। हम उसे राम, कृष्ण, गोविंद, माधव कहते हैं; किन्तु, इसलिए क्या उसे देह के अंदर धड़कनेवाला-स्पन्दित होनेवाला जो जीवन है - कि जिसे स्त्रीत्व नहीं, पुरुषत्व नहीं - उसे क्या आप, इस साढ़े तीन हाथ के देह में, देह का क़ैदी माननेवाले हैं ? नहीं, जी। और इसीलिए आपसे कहा जाता है कि देह में एक 'देही' है। 'नित्यमवध्योऽयम्' जिसे शस्त्र मारता नहीं, पानी भिगोता नहीं, अग्नि जलाता नहीं; क्योंकि वह सिर्फ़ 'सत्ता' है।

सत्ता का बोध - 'ग्रंथि' निर्माण नहीं होती

जलाशय के समीप जायें और अंजलि भरकर जल की लहरें हाथ में लें, तो जल ही हाथ में आता है, वैसे इस देह में जो इन्द्रियाँ हैं, उनका समस्त ज्ञान, अनुभूति, संस्कार ये समूचे जो तरंग हैं, वे यदि अंजलि में लेने गये तो, जीवन की जो 'सत्ता' है वह 'सत्ता ही' आपके हाथ में आयेगी और यह यदि 'बोध' एक बार हो गया, तो फिर देह में रहते-रहते ज्ञान का, अनुभवों का, भूतकाल का, संस्कारों का उपयोग करते-करते 'ग्रंथि' निर्माण होती नहीं।

जैन आगम में अत्यन्त सुंदर शब्द है 'निर्ग्रंथ' ! 'केवली' अवस्था को वे 'निर्ग्रंथ' अवस्था कहते हैं। हमारे विनोबाजी बड़ी मजेदार बात करते थे ! वे ग्रंथ-प्रामाण्य समाप्त होने को 'निर्ग्रंथ' होना कहते थे। निरुक्त (शब्दों की मूल उत्पत्ति) करने में वे अति चतुर ! 'निर्ग्रंथ' शब्द के कई अर्थ बताते थे; कवि थे, क्रान्तदर्शी थे। हम उनसे मिलने कभी गये, तो कहते थे, 'यह निर्ग्रंथ व्यक्ति आ गई है।' मैंने पूछा वह कैसे ? 'ग्रंथप्रामाण्य मानती नहीं, अतः निर्ग्रंथ !' ऐसा वे कह देते थे।

'ग्रंथ' शब्द उसका मूल धातु; उससे ग्रंथि शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई ? रूढ अर्थ क्या है..... आदि के संबंध में मुझे उतरना नहीं है। शब्द तो एक पूरी सृष्टि है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनिश्चितता यह जीवन का ऐश्वर्य

प्रश्न : हमारे नज़दीक के लोगों की मृत्यु यह दुःख व हताश करनेवाली घटना रहती है। ऐसी घटनाओं मेंसे फिर मृत्यु के संबंध में विचार आते हैं। 'मृत्यु क्या है' - समझ में न आने से, वह एक नैसर्गिक घटना रहकर भी, उसके कारण एक प्रकार का भय निर्माण होता है। अनिश्चितता की भावना मन में आती है। हो सकता है, वह शारीरिक नाश का भय न रहकर, हम कभी भी लौटकर इस पृथ्वी पर आनेवाले नहीं, इस तरह की बात से निर्माण होनेवाली चिंता होगी। इस भय से कैसे मुक्त हो पायेंगे ? कुछ विवेचन करें।

उत्तर : अपने नज़दीक के लोगों की मृत्यु यही दुःख और हताश करनेवाली घटना है। दुःख तो होगा, दुःखी होंगे; क्योंकि अपने साथ जो व्यक्ति रही या जिसके साथ हम रहे, सुख-दुःख को बाँट लिए, एकत्रित रहकर खाया, पिया, कई कार्य एकसाथ रहकर किये और एक दिन अचानक, आकस्मिकता से वह व्यक्ति नहीं रही और अब वह कभी लौटेगी नहीं, एक irreversible separation है; तो दुःख कैसे नहीं होगा ? मनुष्य यदि 'स्थितप्रज्ञ' हुआ, तो भी वह जड़ नहीं रहता, पाषाण नहीं बनता। तब, दुःख तो होगा ही। 'It is a privilage of the human being to face the sorrow'. जहाँ जन्म और मृत्यु निश्चित है, वहाँ इस प्रकार का दुःख हमें भी आयेगा नहीं, ऐसा क्यों समझें ? अजी, आनेवाला तो है ही ! सिर्फ़ आज आयेगा या कल आयेगा, मालूम नहीं। यह अनिश्चितता, यही जीवन का ऐश्वर्य है। **"The unpredictability of Death is the 'Majesty' and 'Elegance' of Life and Living."** किसी भी क्षण मृत्यु आ सकती है; अतः प्रत्येक क्षण का मोल लाखों का है। उसे खोना नहीं चाहिए। उस क्षण में जितना जी सकते हैं, उतना उत्कटता से जियें। पूर्ण समग्रता से जियें। जैसे कि हम इसी क्षण में मृत्यु को गले लगा रहे हैं ! By living through the moment you die to it. सारा सत्त्व जहाँ, अपनेआप लुटा जाता है वह 'आत्मोत्सर्गी' जीवन यह एक यज्ञ है। 'आत्मोत्सर्ग' यह उस यज्ञ का स्वरूप है। कोई भी सौदा किये बिना जो स्वतः प्रेरणा से लूटा जाता है, जिसका उत्सर्ग होता है, उसे "यज्ञ" कहते हैं। सौदा करके, हिसाब करके जो दिया जाता है, उसे "व्यापार" कहते हैं। Calculations, manoeuvering (चालाकी), trade, business,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

commerce - यह भी करना पड़ता है समाज में; किन्तु जीवन के साथ व्यापार नहीं हो सकता । उधार में भी नहीं और नगद में भी नहीं ! इसका पावित्र्य कुछ अलग ही है !

विरह, दुःख, वेदना – जीवन-समृद्धि

'तब दुःख होता है' इसमें मुझे आश्चर्य नहीं लगता । कोई तीक्ष्ण बाण घुस जाये हृदय में और वह बाण पूर्णतया हृदयभेद कर जाये, इतनी तीव्र वेदना । The life of a person who has not felt and seen the edge of that sorrow, the piercing nature of sorrow, is a poor person. His life is poor - ऐसे विरह के दुःख से, वियोग की वेदना से जीवन की संवेदनशीलता को एक तेज आता है, जीवन की समृद्धि बढ़ जाती है । 'Joy and Sorrow' - आनंद और दुःख ! ये जीवन को समृद्ध करनेवाली घटनाएँ हैं । तो इस दुःख से अपना जीवन क्षीण कैसे होगा, जी ? बेचैनी आयेगी, रोना आयेगा, एक प्रकार की रिक्तता का आभास होगा, यह सब सत्य है; किन्तु उससे हताशा कैसे आयेगी ? - unless you begin to pity yourself and indulge in self-pity, will there be any kind of frustration or disappointment ? हताशा या निराशा कैसे आयेगी ? आनंद से यदि शक्ति क्षीण होती नहीं, तो फिर दुःख से कैसे क्षीण होगी ? हर्ष से शक्ति क्षीण होती है । हर्ष में, सुख में - pleasure, excitement रहती है, उत्तेजना रहती है; और पुनः पुनः जो उत्तेजित हो जाते हैं या उत्तेजना के प्रसंग निर्माण करते हैं, their whole nervous system sets dullified - उनकी संवेदनशीलता बिलकुल बधिर हो जाती है । आनंद की बात वैसी नहीं है, जी ! तो, ऐसा यह विराट दुःख मानव-जाति के हिस्से में आया है । जन्म लें, देखें, सुनें, कहें, लेन-देन करें और किसी दिन, एक क्षण में निकल कर चले जायें ।

तो, हताशा यह मानसिक विकृति है और दुःख यह जीवन का अंश है । 'दुःख' शब्द मैं 'sorrow' इस अर्थ में कहती हूँ, 'व्यथा' के अर्थ में नहीं । व्यथा याने suffering; **- and religion is to end that suffering** - तो, यह 'दुःख' है, 'घट साथे रे जडियां !' अर्थात् वे संवेदनाएँ इस जीवनघट से जड़ीं हुईं हैं, खचित की हुईं हैं । तो, हताशा आती है, क्योंकि हमारे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन में विचार आते हैं कि अब मेरा क्या होगा ? पति कहो, पत्नी कहो, पुत्र कहो, पुत्री कहो, भाई कहो, मित्र कहो - इनमेंसे कोई चले गये, 'अब मेरा क्या होगा ?' - यह आत्मदया है । इसमेंसे हताशा, निराशा आती है । इसे हमें देखना चाहिए । अब मुझे अकेले जीना है । इस 'अकेलेपन का डर' निरंतर लगा रहता है । परिवार में रहते हुए, यह 'आंतरिक अकेलापन, एकाकीपन (तनहाई)' क्या है, यह यदि आँखें खोलकर देख लिया जाए और यदि उस 'अकेलेपन से' - fear of loneliness - से एक बार सामना कर लिया और उसमेंसे मुक्त हुए, तो फिर मृत्यु का भय नहीं लगेगा ।

जीवन में यदि law of Karma होगा, तो भी, मनुष्य-जीवन या समाज-जीवन - यह कोई पाठशाला या विद्यालय का time-table नहीं है । एक सामान्य क्रम हो सकता है । जन्म, शैशव, कैशोर्य, यौवन, प्रौढ़त्व, वृद्धत्व - ऐसा क्रम रहेगा, किन्तु इस क्रम के व्यतिरिक्त, संबंधों के बारे में, वियोग व संयोग के बारे में, सुख-दुःख के बारे में उनका अचूक ऐसा समयबद्ध पत्रक नहीं बना पाते हम । एक प्रकार की अनिश्चितता रहती है । unpredictibility रहती है, और इसलिए असुरक्षा लगती है । यह जो जीवन और मृत्यु की रहस्यमयता, अनिश्चितता, the fact of unpredictibility है - मृत्यु कहाँ आयेगी, कब आयेगी, कैसे आयेगी, किस कारण से आयेगी - कुछ मालूम नहीं होता । तो, मृत्यु आकर खड़ी रहती है आपके सामने और क्षणभर का भी समय न देते हुए हाथ पकड़ती है और चलने लगती है लेकर ! "नहीं, बाबा ! ठहर जरा ! अभी मेरी तैयारी नहीं ।" - कहोगे तो वह सुनती नहीं कुछ ! तैयारी के लिए रूकती नहीं । धसीटते हुए, खींचते हुए ले जाती है ।

चित्त में भय क्यों ?

मृत्यु की अनिश्चितता का स्वीकार चित्त में नहीं; इसलिए 'भय' । It is the resistance to the unpredictibility about Death. The reluctance to accept Life as it is, that stimulates an uneasiness which you call 'Fear' - नहीं तो भय का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं । अन्य पशु, पक्षी, प्राणी मरते हैं; किन्तु हमें भय लगता नहीं; यदि अपना कोई मर गया, तो फिर मेरा क्या होगा ? मुझे जाना होगा क्या ? - अजी, जाना होगा ! - ऐसा बुद्धि कहती है; पर जाना तो नहीं चाहते । यह जो एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावनात्मक प्रतिकार है, भावनात्मक अस्वीकार है, जीवन की यथार्थता का, उससे आनेवाली बेचैनी को आप 'भय' कहेते हैं। नहीं तो जो अटल है, ध्रुव है, उसका भय किसलिए, जी ! .... हाँ ! अभी भय लगने जैसी परिस्थिति है; क्योंकि आज हमने जो जीवन-पद्धति बनाई है, उसमें सहजता से जीना हो नहीं पाता और सहजता से मरना भी तो हो नहीं पाता। वह जीवन-पद्धति हमें मार डालती है। It is a "murderous life style." It kills you, does not allow you the privilege of dying on your own. एक तो इतना प्रदूषण है कि आप सहजता से स्वस्थ रहें, निरोगी रहें, ऐसा अवसर ही नहीं। इतनी अमानुष गति से वाहन दौड़ते हैं; चलाए जाते हैं, कि आगे-पीछे से आकर कब आपको ठोकर देंगे और मार देंगे मालूम भी नहीं पड़ता ! ऐसी भयंकर स्थिति है, economic structures, administrative centralised political structures, industrial structures - इतने विस्तारित हुए हैं कि मक्खियों- मच्छरों से भी मानव का मूल्य कम हो गया है उन structures के सामने !

पंजाब में आज जो लोग मारे जा रहे हैं; फिर वे ध्येय से पागल या नादान सिख युवकों के हाथों से हों या सरकार के पुलिस-कर्मचारियों की ओर से हों, वे मारे जा रहे हैं। वे मर नहीं रहे हैं। मुंबई, कलकत्ता, लंडन, न्यूयॉर्क - ऐसे शहरों के रास्तों पर जो मनुष्य मरते हैं, वे जिन्हें हम दुर्घटनाएँ (accidents) कहते हैं, उसमें मारे जाते हैं। अतः मैं इसे "murderous life style" कहती हूँ। इसका भय लगने जैसा है ही ! यह हम समझ सकते हैं; किन्तु अन्यथा मृत्यु का भय जो है, वह केवल यथार्थता का अस्वीकार है। अस्वीकार मेंसे आनेवाली भीरुता या कायरता है वह ! It is a by-product of the resistance and the reluctance. It hasn't got any substance by itself - ऐसा मुझे लगता है।

हमें शारीरिक नाश का भय नहीं लगता। किन्तु 'हम फिर लौटकर नहीं आनेवाले' - इसका भय लगता है। (ऐसा आप पूछते हैं, किन्तु) you are very much going to come back - इच्छा नहीं हो, तो भी। 'लौटकर आयेंगे कैसे ? कितने रूप लेकर आयेंगे ?' आईये, यह सब हम देखें। मैं आपसे सीधी सट् भाषा में कह रही हूँ, तो भी, यह विषय गंभीर है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जन्म लेना पड़ता है वासनाओं के कारण

चित्त में विचार व विकार का जो चक्र चलता रहता है, वह अविरत चलता ही रहता है ! ये विचार, विकार, वासनाएँ - सब पार्थिव द्रव्य हैं। It is a material process, something is emanating from your body, in the form of vibrations. आप अपने कमरे के सब दरवाज़े और खिड़कियाँ बँद करके बैठें भी हों और विचार कर रहे हों या वासनाओं से खेल रहे हों, तो भी हमारे समस्त शरीर से स्पन्दन बाहर निकलते रहते हैं और एक ही विचार या एक ही वासना बारबार उमड़ते-घुमड़ते रहते हैं, आपके भीतर चित्त में; फिर शब्दाकार अथवा चित्राकार होती हैं, तब स्पन्दन बाहर निकलते रहते हैं और आकाश में, आपके आसपास वे घूमते रहते हैं। They have a vibrational existence. योगाभ्यासी या क्रांतदर्शी-जनों को, वह aura के रूप में, आपके शरीर के आसपास में, सिर के इर्दगिर्द वलय के रूप में भी दिखाई दे सकते हैं। ये कल्पनाएँ नहीं हैं, जी ! तथ्य हैं ये ! आपके शरीर से व्यक्त होनेवाला प्रत्येक विचार, जो स्पन्दनों के रूप में आकाश में जाकर विसर्जित होता है, उसकी आकृति बनती है, उसका वलय बनता है। इस निराकार, निर्गुण आकाश के उदर में क्या-क्या समाया है, कौन कहे ?

जिस देह से, यह जो सारा बाहर आया और आकाश में विसर्जित हुआ, वह आपका देह विसर्जित होकर गिरा अर्थात् देह को मृत्यु आयी - हमारी मराठी में सुंदर शब्द है 'देवाज्ञा हुई।' - अत्यन्त सारगर्भित मधुर शब्द है ! गुजराती में जैन-समुदाय में भी ऐसा ही मधुर शब्द है - 'कालधर्म' (पाना)। तो, शरीर निर्जीव हुआ, तो भी जो विचार-विकारों के स्पन्दन हैं, वे घूमते रहते हैं आकाश में। Thoughts does not die - आकाश में तैरते हुए उन स्पन्दनों को, फिर जब कोई पति या पत्नी मिलते हैं, तब उन पति-पत्नी मेंसे किसीके चित्त में उसी प्रकार के वासना, विचार होंगे, वहाँ वे स्पन्दन खींचे जाते हैं। At the moment of conception, they get pulled towards the couple; और फिर पुन: शरीर धारण करके, the thought swing goes on. समझ में आया हम कैसे लौट आते हैं, वह ? इसे 'पुनर्जन्म' कहना हो, तो कहो।

यह जो विचारों की ऊर्जा है, उसके पास self-consciousness है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्व-संवेद्यता है । आपने देखा होगा या para-psychologist लोगों से सुना होगा कि - कुछ बालक कहते हैं कि पूर्वजन्म में ऐसे-ऐसे स्थान में रहता था अथवा ये मेरे माता-पिता नहीं हैं । वहाँ मेरा गाँव है, वहाँ मुझे ले चलो, आदि । ऐसे बालक हमारे देखने में हैं और उनका verification भी हमने किया है ।

तो, जब तक वासना और विकार है, तब तक हम लौटकर आयेंगे ही; पृथ्वी पर कभी भी आयेंगे ही नहीं - ऐसा क्यों कहते हो ? हमें अगर आवागमन करना है, 'पुनरपि जननीजठरे शयनम्' करना है; तो कोई बाधा नहीं, सुविधा है; यदि आना न हो तो, जिस वासना के संग में 'जन्म लेना पड़े वही हो गयी हरिरूप' ।

" जन्म धेणे लागे वासनेच्या संगे
तेचि झाली अंगे हरिरूप........ "

तो, तटस्थ से, चित्त का समत्व रखकर, इस देहरूपी प्रारब्ध में जो पूर्व (पुरानी) वासनाएँ समायी हुई हैं, उनका धर्मोचित पद्धति से अगर हमने उपभोग कर के क्षय न किया - 'भोगात् एव क्षयः।' - तो हो गया । 'प्रारब्ध-कर्माणाम् भोगादेव क्षयः।'

धर्म से अविरोध रहे इस पद्धति से 'काम' भी हम जियें, उसका भी आनंद लूटें; किन्तु यह सब करते समय, नया प्रारब्ध, नया संचित निर्माण हों नहीं, नया कर्म बने नहीं, इतनी सावधानी लेनी चाहिए । योग तो यही सिखाता है न !

चित्त का समत्व रहा और राग-द्वेष आये नहीं, तो प्रारब्ध बनता नहीं । 'युध्यस्व विगतज्वरः' । राग-द्वेषों के संस्कार, इनके ग्रंथि उत्पन्न हुए बिना, इस संबंध मेंसे, इस द्वैत मेंसे द्वंद्व निर्माण न करते हुए, through the corridors of duality - मानव शान से चलते - जा सकता है । पुराना जो है, वह भोगकर मुक्त होना और नये का निर्माण ही नहीं करना । जैन-धर्म ने इसे "वितराग का पंथ" कहा है । बौद्धों ने इसे "निर्वाण का पंथ" कहा है । "जीवनमुक्ति, सदेहमुक्ति" - ऐसा वेदान्त में कहा है । 'एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ !' 'ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे'; भगवद्गीता की भाषा है । फिर से आना नहीं है, तो उसका भी मार्ग है और पुनः आना भी है, तो उसका भी मार्ग है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वसुंधरा के पास पुनः आना है

अन्य दृष्टि से हम इस प्रश्न की ओर देखेंगी, जी ! प्रश्न की प्रदक्षिणा करें। जिस प्रश्न को एक-एक पँखुड़ी होगी, उस प्रश्न से कहेंगे कि खोल तेरी पंखुड़ी ! हम देखते हैं उसके रंग, उसका रूप, उसे क्या कहना है वह ! प्रश्न को कहने दें तो वही अपना उत्तर कहने लगता है।

समझो कि शरीर मृत हो गया। अंत्येष्टि-अग्नि संस्कार किया गया; फिर क्या हो गया ? शरीर की राख हो गई। रूपांतर ही हुआ या नहीं ? अस्थियों के कुछ मुट्ठीभर टुकड़े रहे और राख हुई। जल था, वह उड़ गया। माँस था, वह जल गया, रक्षा (राख) हुई। नष्ट तो कुछ भी नहीं हुआ। रूपांतर है रे यह ! नाश नहीं ! हमारी भारतीय संस्कृति में - जिस प्रकार 'Devil' शब्द नहीं, उस प्रकार 'नाश' शब्द भी है नहीं। जो है, उसका नाश कैसा ? वह राख कहीं तो फेंकी कई, गड्ढा करके उसमें डाला गया। मिट्टी में मिल गई फिर वह; फिर आप मिट्टी बन गये न ! आप उस उर्वी, गुर्वी, क्षमा, धरित्री, धात्री – ऐसी पृथ्वी का अंग बन गये न ! आप गये कहाँ ? पृथ्वी पर आये बिना आपका छुटकारा नहीं। - नदी में फेंकी गई, तो आप सागर में मिल जाओगे और फिर वर्षा के रूप में पुनः लौट आओगे। नाश कैसा रे ! .... हाँ !! यह जो आपकी आवृत्ति है, उस आवृत्ति के ही रूप में आना - ऐसा आग्रह रहा, तो फिर उसका कोई उपाय नहीं; किन्तु किसी न किसी रूप में, कहीं तो, कभी तो, कैसे भी इस वसुंधरा के पास वापस आना है। वही धरती, वही गगन, वे ही नदियाँ, वही सागर, वही आदित्य, वही चन्द्रमा - इन सभी के समीप, यदि साथी समझकर आना हो, तो आप कहो या न कहो, वह क्रम है ही ! It is a cylce of life - और वह क्रम दिखाने के लिए सदोदित गोलाकार या वर्तुलाकृति का उपयोग होता है। So, circle is a perfect shape, like 9 (nine) is a perfect number.

ऑस्ट्रेलिया के Tribal लोगों ने मुझे एक बार बुलाया मेलबॉर्न के पास। उन्होंने अपनी एक tribal government की स्थापना की थी उनके preserves में। वे बड़े प्रेम और आग्रह से मुझे ले गये, उन preserves में। वहाँ के आदिवासी-जनों के साथ, उन्हींकी झोंपड़ियाँ में एक-दो दिन रहने का भाग्य मुझे प्राप्त हुआ। चे, जो कुछ आकृतियाँ करते थे, उन्हें देखा, समूचे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोल से संबंधित। गोल वर्तुल, पहाड़, जल व वनस्पति - इन चार वस्तुओं को वे पवित्र समझते थे। उनका एक प्रवक्ता जो अंग्रेजी जानता था, उससे मैंने कहा, यह क्या है ? इसकी sanctity, इनका पावित्र्य कैसे-क्या आप मानते हैं ? उसने कहा कि आपको कैसे मालूम नहीं यह ? यह ऑस्ट्रेलिया जो देश है, यह प्राचीन काल में भारत से जुड़ा हुआ था। यह समुद्र बाद में आया है। दक्षिण भारत से हमारा अति प्राचीन संबंध, उस कारण द्रविड संस्कृति से हमारा अत्यन्त पुरातन संबंध है। उन्हें तुलसी का पौधा प्राप्त होता नहीं। किन्तु तुलसी जैसी दिखनेवाली एक वनस्पति है। प्रातः उठकर, उस पर जल सिञ्चन कर, उसे नमन करते हैं और उसकी चारों और एक वर्तुल बनाते हैं। यूँ ही 'cycle' शब्द से मुझे याद आयी।

ऐसा मैंने नोर्वे में भी देखा था। नोर्वे को 'उत्तरापथ' - ऐसा कहते हैं। उनका ऐसा कहना है कि वेदों की रचना हमारे देश में हुई। वहाँ तो कितने सारे संस्कृत शब्द हैं और परिवारों के कितने सारे रीति-रिवाज हमसे मिलते-झुलते हैं। एकदम उत्तर ध्रुव तक जाकर आई हूँ। स्मरण हों भारतीय संस्कारों का, संकेतों का, इतना साम्य है !

तो, यह जो cycle of life है, जहाँ जीवन एक रूप से जाता है और अन्य रूप से लौट आता है, यह जो अनादि, अनंत खेल है, क्रीड़ा है, इस जीवन की, उसमें मानव भाग लेते आता रहा हैं; अतः मुझे यहाँ भय का कोई कारण दिख नहीं पड़ता।

प्रश्न : 'मृत्यु' का अर्थ समझाएँ।

उत्तर : जो आँखों को दृष्टिगोचर होता है उसका अर्थ बताने की तो आवश्यकता नहीं। मनुष्य की यदि हत्या की गई नहीं, व्यक्ति मारी गई नहीं और देहान्त हुआ 'देवाज्ञा' से, तो उस देह मेंसे कुछ तत्त्व गया। कहाँ से वह गया ? किस द्वार से गया ? वह प्रकाश रूप से गया या नाद रूप से ? प्राण आँखों से गये या मुख से, नाक से, या ब्रह्मरंध्र से या अपानमार्ग से ? - उस देह मेंसे कुछ निकल जाता है। जो निकल जाता है, उसका फोटो लेने का अत्यन्त प्रयास रशिया में चल रहा है; किन्तु अभी तक तो ऐसे power lens उन्हें प्राप्त हुए नहीं कि वह तत्त्व निकलते समय, उसका वे फोटो (चित्र) ले सकेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राण जाने से पहले या प्राण जाने पर उस शरीर की जो कुछ परिस्थिति चौबीस या अड़तालीस घंटे तक रहती है, उसके फोटो उन्होंने ले लिये हैं। प्रकाश तत्त्व कैसे-कैसे कम होता जाता है, शरीर की ऊर्जाओं की गति कैसे धीमी होती जाती है, इसके फोटो लिये गये है; किन्तु मृत्यु के समय क्या निकल जाता है, वह हवा से भी सूक्ष्म होता होगा। आँखों को दिखनेवाले प्रकाश या अंधकार से भी वह सूक्ष्म होता होगा। "न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्। नेमा मा विद्युतो भान्ति कुतोऽयं अग्निः"।

तो सूर्य, चन्द्र, तारे, नक्षत्र - इन सभी के प्रकाश से भी भिन्न, ऐसा वह 'प्रकाश तत्त्व' होना चाहिए कि जिसे हम 'आत्मसत्ता' कहते हैं। वह आँखों की दृष्टि को दृश्य नहीं हो सकता, अतः वह जो जाता है, वह क्या जाता है, ऐसा यदि मुझसे कहोगे, तो मुझे नम्रता से कहना पड़ेगा कि मुझे ज्ञात नहीं। शब्दों से कहा जा सके ऐसा कुछ बुद्धि को उसके बारे में ज्ञात नहीं।

जीवन की यथार्थता का स्वीकार

अब आगे की बात, 'भय से मुक्त कैसे हो सकेंगे' ?

इच्छा होगी तो मुक्त हो सकेंगे। जो है उसका स्वीकार करने की शिक्षा लें। प्रतिदिन प्रातः से रात्रि तक, जीवन की यथार्थता का स्वीकार करें; यानी यह जीवन परिवर्तनशील है, अनित्य है इसका स्वीकार करें। अब है, वह एक क्षण के पश्चात् नहीं, वृत्ति के रूप में नहीं, विचार के रूप में नहीं। आपके शरीर के अवयव, धातु, रक्त - इनके गुणधर्म बदलते रहते हैं। आयुर्वेद की दृष्टि से हर सात वर्षों में संपूर्ण परिवर्तन हो जाता है। बाकी शास्त्रों का तो मैं जानती नहीं। ये metabolical changes (कायान्तरण-रूपान्तरण) होते हैं। फिर, बाह्य पदार्थों में भी फेरफार होते रहते हैं। यह जो, तथाकथित पदार्थों की या जड़ सृष्टि की और आपकी मानसिक या बौद्धिक सृष्टि की परिवर्तनशीलता है, इसका यदि स्वीकार किया गया, तो फिर अन्यों से संबंध या संपर्क करना - इसका आप स्वीकार करेंगे। पदार्थों से संपर्क आता है, व्यक्तियों से संबंध आता है, तब उस संबंध को आप एक मानसिक कालखंड में जीते हैं। दो वर्ष, चार वर्ष, दस वर्ष आदि। उसको वास्तव में सत्ता नहीं। Psychological time is not actually a fiction, it is not an illusion, but it's a creation, creation of the human brain and therefore, it has only

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

a conceptual content, not factual content. वह एक measurement है। जिस प्रकार space में आप गिनती करते हैं - किलोमीटर, फलाँग, मील आदि; वैसा इसे कोई अस्तित्व नहीं। वह अस्तित्व आपके मन में है। दिन, वर्ष इन्हें जो अस्तित्व है, वह है आपके मन में, बुद्धि में; किन्तु जीवन जो है, It is time-free 'Isness' ! जीवन में 'समय, काल' इनकी तुलना हो, गणना हो - ऐसा कुछ नहीं। जीवन की यथार्थता ऐसी है कि, उसको संख्यन, गणन, कलन ये प्रक्रियाएँ लग ही नहीं सकती।

तो, ऐसे ही व्यक्तियों से, पदार्थों से आनेवाले संबंधों में परिवर्तन होते रहते हैं। कब परिवर्तन होगा, कह नहीं सकते; अतः प्रेम के, स्नेह के संबंध रहें। रसिकता से पदार्थों का उपयोग करें, और व्यक्तियों के साथ जियें। व्यक्तियों से या परिस्थिति से, कहीं भी अपने आपको बाँध न लें। ज्ञान प्राप्त करें, धन कमाएँ, प्रतिष्ठा प्राप्त करें; परंतु मैं आज हूँ, अब हूँ और कल नहीं, ऐसी परिस्थिति हो सकती है, यह समझकर रहें। उपभोग-परायणता और आसक्ति यह यदि न रहीं जीवन में, तो भय से मुक्त हो सकते हैं। यह आपका हमारा मिलन क्षणभर का है। सहवास घड़ीभर का है; पढ़ते हैं न हम कि 'जीवन नश्वर है' तब इस यथार्थता का आप स्वीकार करोगे, तो मुझे लगता है कि भय से मुक्ति मिले बिना रहेगी नहीं।

प्रश्न : 'मनुष्य मृत होता है' यानी सर्वसाधारण समझ के अनुसार देह में रहनेवाला चैतन्य निकल जाता है। यह कहाँ तक ठीक है ? यह शक्ति या चैतन्य सर्वव्यापी है। वह जड़ वस्तु में भी अर्थात् प्रेतावस्था के शरीर में भी रहेगी ही, फिर मनुष्य की मृत्यु यानी निश्चित क्या होता है ?

उत्तर : मुझे लगता है, इस प्रश्न के संबंध में हम कह चुके हैं।

समाधि यानी 'आत्महत्या' नहीं

प्रश्न : समाधि लेना, अर्थात् इस लोक से बिदाई लेकर देह को समाप्त करना, नष्ट करना और आत्महत्या करना यानी किसी भी मार्ग से देह को समाप्त करना, नष्ट करना। इन दोनों के संबंध में देह को नष्ट करना, यह एक ही क्रिया घटित होती है; फिर आत्महत्या कानून की चौखट में क्यों बैठती नहीं ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उत्तर : अब मैं कैसे कहूँ ? किन्तु 'आत्महत्या' यह समाधि नहीं, इतना तो आपको मालूम होगा। आत्महत्या करना यह कानून से अपराध कहा गया है, तो भी जो ज़ोर-जबरदस्ती से मारकर, फिर वह आत्महत्या है, ऐसा लोग दर्शाते हैं। मुझे लगता है कि, लोगों की सुरक्षा के हेतु, The weaker section of society, के संरक्षणार्थ आत्महत्या को, कानून से अपराध माना गया होगा। यह यदि 'अपराध नहीं' ऐसा कहा गया, तो आज जो कुछ अपवादात्मक घटनाएँ घटित हो रही हैं, उससे भी अधिक होती रहेंगी। महाराष्ट्र की स्थिति मुझे मालूम नहीं, किन्तु मैं गुजरात के समीप वास करती हूँ। मुझे लगता है कि - महिलाओं की आत्महत्याओं के कारण होने की मृत्यु संख्या में भारत में प्रथम स्थान उसका है। स्त्रियाँ जलाईं जातीं हैं, मारी जातीं हैं और 'आत्महत्या की' या 'मृत्यु हो गई' - ऐसा कहते हैं।

कानून का प्रश्न हम अलग रखेंगे। सजीव समाधि लेने के लिए कोई भी अवांतर कारण नहीं होना चाहिए, ऐसा शास्त्रों का विधान है। अति दुःख हुआ, अपयश आया, कुछ सुझा नहीं, desperate हुआ या हुई, ऐसा कहकर निराशा से, हताशा से, आततायिता (दुष्ट-अत्याचारी बनकर) से, आवेश से जो ली जाती है, वह समाधि नहीं है, जी ! देह का नाश करना यह समाधि में अभिप्रेत नहीं। 'देह-विसर्जन' और 'देह-नाश' ये दो भिन्न घटनाएँ हैं।

योगी तो इच्छा से भी जा सकता है - इच्छामरण। ऐसा इच्छामरण हमने देखा है। हमारे नानाजीने 'रामनवमी को हमारा प्रयाण रहेगा' ऐसा कहा था। भव्य उत्सव रहता था - नौ दिन तकें हमारे घर में ! भारत के अलग-अलग भागों से ब्राह्मण-वर्ग आता था, रामायण का पाठ, होम-हवन होता था। समस्त जनसमूह को भोजन से तृप्त कर दक्षिणा दी गई। रामजन्म के उपरांत उन्होंने अल्प-सा प्रसाद, बिलकुल उंगली पर रहेगा इतना, लेकर चखा, फिर आसन पर बैठे और प्राणों को त्याग दिया। बीमार नहीं थे। वे कहते थे, 'मैं जाऊँगा, जाऊँगा रामनवमी के दिन'। हमारी नानी उनके कहने को मानती नहीं थीं; किन्तु जिस समय लोगों ने देखा और उनसे कहा गया, तो उसी क्षण वे दौड़ती आईं और डॉक्टर ने कहा, 'गये' ! तो ऐसा भी प्रयाण हो सकता है ! पूर्णतः अकारण, अहेतुक, ऐसी समाधि ली जाती है। वह एक प्राण-प्रयाण समारोह है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विनोबाजी का प्राण-प्रयाणोत्सव

विनोबाजी ने जाना कि, अब इस शरीर में जो heart नाम का अवयव है वह ज्यादा दिन रहनेवाला नहीं। तो थोड़ा-सा दही, जल, शहद जो वे लेते थे, वह लेना बंद किया। कहने लगे - 'प्राण-प्रयाणोत्सव' प्रारंभ ! वाणी बंद, पानी बंद; सात दिन तक ऐसा करते हुए आठवें दिन कहने लगे, 'जा रहा हूँ, हरिः ॐ '! और प्राणों को त्यागा।

मुझे ऐसा लगता है कि जिन व्यक्तियों को ऐसा सूझता है कि इस देह से अब कुछ कर लेने का विशेष प्रयोजन नहीं, उन्हें जाने का अधिकार है। गोलियाँ, इंजेक्शन्स - ये कुछ भी लेने का (प्रयोजन) रहता नहीं ?, तो, हँसते-हँसते 'I am sailing' कहते हुए, इस अनंत के अनंत सागर में खुद को झोंक देने का अधिकार उन्हें ही है।

मैं इसलिए कह रही हूँ कि, अगला प्रश्न ज्ञानदेवजी के बारे में है।

प्रश्न : ज्ञानेश्वर माउली और उनके बाद उनके बहन-भाईयों ने इतनी छोटी-सी आयु में, स्वयं की इच्छा से इहलोक की यात्रा क्यों समाप्त की होगी ? ऐसे समाधिस्थ व्यक्ति यदि समाज में विचरते रहे होते, तो उनके केवल संपर्क से, सत्सङ्ग से मानव का कल्याण होता ! ऐसा हम देखते हैं कि बुद्ध, महावीर, जिसस, रामकृष्ण, जे. कृष्णमूर्ति आदि - इन्होंने नैसर्गिक या प्रासंगिक मुक्ति आने तक संसार को सीख दी। ज्ञानदेवजी और उनके बहन-भाईयों के संजीवन समाधि लेने में कोई विशिष्ट प्रयोजन होगा, यह मान्य कर के भी, मन में प्रश्न उभरता है कि क्यों ?

उत्तर : प्रश्न में भूल है। ज्ञानदेवजी ने "भावार्थ-दीपिका" और "अमृतानुभव" द्वारा और उनके अभंगों से जो हमें दिया है वह अभी तक हम पचा नहीं पाये। जो कुछ देना था, वह देना तो पूरा हुआ था। वे समाज-बहिष्कृत थे; गृहस्थाश्रम धारण करना नहीं था और समाज धारण करने भी नहीं देता उन्हें, यदि उन्होंने पूरे समाज की पूजा की होती, उनके चरण पकड़ लेते, तो भी ! गाँव के बाहर रहकर भिक्षा माँग कर जीते हुए बालक, संन्यासी की संतान रहने से, उनका व्रतबंध (उपनयन-संस्कार) करने शास्त्री तैयार नहीं थे; ऐसा वह काल था। आज की हमारी कसौटियाँ, उन पर लादें नहीं। जिस काल में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महापुरुषों ने जीवन बिताया, उसकी दृष्टि से देखिये । How can you impose your ideas of legality and morality of this century, upon a person who lived a number of centuries ago ? उन्होंने देश-काल-परिस्थिति-सापेक्ष जीवन बिताया और वह भी इतनी मधुरता से कि संपूर्ण "ज्ञानेश्वरी" या "अमृतानुभव" में, उन्होंने किसीका भी खंडन या निषेध किया नहीं, कटु शब्द नहीं । 'तव तुंडस्य वक्रता' ! - भी कहा नहीं । वह हमारे शंकराचार्यजी बोल गये थे ।

तो - प्रयोजन समाप्त हुआ था । 'ज्ञानेश्वरी' लिखना समाप्त होने पर ही वे शायद चले जाते । किन्तु उनके गुरुदेव ने आज्ञा दे दी कि - यह तो तूने टीका लिखी । भावार्थ-दीपिका-भाष्य पूर्ण किया । तुझे वो कहना है, तेरे जीवन के अनुभव का जो अमृत है, वह अभी तूने लिखा नहीं । अतएव उन्होंने वे नौ प्रकरण "अमृतानुभव" के लिखे ।

तो जो देना था, वह दे चुके । गृहस्थाश्रम असंभव था । ब्रह्मचर्याश्रम ही लगभग संन्यासाश्रम जैसे जिये; इसलिए उन्होंने यदि ऐसा निश्चय किया होगा कि मुझे शास्त्र-मर्यादा का उल्लंघन करना नहीं है और जो व्यक्त करना था, वह तो व्यक्त कर चुका हूँ – वह छोटी-सी मुक्ता, १८०० वर्ष के चांगदेव को जिसने दीक्षा दी - उसका अधिकार तो देखो ! किस हेतु इसके पश्चात् वह जीवित रहे ? - उसे ऐसा लगा कि, मैं अब जाऊँ, चली जाऊँ यहाँ से । वासना तो थी ही नहीं कोई भी ।

"विश्व स्वधर्मसूर्यें पाहो !"

तो, ज्ञानदेव या उनकी श्रेणी के जो महानुभाव हों, उनका प्रयोजन समाप्त हुआ, परिपूर्ति हुई जीवन की, संपूर्ण संतृप्ति हुई । विश्व के लिए कहना था, वह कह चुके । इतना ही नहीं, 'पसायदान' (कृपाप्रसाद-दान) भी माँगना हुआ,

" आतां विश्वात्मकें देवें ।
येणें वाग्यज्ञें तोषावें ।
तोषोनी मज द्यावें ।
पसायदान हें ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुरितांचे तिमिर जावो ।
विश्व स्वधर्मसूर्ये पाहो ।
....
.... ॥ ”

विश्व के लिए माँगना था, वह माँग चुके; देना था, वह दे चुके; कहना था, वह कह चुके। हम उद्देश्य लाद रहे हैं; लेकिन क्यों ? हमें कोई कारण चाहिए ! इसलिए कि हमें अकारण सहजता से जीना आता ही नहीं मूलतः ! 'सहज सहज सब कोई कहे, सहज हुए नहीं कोई ! '। हमें कारण बिना जीना आता नहीं, या कुछ करने आता नहीं । मरने के लिए भी कोई कारण होना चाहिए ।

ज्ञानदेवजी की समाधि अकारण थी ! उनका वह एक भव्य प्राणं-प्रयाणोत्सव था ! हम संसार से जाने को अशुभ मानते हैं, negative समझते हैं, Negative activity मानते हैं । हमारे मन में मृत्यु के संबंध में association of ideas और emotions का इतना जाल है कि वह हमारे प्रश्नों के इर्दगिर्द, इधर से उधर घूमता रहता है । लेकिन उनके यहाँ तो शुभ-अशुभ सब पोँछा गया, धोया गया रहता है । वे तो जन्म से ही चिर-शुचिर्भूत थे ! समाज को क्या यह मालूम नहीं था कि ये जो व्यक्ति जो देते हैं, उसका लाभ रहता है ? उन ९००९ ओवियों (श्लोकों) मेंसे नौ ओवियाँ (श्लोक) भी यदि हम समझ पाये तो, आज उनके जाने पर इतने शतकों बाद भी हमारा बहुत कल्याण होगा ।

आपने कृष्णमूर्तिजी का उल्लेख किया है । It is going to take world atleast another fifty years to understand what he has communicated, the 'Wholistic Approach' that he had to human life.

आत्महत्या करना कानून की दृष्टि से अपराध रहे या न रहे, मैं उसे पलायन कहती हूँ । जो शरीर नश्वर है, वह कोई टिकनेवाला नहीं, जानेवाला ही है, गिरनेवाला ही है; किन्तु किसी दिन उसे जबरदस्ती से कुछ उपाय कर-के, ज़हर लेकर, ऐसी औषधि पीकर, पानी में डूबकर, स्वयं को जलाकर, पंखे से बाँधकर, सहेतुक नष्ट करना - अनेक बीभत्स प्रकार हैं ! हिंसा है यह सब !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समाधि में सौन्दर्य है । आत्महत्या में बीभत्सता है, हिंसा है । समाधि में विसर्जन है । दोनों प्रकार संपूर्णतया भिन्न हैं । तब यह पलायन, यह बीभत्सता, यह हिंसा न हों, इसलिए, हो सकता है कानून में आत्महत्या को 'अपराध' कहा गया होगा ।

हमारे प्रश्नोत्तरों की यह अंतिम सभा । यहाँ (व्यासपीठ पे केवल) बैठने से, तो मनुष्य सर्वज्ञ होता नहीं । आपने इतने प्रेम से और खुले मन से प्रश्न पूछे, उतने ही खुले मन से, मुझे जो समझ में आता है, वह मैं आपसे कहती गयी । वे भाषण या प्रवचन नहीं थे । वे जिज्ञासुओं को दिये हुए उत्तर नहीं थे, तो वे, जिज्ञासा को दिये गए उत्तर थे । जिज्ञासुओं को उत्तर देने के लिए अधिकार चाहिए । हमने 'गुरुपद' लिया नहीं । एक मित्र की दृष्टि से, सुहृद्, सखा - इस संबंध से यहाँ बैठकर, जो कुछ समझा, वह स्वयं की योग्यायोग्यता का विचार किये बिना, इस सुख-संवाद में कहती गई । मैं आप सभी की कृतज्ञ हूँ । 'न्यून ते पुरते करुनी ध्यावे' । अर्थात् - जो न्यूनता रही होगी, उसे पूर्ण कर लें । जो कुछ त्रुटियाँ रही हों, कहने में अल्पोक्ति, अतिशयोक्ति, अव्याप्ति, कोई दोष रहे हों, तो वे आप मन में लाए नहीं । आपके इस सुख-संवाद के कारण, आपके सहकार्य के कारण मुझे बहुत आनंद हुआ ।

"जब अपनी मर्यादाओं का भान होता है मनुष्य को पहले, तो बडा घमंड पैदा होता है कि पता नहीं मैं क्या कर डालूँगा । उसे लगता है पुरुषार्थ और प्रयत्न से चाँद-सितारे तोड़कर लाऊँगा । सब कुछ मैं करूँगा । शरीर से नहीं तो मन से, बुद्धि से । तो, निकलता है वह, उसकी एक कल्पना होती है, कि असीम शक्ति होगी बुद्धि में - मन में, यह सब पार्थिव इंद्रियाँ हैं । जो आपका physical organism है, उसमें मन एक सूक्ष्म भाग है, बुद्धि सूक्ष्म भाग है; आपको हाथ-पाँव, कान-नाक दिखते है नं ? हाथ-पाँव स्थूल है इतना ही तो फ़र्क़ है । वह अंतःकरण है, यह बहिर्करण है । लेकिन है तो पार्थिव । बहुत उपयोगी है वहा, लेकिन उनकी पहुँच जो व्यक्त और अव्यक्त से परे है - वहाँ तक नहीं होती । शब्द के बिना बुद्धि नहीं चलती है । हेतु के बिना मन नहीं चलता है और वहाँ हेतु तो कुछ हो नहीं सकता । Learning - सिखने की इच्छा को अगर हेतु कहना है तो, कह लीजिए That is not an acquisitive motivation. The urge to learn is very holy urge. It is not contaminated with any tinge, any shade of acquisitiveness. वह तो जैसे प्रियतम को देख के प्यार उमड़ता है, वैसे है । जीवन की सच्चाई को देखने का प्यार उमड़ता है सिखने के कर्म में ।" ["साधनामय जीवन" मेंसे]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवचन द्वादश

समस्त शून्यों का निष्कर्ष - बेचैनी

"यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयाताम् महोदधौ ।
समेत्य च व्यपेयाताम् तद्वद्भूत समागम : ।। "

इस काल के प्रवाह में हम एकत्र आते हैं, कालप्रवाह ही हमें इकट्ठे लाता है और जिस प्रवाह से संयोग होता है, उसी प्रवाह से वियोग भी होता है । यह संयोग, यह वियोग, यह मिलन, यह विरह, - ये समस्त जीवन के अनादि, अनंत प्रवाह में उठनेवाले स्वाभाविक तरंग हैं ।

सात-आठ वर्षों पहले कल्पना भी चित्त में आई नहीं थी कि मैं महाराष्ट्र में जाऊँगी । वैसे १९५० से, किन्तु वास्तविक तो १९४३ से मेरा महाराष्ट्र से संबंध छूट गया । भूदान-आंदोलन के निमित्त से, सन्त विनोबाजी ने, महाराष्ट्र के युवक-युवतियों को महाराष्ट्र के बाहर निकाला और कहीं बिहार, कहीं असम, कहीं बंगाल, कहीं दक्षिण भारत - ऐसे भेज दिया ।

१९६३ के पश्चात् काल का प्रवाह मुझे माऊँट आबू ले गया; किन्तु अभावितता (भावना करने के परे के संयोग) से कुछ मित्र-मंडली मुझे महाराष्ट्र में ले आईं और लगभग छः बार – दो बार लोणावला व चार बार यहाँ महाबलेश्वर – इस सत्सङ्ग-सप्ताह का आनंद समारोह आप समस्तों की कृपा से और सहयोग से मुझे मिला ।

देश की परिस्थिति इतनी गंभीर रहते हुए, इस तरह के इन सप्ताहों का कुछ महत्त्व, कुछ संगति ? मंडली आयें, उनके खान-पान का प्रबंध हों, वे प्रवचन सुनें, आसन करें, प्राणायाम करें, इसका कोई महत्त्व ? मेरी दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व है । युवकों के यदि शिबिर रहें, तो युवक-समूह ही लगभग पूरी व्यवस्था संभालते हैं, किन्तु जहाँ प्रौढ़ भी हों, वृद्ध भी हों, उस स्थान में उन्हें शारीरिक श्रम के बिना सत्सङ्ग का अवसर मिले, मौक़ा प्राप्त हो, इसमें कुछ औचित्य है । ऐसे सप्ताह याने 'संस्कार-सिञ्चन के पर्व' ही रहते हैं । ये शुभ-संस्कार-सिञ्चन वाणी द्वारा किया जाता है, दिनचर्या से हो सकता है और यदि व्यक्ति सावधान हो तो, प्रवचनों के समय के अतिरिक्त, खाने-पीने के समय के सिवा, सो जाने के बजाय, वह व्यक्ति मुझे क्या समझ में आया, वह लिख लेता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। मनोरम निसर्ग यहाँ है, परिसर है, तो घूमने जाता है। मौन की, ध्यान की रुचि हो, तो शिबिर के कार्यक्रम के अतिरिक्त अपने कमरे में या बाहर जाकर प्रयोग भी कर सकता है।

इस विषम काल में मनुष्य को इस समाज में रात-दिन stress और strain से जाना पड़ता है, जीवन-पद्धति उसे क्रियाग्रस्त रखती है; उससे उसका छुटकारा हो नहीं पाता, अतः वर्ष में एकाद बार सात दिन निरुपाधिक ढंग से जीने को मिले, इसका अत्यन्त महत्त्व है। उस तरह ही – कोई दायित्व नहीं, अपना कोई नहीं, हम किसीके नहीं, यह जो मानसिक एकान्त है, वह सहा जा सकता है या नहीं, वह देखने का भी, कसौटी का भी समय रहता है। आपने इन सात दिनों में क्या किया, इसकी मुझे कल्पना नहीं। समय का सदुपयोग किया गया या अपव्यय किया या फिर मौक़ा खो दिया, यह आप जाने और आपका अंतर्यामी !

स्वामी विवेकानंदजी का योगदान

ऐसे ये सत्सङ्ग करने की प्रथा बाहरी देशों में नहीं थी। यह सत्सङ्ग करने की पद्धति – मेरी जानकारी में या जानने में अगर भूल हो, तो, - I am open to correction किन्तु यह पद्धति - १९८२ में अमेरिका को जानेवाले स्वामी विवेकानंद नाम के युवक ने, इंग्लॅण्ड में, युरोप में और अमेरिका में प्रारंभ की। तत्पूर्व १९७५ में ब्रह्मविद्या के हेतु जो भ्रातृ-समाज की - The Theosophical Society and World Brotherhood की, मॅडम ब्लॅवॅट्स्की ने स्थापना की थी, उसमें ऐसे 'get-together' होते रहते थे। इस महिला का लक्ष अतीन्द्रिय जगत की ओर अधिक था; और स्वामी विवेकानंदजी का ऐंन्द्रिय जगत् और अतींन्द्रिय जगत् के पार, जो परमात्मा की अमृतमयी सत्ता का साम्राज्य है, उधर लोगों को ले जाने का प्रयास था। इस हेतु सत्सङ्ग-सभा यह स्वामी विवेकानंदजी का, आधुनिक जगत् को बहुत बड़ा योगदान है, ऐसा मुझे लगता है। मठ में, मंदिरों में बैठकर वे सत्सङ्ग-सभा लेते रहे, किन्तु जिस सार्वजनिक रूप में हम यहाँ एकत्रित हुए हैं, इस प्रकार का सत्सङ्ग दुर्लभ था, इस जगत के लिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्सङ्ग याने व्यक्तिगत संग नहीं

आइये, हम सत्सङ्ग का अर्थ समझ लें। सत्सङ्ग में व्यक्ति का संग नहीं होता। व्यक्ति माध्यम है। वाणी - यह तो सत्य को निर्देश करनेवाला वाहन है, वाहक है। सत्सङ्ग का प्रथम पथ्य यह है कि उससे व्यक्ति-निष्ठा निर्माण न होने पाये। हम व्यक्ति का संग करने आये नहीं हैं और इस देश में इसीका पालन नहीं होता, किया नहीं जाता। जो व्यक्ति सत्य का वाहक बनकर आती है, भगवत्-सत्ता की प्रतिनिधि बनकर आती है, उसके प्रति स्नेहभाव होना, आदर निर्माण होना, प्रेम प्रतीत होना - यह स्वाभाविक है। कृतज्ञता मन में आना भी स्वाभाविक है; किन्तु उससे व्यक्तिनिष्ठा निर्माण न होने पाये, इतना संयम वक्ता और श्रोता - इन दोनों को संभालना चाहिए। अनुपान और पथ्य बिना औषधि का कुछ उपयोग हो नहीं पाता। जो सुना है, त्याज्य लगता है या ग़लत लगता है, इसका निर्णय करना यह अनुपान है और व्यक्तिनिष्ठा अपने चित्त में होने न देना यह है पथ्य। व्यक्तिनिष्ठा के कारण व्यक्तियों के संप्रदाय बनते हैं - and in place of uniting, it divides human beings.

संप्रदाय की आवश्यकता कहाँ ?

संप्रदाय अथवा a school of philosophy, school of actions की आवश्यकता रहती है, जी ! हमें हठयोग का अभ्यास करना हो, तो फिर एक विशिष्ट व्यक्ति हमें विशिष्ट प्रकार से पढ़ायेगी। श्रीदेशिकाचार्यजी की योगासन पढ़ाने की एक पद्धति तो, श्रीअय्यंगारजी की दूसरी। ऐसा थोड़ा-बहुत फ़र्क़ हो सकता है। कोई कहेगा कि मैंने देशिकाचार्यजी की पद्धति से पढ़ा है; कोई कहेगा कि मैंने 'कैवल्यधाम' में जाकर सीखा है; यह मेरी पद्धति है, वह उनकी पद्धति है। इस आशय से यदि 'संप्रदाय' शब्द का उपयोग होता हो, तो उचित है। आप मंत्र-शास्त्र, किसी अधिकारी व्यक्ति से सीखते हैं इसपर, वह मंत्र-शास्त्र कौन-से संप्रदाय का है, यह निश्चित होता है कि वह उस संप्रदाय का मंत्र-योग, वैसे ही तंत्र-योग का। वहाँ कौल-मार्ग है, दक्षिण-मार्ग है, वाम-मार्ग है। ये तंत्रों के अनेक प्रकार हैं।

तो, यहाँ शास्त्र है, methodology है और ऐसे जो methodologies हैं; पद्धतियाँ हैं, वे सम्यक् रीति से प्रदान करना, उसमें सातत्य होना, इसकी आवश्यकता है; अतः शास्त्रों के शिक्षण में 'संप्रदाय' यह कोई अवास्तविकता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं । किन्तु 'ऐसे' सत्सङ्गों में हम शास्त्र सीखने इकट्ठे नहीं होते । 'यहाँ' शास्त्रों का विरोध नहीं; परंतु शास्त्र पढ़ने और उसका प्रामाण्य मानने के हेतु हम बैठे नहीं हैं । हम यहाँ 'जीवन' के संबंध में और 'जीने' के बारे में बोल रहे हैं - **'Life and Living'** ! और वह जो 'जीना' है और 'जीवन' है वह, एक-दूसरे के साथ ही होता है इसलिए, जहाँ mutuality, reciprocity रहे, पारस्परिकता–आदान-प्रदान रहे, ऐसे समाज व सामाजिक संबंध और उसमें हमारा दायित्व, हमारी ज़िम्मेदारी – इन सभी का विचार करते रहते हैं । अध्यात्म में 'जीवन' के विषय में और 'जीने' के संबंध में सह-चिंतन हो सकता है । शास्त्र अपने-अपने स्थान में हैं । उनके प्रामाण्यों की आवश्यकता नहीं अथवा उनका विरोध करने की भी आवश्यकता नहीं ।

स्वतंत्रता का अपहरण – व्यक्ति-निष्ठा

सत्सङ्ग में व्यक्तिनिष्ठा को अवकाश न रहे । यदि (हम) व्यक्तिनिष्ठा की और मुड़े, तो फिर उस निष्ठा से हम उस व्यक्ति की पूजा करने लगते हैं । पूजा करने लगते हैं याने क्या ? तो - वह व्यक्ति कैसे व्यवहार करती है, क्या खाती है, उसका परिधान-वस्त्र क्या रहता है, बातचीत करने की पद्धति कैसी है, शब्दों की कैसी है, शब्दों की अभिव्यक्ति किस ढंग से करती है, चलो ! अनुसरण, अनुकरण करें इन सभीका ! व्यक्ति-निष्ठा से व्यक्ति-पूजा और व्यक्ति-पूजा से व्यक्ति-प्रामाण्य और तदनंतर व्यक्ति का अनुकरण या अनुसरण ! बड़ी घातक शृंखला है ! हमें समझ में भी नहीं आयेगा ऐसे ढंग से स्वतंत्रता का अपहरण करनेवाली, अपहरण होने देनेवाली यह व्यक्ति-निष्ठा होती है ।

स्वतंत्रता के लिए हमारा प्रयास रहता है । हम घर से निकल पड़ते हैं वह मुक्ति, मोक्ष, स्वाधीनता की भूख लेकर। उसीके लिए हमारा प्रयत्न रहता है, वही आकांक्षा रहती है और व्यक्ति-निष्ठा, व्यक्ति-पूजा, व्यक्ति-प्रामाण्य के जाल में अचूक हम उलझ जाते हैं ! सत्सङ्ग में इसकी बहुत शक्यता रहती है । और इस शक्यता का हमें भान रहता है और हम चाहते हैं कि ऐसा न हो और इसीलिए हमने भी असामान्यता के किसी भी संकेतों को कभी स्वीकार नहीं किया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"अंतरीं शाश्वत ओळखावें,
जनामाजी वर्तावें जनासारिखें,
अलौकिक न होआवें लोकांप्रति."

अर्थात् 'भीतर के शाश्वत तत्त्व को जानते हुए, लोगों में लोगों जैसा व्यवहार करें'। (खुद कोई अलौकिक व्यक्ति हैं, ऐसा लोगों को मालूम न हों) निर्विकल्प समाधि के आयाम में जीते समय भी, सामान्यता का ऐश्वर्य त्यागें नहीं। असामान्यता, असाधारणता, अलौकिकता यह व्यवहार में व्यक्त नहीं होने देना। सहजता रहे। किसीके भी चित्त में व्यक्ति-निष्ठा का निर्माण न हों; अतएव हम अत्यन्त सचेत रहते हैं। आप भी सावध रहें - यह बिनती।

अनुसरण – यह स्वयं की उपेक्षा

एक बार अनुकरण के, अनुसरण के imitation, conformity, approximation के जाल में मनुष्य उलझ गया तो बौद्धिक स्वतंत्रता तो नष्ट होती ही है, किन्तु दूसरी बात 'स्वयं' का अपमान, 'स्वयं' की उपेक्षा self-humiliation भी होती है। वह कैसे होती है, देखते हैं!

रामकृष्ण परमहंसजी को जैसा काली माता का अनुभव आया हो, वैसा ही हमें आना चाहिए; रमण को उस अरुणाचलम् के संबंध में जो लगना था, बिलकुल वही हमें भी लगना चाहिए; काव्यकंठ गणपति मुनि को या पॉल ब्रंटन को उन्होंने "अष्टावक्र संहिता" पढ़ने को कहा हो, तो हमें भी वही, पढ़नी चाहिए; विरुपाक्ष गुफा में यदि रमणजी रहें हों, तो हमें भी वैसे ही रहना चाहिए; कृष्णमूर्तिजी को अनुभव प्राप्त हुए होंगे, उन्हें सरदर्द होता होगा, तो हमें भी सरदर्द होना चाहिए, उन्हें कुछ unbearable pain होता था, वैसे ही हमें होना चाहिए और वह भी उसी process से - इस प्रकार हम अन्यों की अनुभूतियाँ हमारी चेतना पर लादने लगते हैं projections करने लगते हैं। मानव ऐसी hallucinations - भ्रान्तियाँ निर्माण करते हैं, जी ! मैं अपने मन की नहीं कह रहू हूँ, ये बातें !

अनुकरण-अभिनय याने जीवन से पलायन

ऐसे भ्रम निर्माण करना, इन भ्रमों को, भ्रांतियों को पालना, उनका पोषण करना, यह दुनियाभर में देखती आयी हूँ। पिछले २५ वर्षों में, लगभग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३०-४० देशों में मैंने भ्रमण किया है और पूर्णतया हज़ारों, लाखों भी कह सकें, इतने लोगों से संबंध आया है। भोलेपन से वे यह समस्त अपने पर लादते हैं। स्वयं की संभावनाओं को विकसित होने देते नहीं। स्वयं का flowering and blossoming of their own potential, their own uniqueness होने देते नहीं। शाब्दिक नक़ल, आचरणात्मक नक़ल। अवस्था का अभिनय करने लगते हैं। अभिनय यह जीवन नहीं है, जी ! - घंटे दो घंटे का, ४ दिन का अभिनय, जिससे कोई सत्त्व खिलता नहीं। व्यक्ति-प्रामाण्य के बाद ही अनुकरण और अनुसरण से मनुष्य अभिनय करने लगता है और जीने से बहुत दूर-दूर कहीं निकल जाता है। सिनेमा, नाटकों में अभिनय करनेवाले अभिनेता लोगों के पारिवारिक जीवन में जो एक दुरवस्था निर्माण होती है; वैसी ही आध्यात्मिक व्यक्तियों के जीवन में भी इन अवस्थाओं के अभिनय से, भयंकर प्रसंग निर्माण होते हैं, तो इस मार्ग से हमें जाना नहीं है।

सत्सङ्ग सभाओं में, अपना बौद्धिक, आंतरिक स्वातंत्र्य अबाधित रहे, इसका यत्न करना चाहिए। किसीकी भी अनुभूति की छाया अपने जीवन पर पड़ने न दें। - And as far as the speaker is concerned, one would be the last person to caste the shadow on the face or life of fellow human brings - अतः जितना कहना है, उतना सुनायें और दूर जाकर, कहीं अपने निवासस्थान में रहें। लोगों को चरण-स्पर्श करने न दें, लोगों के चित्त में अपने प्रति किसी भी प्रकार की आसक्ति निर्माण होने न दें – ऐसे अनेक पथ्य प्रयत्न से, साक्षेप से (याने सजग एवं दृढ़निश्चयी यत्नपूर्वक) यहाँ पाले जाते हैं।

सत्सङ्ग का तप-तितिक्षा

यहाँ से अब हम अपने-अपने गाँव जायेंगे, घर जायेंगे। अपना घर, अपना परिवार, अपने उद्योग-व्यवसाय, नौकरी - इनमें हमें जीना है; तब यदि सत्सङ्ग घटित हुआ होगा, किया होगा, – व्यक्तियों का संग नहीं, व्यक्तियों की उपस्थिति में जो सत्त्व होता है उसका संग – यदि किया होगा अर्थात्, कानों से जिसे श्रवण किया, वह बुद्धि ने ग्रहण किया, चित्त ने धारण किया, ऐसा यदि समूचा घटित हुआ होगा, तो एक महान तप है यह। सत्सङ्ग करना यह प्रमादी मनुष्य का काम नहीं है। केवल शब्दों को सुनना यह सत्सङ्ग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं । **It's an involvement of the Totality of your Being;** the act of listening is the involvement of your whole Being. कानों से ही केवल शब्द सुनें, तो एक बौद्धिक निष्ठा निर्माण होगी - an intellectual conviction; पर जिसे 'आकलन' कहते हैं वह नहीं होगा। कानों से सुने, बुद्धि से ग्रहण करें, चित्त से धारण करें तथा इंन्द्रियों से आचरण करें ।

Spirituality is not an intellectual game. It is not a cerebral acquisitive movement. It is not a question of any conviction and aquisition of theories. There is no scope for any theories in spirituality. It is the involvement of your whole Being, manifested in the texture of your relationship, from morning till night.

तो, यहाँ यदि सत्सङ्ग का तप हुआ होगा, तो आप आज-कल में घर पहुँचेंगे, उस समय जो विदित हुआ, जो समझा गया, वह जीने का प्रारंभ करें। एक क्षण का भी समय व्यर्थ न गँवायें। वह जीने की पद्धति कैसी रहे ? तो - 'अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्' ऐसी । हम बहुतांश मध्यम-वर्ग के लोग हैं; घर में, परिवार में वास करनेवाले । तो वहाँ व्यवहार की जो पद्धति रहेगी, वह 'अनुद्वेगकर' रहे; अर्थात् परिवार के लोगों पर हम वह लादें नहीं । "हम अब इतना सीखकर आये हैं । हम सभी मिलकर यह करेंगे आओ ! और इस पद्धति से जियेंगे, आओ ।" - ऐसा नम्रता से, दृढ़ता से कहें । - "नहीं, हमें ऐसे नहीं जीना है" - बाकी लोग कहेंगे । तो ठीक है ! किन्तु मैं इस प्रकार जीऊँगा । जो मैंने समझा है, मेरे ख़ून में घुल-मिल गया है, वह अब छूटेगा नहीं, अलग होगा नहीं - ऐसा अनुद्वेगकर पद्धति से कहें । औद्धत्य- उद्दंडता से, मगरूरी से कहने पर सुननेवाले को वह 'सत्य' सुनने की इच्छा भी नहीं होगी । 'Reluctance and resistance are stimulated by the very assertive way, you know; communication and assertion are qualitatively different.' संवाद में (communication) में एक सहजता रहती है, sharing रहता है, assertion नहीं रहता, propagation नहीं रहता । प्रतिपादन में आग्रह आता है । 'ये मेरे सिद्धान्त हैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और उस प्रकार मैं अब व्यवहार करूँगा'; ऐसे मानो घोषणाएँ प्रारंभ होने लगती है ! ऐसी घोषणाएँ करना नहीं; किन्तु वह 'जीना' प्रारंभ कर देना चाहिए। लोगों ने सुना तो ठीक, न सुना तो भी ठीक। हम जीना प्रारंभ करें। परिवार के लोगों को ग़लतफ़हमी हो सकती है, होने दीजिये। उन्हें हम टाल नहीं सकते। लोग क्रोधित होंगे, निंदा करेंगे, असहयोग करेंगे, परिहास करेंगे। You will be misunderstood, you might be misinterpreted, you could be ridiculted, you would be ignored. अजी, एक ही कुटुम्ब में, एक ही परिवार में हमें जनम मिला, हम रहने लगे, हमारे ख़ून के रिश्ते हैं, यौन-संबंध हैं, इसका अर्थ ऐसा नहीं कि, सभीको इस संबंध में अभीप्सा और जागृति एक ही समय होगी, सबकी आकांक्षाएँ एक साथ जागृत होंगी। तो, आपको जो समझ में आया, उसमें धारणा स्थिर रखें। "सत्ये प्रतिष्ठा धारणा-श्रद्धा"। हमें जो सत्य ज्ञात हुआ, उसमें धारणा प्रतिष्ठित हुई, तो उसे श्रद्धा की शक्ति तथा गुणात्मकता प्राप्त होती है।

हमें जो समझ में आया उसमें और हमारी समझने की जो शक्ति है उसमें अगर आपकी श्रद्धा है, तो आप वैसे जीवन जीना शुरु करें। ऐसा करने से ये जो उपेक्षा, परिहास, ग़लतफ़हमियाँ हैं, उनसे आपके चित्त को कोई क्लेश नहीं होंगे। श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रुध्द्ः स एव सः। इस प्रकार सुनिश्चित दृढ़ बनी हुई धारणा के उपादान से जो चित्त बना हुआ रहता है, उसमें सहजता का सौरभ होता है, सहजता का मार्दव होता है और नम्रता का लावण्य रहता है। तो ऐसा जियें ! क्योंकि हम सत्सङ्गी हैं। तो अपने परिवार की, संस्था-संघटन की, समस्त मंडली भी सत्सङ्गी बने ऐसा कुछ नहीं। वे संसारी हैं ! उन्हें यदि संसार मीठा लगता हो, तो, 'आपको भी संसार मीठा न लगे' ऐसा कोई फरमान निकालना नहीं है। हमें संसार में 'संसारी' बने बिना जीना है; क्योंकि संसार के संपूर्ण व्यवहारों का मिथ्यात्व व मर्यादाएँ हमें समझ में आ चुके हैं। जिस दिन वे अन्यों को समझ में आयेंगे, उस दिन उनके चित्त में परिवर्तन होगा।

तब अधीरता न रहें, जल्दबाजी न करें, आग्रह न रखें। आवेश, अभिनिवेश, आवेग – सत्सङ्ग को अत्यन्त बाधक हैं। आप संसारी से जिज्ञासु, जिज्ञासु से सत्सङ्गी व अब धर जाकर जीवन-साधक के रूप में यदि जीनेवाले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं, तो यह तप, यह तितिक्षा आपको करनी पड़ेगी। यह तो परिवार की बात हुई। आपको तो समाज में जीना है, सत्य आचरण में लाना है, प्रेमपूर्वक जीना है, अध्यात्म के मूल्यों को जीना है !

समाज की परिस्थिति प्रतिकूल है। आप जो करते हैं; उसकी उसे क़द्र नहीं, उसकी क़ीमत नहीं, याने क्या ? इसका अर्थ क्या ? What are the implications ? Implications ऐसे हैं, आशय ऐसा है कि - इस समाज में झूठा व्यवहार करनेनाले, शोषण करनेवाले लोग हैं। उनके पास धन, बंगला, मोटर - सब कुछ होगा। 'The cult of indulgence, the cult of pleasure' उन्हें तो चाहिए। समाज में उनका नाम बड़ा होगा, वर्तमान-पत्र में उनको प्रसिद्धि मिलेगी, सभा-सम्मेलनों में उन्हें पुष्पहार डाले जायेंगे; उस समय हमारे मन में यदि ऐसा भाव आया कि देखो ! उन्हें पुष्पमालाएँ और हमें ? हम अपने २००-५००-१००० रुपयों में बैठे हैं !

आत्मवञ्चना नहीं चाहिए

अरे ! फिर तुम क्या चाहते हो ? तुम भी हज़ारो रुपये चाहते हो क्या ? बड़े-बड़े बँगले गाडियाँ चाहते हो क्या ? इस अन्यायमूलक, अनीति और अधर्मकारक, ऐसे समाज में लोग जैसी प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेते हैं, वैसी प्रतिष्ठा चाहते हो क्या ? If you are aspiring for social respectability, prestige in this exploitative society, then you better not turn to spirituality. ये दो बातें साथ-साथ कैसे होंगी ? तब 'हम इतनी सत्यता से जीते हैं; किन्तु हमारा कुछ नहीं !' - ऐसी यदि मन में भावना होती हो, तो मुझे ऐसा लगता है कि हम कुछ आत्म-वंचना कर रहे हैं। हमें चाहिए हैं एक; किन्तु मान लिया है कि दूसरा ही हमें अभीष्ट है। तब जो चाहिए है, वह जाँचकर देखें, जी ! पैसा, प्रतिष्ठा, कीर्ति, सन्मान - यही सब कुछ चाहते हो, तो दुर्योधन के, दुःशासन के, शकुनि के मार्ग हैं ही खुले !

सत्याचरण के जो परिणाम होते हैं; - वे हैं - इस समाज द्वारा आपकी उपेक्षा होना। वे आपके बारे में कहेंगे कि - कितने पागल लोग हैं, जी ! यह क्या सत्ययुग है, इस प्रकार जीने को ? किसीकी आवभगत (स्वागत-सत्कार) नहीं, ऑफिसरों के घर जाना नहीं, मंत्रियों के देहलीज पे कदम रखना नहीं, इतना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्हें साधु ही होना था तो, फिर विवाह क्यों किया ? परिवार किसलिए ? - ऐसा कहा जाएगा, जी !

इस समाज में सत्यनिष्ठ एवम् आध्यात्मिक व्यक्ति की उपेक्षा होती रहेगी। वह अकेला रहेगा। सिनेमा, नाटक, हॉटेल्स, अभिनेताओं के बारे में गपशप - इन सबमें - The superficial game of life - में आपको रुचि रहती नहीं, किन्तु औरों को रहती है। इसलिए आपका साथ भी किसीको प्यारा नहीं लगेगा। 'इनके साथ बैठकर क्या करना है ? कुछ बोलते नहीं, यूँ ही बैठकर रहते हैं और कुछ बोलना हों, तो - तात्त्विक चर्चा करते हैं', – ऐसा कहेंगे। आपको क्रिया-प्रतिक्रियाओं के उस फार्स (तमाशा) में रस आता नहीं', ऐसी ऊपरि-ऊपरि जीवन-चर्चाओं में आनंद नहीं; इसलिए आपका डेरा ही वहाँ से हटता है और आप कहीं चित्त के गहन आयाम में जाकर बैठ जाते हैं। Moving away from the superficial, shallow level of exchanging words, which mean nothing, when you enter the depth of your 'Being' and begin to live from the centre of the 'Isness' - स्वाभाविक है कि आप अकेले पड़ जाएँगे।

यह एकान्त अथवा जन-त्याग, 'किया हुआ' नहीं है। आप विजनवास में गये नहीं हैं, पर एक ऐसा 'आंतरिक एकान्त' आपमें आ जाता है। मैंने परसों उसे 'aloneness' कहा था। अब आपकी समझ में आयेगा कि सत्सङ्गी या साधक मनुष्य का जीवन याने तप – जीवन ही तप कैसे रहता है। उन्हें तप करने जाना पड़ता नहीं कहीं भी ! सत्य जो है वह आपसे तप करवा लेता है।

आप मुझसे केहेंगे - 'आप व्यक्तिनिष्ठा नहीं होनी चाहिए' - ऐसा कहते हैं। हम संसार में थक जाते हैं, कभी गुम हो जाते हैं। थके-माँदे, श्रम किये हुए व्यक्ति को कहीं तो आसरे का स्थान होना चाहिए न ! कुछ विश्रांति की जगह होनी चाहिए न !' तो फिर (मैं कहूँगी) - ऐसी सत्सङ्गी-मंडली, शहर में रहनेवाले, मोहल्लों में रहनेवाले, एक-दूसरे से मेल-मिलन करें, परस्पर-भावन करें। 'परस्परं भावयन्तः श्रेयं परमवाप्स्यथ'। कोई बड़ा, कोई छोटा, कोई उच्च, कोई नीच - ऐसा कुछ भी नहीं। सखा, साथी, सहयोगी कहकर जीवन बिता रहे हैं और एक-दूसरे से ख़ुले मन से, प्राज्जलता से, निरहंकार संवाद कर रहे हैं। ऐसा संवाद यदि जीवन-साधकों में घटित होने लगा तो, उससे अत्यन्त लाभ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होता है। किन्तु 'मुझे दुःख हुआ, मुझे कुछ अड़चनें आईं, मुझे मेरे विकार कष्ट दे रहे हैं, सता रहे हैं, कोई तो वे दुःख दूर करें, रुकावट से मार्ग निकालें, कोई तो कष्ट देनेवाले विकार शांत करें' - ऐसी हमारी परावलंबन की आदत ही बन गई है।

स्वातंत्र्य, परावलंबन के मार्ग के द्वारा !!

अपेक्षित है हमें स्वातंत्र्य, किन्तु स्वावलंबन का मार्ग नहीं पकड़ना है ! स्वतंत्रता की वेदी तक पहुँचना है परावलंबन के मार्ग से !! यह कैसा संभव है, जी ! 'If there is no freedom at the first step, there shall not be any freedom at the so-called last step'. तो सत्सङ्ग-मंड़ली के साथी प्रेम से वार्तालाप करें, यदि यह संभव न हों, तो घर में बैठकर आप खुद से ही संवाद करते रहें कि मैं कुछ दुःख टालने का प्रयास कर रहा हूँ क्या ? 'Am I trying to run away from the fact ? What is suffering ? What is pain ? What is fear ? You put your teeth into it. You spit it out'. खोज निकालें क्या है, यह सब ? मुझे देखने दो, समझ लेने दो। अध्यात्म में भी संस्कार होते हैं परावलंबन के ! अभीप्सा स्वतंत्रता की, मार्ग परावलंबन का ! जान-बूझकर परावलंबन ! स्वेच्छा से परावलंबन ! यह शरणागति नहीं है, जी ! यह समर्पण नहीं ! समर्पण सत्य को (होना चाहिए) ! शरणागति व्यक्ति को नहीं, पर जीवन को (होना चाहिए) !

तो, साधक के जीवन में, मानसिक या बौद्धिक परावलंबन न रहें। वह बैठकर स्वयं का शोधन करे और एक बार निर्धार करे कि व्यथा से, दुःख से, भय से मुझे पलायन करना नहीं है, आँखें खोलकर व्यथा, दुःख, भय-ये सभी क्या हैं, वह देखना है और उनके साथ जीना है। 'I am going to live through it, because this is life.' क्योंकि यही जीवन है। इसके सिवा जीवन और क्या होता है, जी ?! दैनंदिन जीवन एक है और अन्य मुक्ति का जीवन तो कहीं अन्यत्र, ऐसी कुछ Eternity की Categories नहीं है। यह 'सान्त' है और इस सान्त के बाहर कहीं कुछ अलग 'अनंत' है, ऐसा दिक्काल में विभाजन किया हुआ नहीं है, इस सान्त का व अनंत का ! वे क्या नश्वर और शाश्वत (ऐसे दो अलग) हैं ? नश्वरता और शाश्वतता हमारी दृष्टि से ! यह नाप-तौल हमारे मन में रहते हैं और वे शब्द हमने निर्माण किये हुए हैं। जीवन तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'एकरस, अविभाज्य, अखंड ऐसी सत्ता' है। समग्रता उस सत्ता का शील है, तो, सत्य-शोधक को परावलंबन का आसान, सीधा-सा मार्ग है, वह त्यागना पड़ेगा, जी ! शरीर अपंग रहता है, उस प्रकार मन ही यदि अपंग रहा, तो फिर कहीं कुछ आधार, आश्रय, यह चिकित्सा (therapy), समझ लेनी पड़ती है; किन्तु आख़िर तो वह अपंगता का उपाय है (श्रेय तो इसीमें है कि) ऐसी अपंगता हम निर्माण न करें।

"विह्वलता" - जीवन का मंगलपर्व

आपको कुछ सूझता नहीं, समझ नहीं पाते, समझ में आता नहीं ऐसी स्थिति है न ? कोई आपत्ति नहीं। सूझता नहीं, मालूम होता नहीं, समझ में आता नहीं - ऐसे भाव से स्वस्थ आसन डालकर बैठें और कहें, 'हे जीवनविभु ! हे जीवनप्रभु ! आप जो कोई भी हों, सत्ता के रूप में, प्रज्ञा के रूप में ! यहाँ तक मैं पहुँच पाया हूँ, मेरे प्रामाणिक प्रयत्नों से पहुँचा हूँ। अब बुद्धि कुंठित हो गई है और कुछ भी समझ नहीं पाती। आगे कुछ समझ में नहीं आता। कुछ सूझता नहीं; पराकाष्ठा हो गई है पुरुषार्थ की' ! आँसू बह रहे हैं। ऐसी न समझने की, मालूम न होने की, बेचैनी की अवस्था ले (लिये) बैठे रहिये। ऐसा जिस समय आप एकान्त में बैठते हैं न, उस समय आप केवल स्वयं अपने समीप नहीं, पर (साक्षात्) जीवन के समीप बैठते हैं, 'Instead of trying to follow an exclusive direction and run towards an exclusive individual, you are enveloping yourself 'in the cosmic life', 'with the cosmic life'.

ऐसी अवस्था में हम बैठें, तो जिस स्थान में हम जी रहे हैं - किसी रास्ते से चल रहे हैं; दुकान में, कार्यालय में काम कर रहे हैं, रसोई में भोजन बना रहे हैं - वहीं पे, उस विश्वंभर को, उस वैश्विक चेतना को, जहाँ हमारी मति कुंठित हुई हो, संपूर्ण प्रामाणिक प्रयत्नों के बाद भी, वहाँ से अगला मार्ग दिखाने की जिम्मेदारी 'उसे' - 'उस सत्ता' को लेनी पड़ती है और वह ली जाती है। हमें ढूँढने जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। कोई किताब हाथ में आयेगी, अख़बार में कुछ पढ़ने मिलेगा, अभावितता (जिसकी भावना न की गई हो) से कोई आपको कुछ कह जायगा और मार्ग एकदम खुला होगा। एक **Mystery on life है, if one lives in Total Surrender to the Divinity of life.**

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुरुषार्थ की पराकाष्ठा के पश्चात् शरणागति का मंगल-पर्व प्रारंभ होता है। तब 'हे प्रभो ! अब मुझे कुछ समझ में नहीं आता, मुझे तुम्हारा रूप मालूम नहीं', - 'नाहं जानामि तव रूपम्' - आप जिस रूप में, जहाँ हो, वहाँ मेरा प्रणाम है आपको ! इसके आगे मेरा प्रयत्न चलता नहीं।' - ऐसा व्याकुल होकर कह के तो देखिये ! किसी और के पास भी नहीं; प्रत्यक्ष जीवन के पास ही ! वह समर्पण का मंगलपर्व - 'सकळा गतींची गती - ती ही शरणागती', अर्थात् शरणागति ही सब गतियों की गति है !' - हर एक के जीवन में वह आती है। आँसू छलकते हैं, शब्द निकलते नहीं, कंठ अवरुद्ध हो जाता है, प्राण व्याकुल होते हैं। - The dark night of the 'soul' - साधक के जीवन में वह आती है। वहाँ से पलायन न करना, यह साधक की अंतिम कसौटी है ! ऐसे ये विह्वलता के क्षण – यह व्याकुलता का पर्व, तो जीवन का मंगल-पर्व है !

हम यदि ऐसे बैठे नहीं और मन की बेचैनी के कारण, अधीरता के कारण - जल्दी है इसलिए इधर-उधर भाग-दौड़ करने लगें तो किसीके बंधन में फँसेंगे। शक्तियाँ, सिद्धियाँ, अनुभूतियाँ, इनके विक्रय-केन्द्र खोलकर व्यापार के हेतु जगह-जगह पर लोग बैठे हैं। तो - वहाँ जाकर, अपनी स्वतंत्रता का मूल्य देकर वे शक्तियाँ, वे सिद्धियाँ, वह विश्राम आप प्राप्त करना चाहते हैं क्या ? - यह एक प्रश्न है। अल्पजीवी सांत्वना के लिए आपके प्राण में मुक्ति की जो अभीप्सा है, उस मुक्ति की या स्वाधीनता की क़ीमत देकर, सांत्वना ख़रीदनी है क्या ? निर्भयता ख़रीदनी है क्या ? इसका विचार करना चाहिए। तो, किसीके पास जाकर कुछ भी उपाय कर लेना नहीं। आप स्वयं साधना में रत रहकर, आपकी जिज्ञासा द्वारा, आपने जो यह crisis निर्माण किया, उस crisis को नष्ट करने के लिए कोई उपाय करें नहीं।

किसीके चरण पकडें, किसीका हाथ अपने सर पर रखवा लें - ऐसा कुछ भी करके - create or stimulate an artificial quietness and peacefulness, benumb your sensitivity. (संवेदनशीलता को निःसहाय कर देना) (ऐसा कुछ मत कीजिये।) संवेदनशीलता यदि न हो, तो ऐसी व्याकुलता भी आती नहीं। आपकी आँखों में जो आँसू हैं, वे सत्य के लिए हैं। वे धन, प्रतिष्ठा, पत्नी-बच्चों के लिए नहीं; तो - वे आंसू कोई अवरुद्ध करे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

या आँसू निकलें ही नहीं, ऐसी जड़ता आपमें निर्माण करे - ऐसा मत होने दीजिये। बहने दो अश्रु ! होने दो प्राण बेचैन। छूटने दो कंप शरीर को ! अजी ! निद्रा आती नहीं, कुछ खाने जी नहीं चाहता - ऐसा सब होता है ! क्यों होता है ? क्योंकि सर्वेन्द्रियों को, आपकी संपूर्ण अस्मिता को, सत्सङ्ग के कारण, चिंतन से, मनन से और सत्याचरण के प्रयासों से एक 'कुछ शब्दमुक्त ऐसी प्रतीति' आई हुई रहती है। कहीं एक पतला-सा परदा है, उस परदे के पीछे वह मुक्ति, वह समग्र परिवर्तन, वह प्रकाश छिपा हुआ है। वह परदा दूर होता नहीं, एक आख़री अवगुंठन है, वह जाता नहीं; किन्तु वह है, इतनी प्रतीति आई है। यह प्रतीति ही न हो, तो व्याकुलता कैसे आती, जी ?!

बेचैनी - ख़ुदाताला की सबसे बड़ी बख़्शिश

हम जब वास्तव्य (निवास) के लिए आबू गये, तो वहाँ एक सूफ़ी सज्जन मिलने आते थे। उमर में बड़े थे हमसे भी। उनका बड़ा प्रेम हम पर ! गुरुदयाल मल्लिक उनका नाम, गुरुदेव टागोरजी के पास रहे हुए। मूलतः रहनेवाले पेशावर के। पख़्तूनी, उर्दू, हिन्दी, गुजराती और बंगला - अत्यन्त मीठी बोल लेते थे ! "शान्ति-निकेतन" में रहते समय का उनका एक छंद; गुरुदेव की अनुज्ञा से वे पूरे बंगाल में विचरते थे। मैं आपको कई वर्षों पहले की बात सुना रही हूँ ! १९२० से ३५ के मध्य की होगी वह बात।

बाउलों के सहवास में वे रहते, घूमते। और उधर काबुल, कंदहार को उनका जाना अधिक। तो गुरुदयाल मल्लिक कहते थे कि - बेटी, हमारी सूफ़ी भाषा में, यह बेचैनी जो है न ! इसको 'ख़ुदाताला (भगवान) की सबसे बड़ी बख़्शिश' कहते हैं ! 'इनाम' ! वरदान ! इस वरदान को अभिशाप मत मानिये, जी ! और अधीर होकर, धबराकर, ज़ल्दबाजी करके इसमेंसे अब मार्ग निकलना ही चाहिए, जैसे भी हो, किसी भी प्रकार से वह अवस्था दूर हो, - ऐसा प्रयास मत कीजिये।

कर्तृत्व, भोक्तृत्व छूटा हुआ है, साक्षित्व साध्य हुआ है और साक्षित्व के भी उस पार का मौन का भी संवेदन हो रहा है; किन्तु मौन की, शून्य की जो एक सुरंग है, गूढ़मार्ग, - उसमेंसे हम अभी उस पार गये नहीं, यही उसका अर्थ है। यह एक शून्यावस्था है। 'कुछ सूझता नहीं, दिखता नहीं, अनुभव आता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं, कुछ होता नहीं हमें ! यह क्या है ? ये सभी वर्णन शून्यावस्था के हैं । इस घट में संग्रह किये हुए 'सर्व शून्यांचा निष्कषु', इन समस्त शून्यों का रस जो है, वही रस याने यह बेचैनी है, ऐसा मुझे कहना है ।

आपके इस शिबिर में भी ऐसे एक भाग्यवान् व्यक्ति से मेरी मुलाकात हुई । विलक्षण बेचैनी और विह्वलता ! उन्हें ऐसा लगा कि यह frustration है । किन्तु वह frustration नहीं ! उसे हताशा, निराशा ऐसी संज्ञा न दें ! ग़लत नाम देने पर ग़लत psychology निर्माण होती है । 'The naming - the very naming of it or identification in a wrong way, stimulates wrong psychology; that is to say, a wrong neuro - chemical state, just created by your stupidity, of naming it according to the past. This is something which has happened to you, unrelated to the past, because you have moved away from the past'. उस बेचैनी को, विह्वलता को भूतकाल के शब्दों में, भूतकाल की कैंची में कैसे पकड़ा जा सकता है ?!

दुःख को जीना चाहिए

हाँ ! ऐसी विह्वलता, बेचैनी की अवस्था होने पर तो आप अपने काम, उद्योग, ज़िम्मेवारियाँ - इनसे कुछ स्वतंत्र समय निकालें । दस-पंद्रह दिन, महिना-दो महिने कहीं शांति से बिताएँ । उसे कोई बाधा मत समझिये । उसे विघ्न माने नहीं । उतना जरूर करें । उससे आप अपने शरीर को उस अवस्था से पार होने में सहायता करते हैं । अत्यन्त दुःख आ पड़ा - रोना आता है, हतबुद्ध हो गये हैं, धक्का (shock) लगा है, फिर भी एकदम किसीके पास जायें नहीं । अजी, इस शॉक को पचाने के लिए assimilate करने के लिए कुछ समय लगेगा या नहीं ? After all it's a biological structure ! उसे समय देना चाहिए, 'पुनर्जन्म है, तो बाद में कभी भेंट होगी । मृत्यु मिथ्या है' । ऐसे एक के बाद एक सिद्धांत सुनायें नहीं । ये सब मुफ़्त की बातें हैं । शब्दों द्वारा जीवन की घटना को सांत्वना दिलाने का प्रयास यह उपहास है जीवन का ! ऐसी कोई व्यक्ति मिले, तो उसका हाथ पकड़कर मैं शांत बैठती हूँ । यहाँ शब्दों का काम नहीं ! शब्द एकदम लूले हैं यहाँ ! सिद्धांत फेंकते रहना यह संवेदनशीलता का अपमान है ! ऐसा कुछ करें नहीं । दुःख जियें । 'Live

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

the sorrow, live the pain the, agony' सत्सङ्ग के बाद जीवन-साधक के रूप में जीने का जो मार्ग है, वैयक्तिक मार्ग है वह, उसके संबंध में मैंने यह थोड़ा-सा विवेचन किया।

इस देश में १८५७ में जो परिस्थिति थी और स्वातंत्र्य के लिए संग्राम करनेवाले, देशभक्त व मानव्य के उपासक उस काल में जैसे आगे आये थे, उतनी ही गंभीर परिस्थिति आज भी इस देश की है। राजनैतिक अथवा आर्थिक जीवन में इस देश में उलझनों के बहुत-से जाल जो निर्माण हुए हैं, परिस्थिति बहुत गंभीर बनी हुई है, उसके संबंध में मैं यहाँ कहने आई नहीं हूँ। यूँ ही बातों-बातों में आया इसलिए उल्लेख हुआ है। इस देश की स्वतंत्रता को अगर अबाधित रखना है, लोकतंत्र को यदि स्थिर करना है, भारतीय-संस्कृति को यदि जीवित रखना है, तो जो सज्जन हैं, जिनमें कुछ नागरिक चेतना है, ऐसे लोगों को कर्मप्रवण बनना चाहिए, अपने को जो कुछ समझ में आता है, वह जीने का प्रयत्न रहे, व्यक्तिगत जीवन में भी साधनारत रहें और सामाजिक जीवन में भी उस प्रकार के प्रयोग शुरु रखें। "हमें संपूर्ण साक्षात्कार होकर हमारे जीवन में संपूर्ण-परिवर्तन होने दो, फिर हम कार्यरत रहेंगे" - ऐसा कह के ठहरना नहीं है, जी!

जिस समाज में जीवन बिताते रहते हैं, जो समाज हमें अन्न, वस्त्र, आच्छादन देता है, यह एक प्रकार का हम पर ऋण रहता है। समाज-ऋण है वह। वह ऋण हमें चुकाना है। ऋण से मुक्त होना यह भी आत्म-साधना ही है। एकांगी न हों; क्योंकि हम जो साधना कर रहे हैं वह एक व्यक्ति की मुक्ति के लिए नहीं, पर मानवीय-चेतना मुक्त हो सकती है और इसीके लिये आत्म-साधना। **It is on behalf of the whole human race. It is not self-centred some ambitious project of aquiring some stupid enlightenment or liberation.** ख़ुद के लिए कुछ कमाने के लिए निकले हैं ऐसा नहीं। भूतकाल की पकड़ से, भविष्यकाल के अध्यास से, यह मानवीय-चेतना यदि मुक्त हो सके और स्वतंत्र रहकर वह यदि विशुद्ध वर्तमान में, ख़ुद का अभिक्रम दिखाते हुए जी सकी, तो संपूर्ण मानव-जाति के लिए मुक्ति का मार्ग खुल जाता है। **Your liberation is going to set into the orbit of human consciousness, A new stream of**

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

freedom of understanding, of love, compassion.

इसीलिए यह ज़हमत है, यह प्रयास है कि जिससे इस दुनिया की मानवीय-चेतना को, संपूर्ण मानव-जाति के भूतकाल को एक नया मोड़ मिलनेवाला है।

तो, प्रयोग करने चाहिए। आप शिक्षण-प्रेमी होंगे, तो आपके ध्यान में आया होगा कि शिक्षा की एक नई पद्धति निर्माण करनी चाहिए। **Education for freedom; Education for peace; Education for stimulating psychology of co-operation, instead of confrontation,** - यह सब होना चाहिए। आप पाँच-सात लोग इकट्ठे मलकर ये प्रेयोग करें। आप अर्थशास्त्र के अभ्यासु हों, तो यह जो anti-people economy है, anti-people industrial texture है, केन्द्रीकरण का झूठा स्तोम (गुणगान) करनेवाले जो कोई हों, उनसे दूर जाकर; विज्ञान, यंत्रविज्ञान - इनको लेकर, देहातों में जाकर कुछ नई पद्धतियाँ नये प्रयोग करने चाहिए।

आजकल गुजरात में, गुजरात-बिरादरी के द्वारा एक 'Economic Councelling' हमने निर्माण किया है। जितने भी बेकार शिक्षित युवक हैं, उन्हें ज़िल्ला स्तर पर एकत्रित करके उनसे मेरी मित्र-मंडली चर्चा करती है। वह मेरा क्षेत्र नहीं। आपका Engineering science, आपकी Technology, आपका विज्ञान - यह देहातों में ले जाने का कर पायेंगे क्या ? - इस पर विचार-विमर्श होता है। हमें सरकार की ओर से सहायता नहीं चाहिए। उनकी योजनाएँ हों, तो वे हमे दें। उनकी योजनाएँ लेने में कोई बाधा नहीं; अगर न हों, तो देहातों में पहुँचकर एक नई पद्धति से, 'A new pattern of industrial revolution which will not be lead towards centralisation' ऐसा कुछ किया जा सकता है क्या ? - इसके प्रयोग कर रहे हैं। तो ऐसी यह साधक-मंडली, आप जैसी सत्सङ्गी मंडली, आपको यदि रूचि हो, तो आप एकत्रित हों। गुजरात में बहुत-से युवा लोग बैठे हैं। युरोप, अमेरिका को छोड़कर, अनेक इंजीनियर आज गुजरात में आकर कई छोटे-छोटे स्थानों में आ बसे हैं और प्रयोग कर रहे हैं। आपके अण्णा हजारेजी अहमदनगर ज़िले में कार्यरत हैं ही ! "ज्ञान-प्रबोधिनी" के भी चल रहे होंगे ही ! यहाँ कुछ चलता नहीं, ऐसा मुझे कहना नहीं है। यह एक आत्म-साधना है, ऐसा मैं मानती हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसे साधना का स्वरूप देना चाहिए ।

इस कार्य में, आप परिणाम-परायणता न देखते हुए, मूल्य-परायणता और चेतना-परिवर्तन की कसौटी लगायें । ऐसे साधकों के मेले, ऐसे ईश्वर--निष्ठों के समूह शिक्षण-क्षेत्र में कार्यरत हैं, आर्थिक-क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं; ऐसा होना चाहिए । ये संगठन अन्य औद्योगिक संगठनों जैसे न हों ।

यह विश्व प्रभू की काया

कैसे इकट्ठा हुए होंगे डेक्कन ऍज्युकेशन सॉसायटी की स्थापना करनेवाले अतिरथी, महारथी ! आगरकर, तिलक, भांडारकर, गोखले ! गोबर से कमरे को लीपते थे, रात में अपनी कमीज़ को धोकर सुखाते थे, प्रातः वही पहनकर सिखाते थे । "माताजी मैं यहाँ केवल ७५ रूपये बेतन लेकर ही काम करनेवाला हूँ । तू ऐसी आशा मत रख कि तेरा पुत्र **M.A.** हुआ; इसलिए अब बड़ी सरकारी नौकरी करेगा । मुझे करनी नहीं है, वह गुलामी !" आगरकर पत्र लिख रहे हैं अपने माताजी को ! ऐसा साहस रखनेवाले निकलने चाहिए । साधना याने 'मैं केवल अपना ही देखूँगा, समाज का जो होना है वह हो; यह ,समाज मिथ्या है, माया है;' - ऐसा अनर्थ कृपया न करें ।

'हे विश्व नव्हे रे माया, हे विश्व प्रभूची काया !'

यह विश्व प्रभु की माया नहीं है रे ! यह विश्व प्रभु की काया है ! तो समाज में जो social action होनेवाला है, उसको आत्म-साधना का स्वरूप मिलना चाहिए, आयाम मिलना चाहिए । 'सत्यमेव जयते' ! किन्तु संघटित सत्य 'जयते' जी ! उसे संघटन चाहिए ।

तो, यह आत्म-बल, आत्म-शक्ति समाज के प्रत्येक क्षेत्र में पहुँचने दो; फिर वे चिकित्सा-केन्द्र हों या शिक्षण के केन्द्र हों । हमारे बन्धु डॉ. गुंडेजी, जिस प्रकार योगासन, प्राणायाम की यथार्थता पूरे जीवन से जोड़कर बताते हैं, उस प्रकार से कार्य करनेवाली मंडली बने हर एक क्षेत्र में ।

अध्यात्म-साधना का अर्थ केवल स्वकेन्द्रितता नहीं - इतना आप ध्यान में लीजिये । परिस्थिति गंभीर है, इसलिए ऐसे प्रयोग महाराष्ट्र में भी जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में होने चाहिए । युवकों के स्वाध्याय-मंडल, सत्सङ्ग-मंडल तैयार करें । सन्त-साहित्य आज के संदर्भ में समझा दीजिये । देश-काल-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिस्थिति-सापेक्ष जो भाग है उनको अलग रख के, जो 'सनातन सत्य' है, 'वह' आज के युवकों को समझा दीजिये, इससे समाज-परिवर्तन की प्रक्रिया और व्यक्ति-जीवन और व्यक्ति-चेतना - इनके परिवर्तन की प्रक्रिया – ये दोनों हाथ में हाथ डालकर चलें, इतना आपको अनुरोधपूर्वक मेरा कहना है ।

सामाजिक कार्य करनेवाले लोगों को मानवीय मूल्यों का, व्यक्ति-चेतना-परिवर्तन का व साधना का महत्त्व स्वीकार होता नहीं और साधना का महत्त्व समझनेवाले लोगों के मन में सामाजिक परिस्थिति का ज़रा भी विचार आता नहीं । संवेदनशून्य हो जाते हैं ये लोग । एक कठोरता callousness आती है । 'हम साधक-मंडली हैं, हम सिर्फ़ अपने भगवान का ही देखते हैं ।' ! अरे, विश्व के बाहर क्या आपका भगवान है ? दिखाओ तो सही !

इन पांच-छः दिनों में सभी विषयों पर चर्चा हो गई, किन्तु अब धर जाने पर क्या करना है ? कैसे जीना है ? इस संबंध में यदि कोई विचार चित्त में आते हैं, तो उस अंग से दो-चार बातें कहूँ, इसलिए मैं यहाँ बैठी थी, ज्ञान-चर्चा के हेतु नहीं । साधक कभी भी अकेला रहता नहीं । जो 'सत्य की ओर' मुड़ा, उसके आसपास और उसकी सहायता के लिए संपूर्ण वैश्विक प्रज्ञा सदैव आती हीं रहती है । 'निर्वाणीं गोविंद, उभा मागें पुढें, कांहींच सांकडें पडों नेदी' यह क्या सिर्फ़ काव्य है ? यह क्या कोई तुकबंदी है ? ये अनुभव के बोल हैं ! अनुभव के उन्मेष हैं ये ! 'निर्वाण के समय गोविंद खड़ा है आगे-पीछे । कोई संकट आने नहीं देता' । 'साकडें' याने संकट । 'भक्त तोचि जाणा जो देहीं उदास ! गेले आशापाशे निवारोनी ।।' अर्थात् भक्त वही है, जिसे देह के प्रति आसक्ति नहीं, जिसके आशा-पाश निवृत्त हुए हैं, टूट गये हैं ।

तो, आप अकेले नहीं होते हैं ।

" अर्जुना, आम्हा भक्तांचे व्यसन ।
भक्त आमुचे निज ध्यान ।
ते कान्ता मी वल्लभ जाण ।
धनुर्धरा तू ।। "

ज्ञानेश्वरजी हैं प्रेमयोगी, प्रेमयोगियों के चक्रवर्ती ! ज्ञानियों के सम्राट । मैं उनका वर्णन करने में असमर्थ हूँ । 'ते कान्ता मी वल्लभ जाण' ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् मैं पति हूं और वे पत्नी हैं। वे मुझे रूप देते हैं; पहना देते हैं रूप मुझे ! नामों के परिधान देते हैं। मैं निर्गुण मुझे वे गुणों के अलंकार, गहने पहनाते हैं। मुझे 'सच्चिदानंद' कहते हैं। मुझे 'सगुण' कहते हैं, 'निराकार' कहते हैं, 'निर्गुण' कहते हैं, 'साकार' कहते हैं; - ऐसे ये नाम-रूप के गहने परिधान करानेवाले वे 'कान्ता', उनके कारण मुझे कान्ति मिलती है। जो कान्ति देती है वह ''कान्ता''। और जो कान्ति लेते हैं वह ''कान्त'' ! कितने मीठे, कैसे मधुर शब्द हैं ! 'ते कान्ता मी वल्लभ जाण', मुझे वे इतने प्रिय हैं कि यदि वे न रहें, तो मेरा अस्तित्व ही नहीं ! यह ख़ुद भगवान कह रहे हैं, जी !

हमने man-made God कहा, तो लोगों को लगता है कि उन्होंने क्या कह दिया ! अरे, आपकी सन्त-मंडलियों ने कहा है, उन्हें ही पूछो ! तुकारामजी ने तो उस ईंट पर ठहरे 'काले' विठ्ठल को कह दिया कि - हम नहीं रहें, तो तेरा नाम-स्मरण कोई करनेवाला नहीं है, बेटा ! तू क्या समझता है अपने आपको ? तुकारामजी का प्रणय-कलह यह पूरे संसार के वाङ्मय में अद्‌भुत है ! श्रीमत् ज्ञानेश्वरजी का एक प्रकार तो तुकारामजी का दूसरा। ''आम्ही जर नसतो या जगामध्ये, तर काळ्या ! तुझ नाव कोणी घेतल असतं रे ?'' तेरी ओर कोई झाँककर भी देखते क्या ? यह भक्तों की ओर से कहना और भगवन्त की ओर से, वासुदेव कहते हैं, 'आम्हा भक्तांचे व्यसन, भक्त आमुचे निज-ध्यान, निज-प्राण, ते कान्ता मी वल्लभ जाण' ! तो कैसे साधक को अकेलापन लगेगा कि - मैं अनाथ हूँ और मुझे कोई नाथ ढूंढना पड़ेगा, किसीको तो अब मैं अपना नाथ बना लूँगा। अरे, तू अनाथ होगा, तभी तो न नाथ बनाने जायेगा !!

हम जिसे 'संसार' कहते हैं वह, भगवन्त की मुट्ठी से छूटने का एक निष्फल प्रयत्न है और 'अध्यात्म' याने उस विश्वंभर के आश्लेष में ही हम हैं इतना जान लेना।

ऐसी इन मधुर बातों के बारे में आपके साथ बैठकर कहने का मुझे भाग्य प्राप्त हुआ इसलिए में आप सभी की कृतज्ञ हूँ। छः दिन आपने मनोयोग से सुना, धन्यवाद ! छः शिबिर महाराष्ट्र में आयोजित किये गये। अब बहुत हुए महाराष्ट्र में शिबिर, ऐसा मैंने डॉ. फडनीसजी से कहा। नहीं तो एक Pattern बनेगा और फिर एक Clientele बनेगा, एक क्रम ही बन जायेगा ! हमें Pattern नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बनाना है, जिसके वर्षानुवर्ष शिबिर करते रहें। मेरा 'Profession' नहीं वह, और 'सुनना' आपका 'Profession' न बने ऐसी मेरी इच्छा है। Life-long profession ऐसा हमें करना नहीं है। डॉ. फडनीसजी का परिवार, गोखलेजी, डॉ. पानसेजी - इन सभी के प्रति मैं अत्यन्त कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ और 'समेत्य च व्यपेयाताम्'। हम एकत्रित रहें, अब हम अपने-अपने गाँव जायेंगे, तब 'आम्ही जातो आमुच्या गांवा, आमुचा राम-राम ध्यावा' ऐसा ही कहना है हमें एक-दूसरे को ! अर्थात् हम अपने गाँव जा रहे हैं, हमारा 'रामराम' लीजिये।

"यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवम्। तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकम्।
तन्मे मनः३ शिवसंकल्पमस्तु३" ॥
हरिः ॐ। हरिः ॐ। हरिः ॐ।
यजुर्वेद ३४-१

(भावार्थ - "सब संकल्प-विकल्प-स्रोत, अति चंचल मथनशील बनवान् !
जागृति और स्वप्नों में रहता, जो मन दूर-दूर गतिमान !
सभी ज्योतियों की ज्योति जो, दिव्यरूप अति ज्योतिष्मान् !
सर्व सुखद-शुभ संकल्पों से, भरा रहे वह दया-निधान !!)"

"कली खिलती है तो पुष्प बनती है। कली है अविकसित पुष्प और पुष्प है अविकसित कली। वैसे जिज्ञासा, आत्मजिज्ञासा, सत्यजिज्ञासा, ब्रह्मजिज्ञासा - यह कली है। और जिसे आप मोक्ष या मुक्ति कहते हैं, वह पुष्प है। इन दोनों में इतना ही अंतर है, एक मुग्धावस्था में है और एक प्रफुल्लित अवस्था में है। दो अलग चीजें नहीं हैं। इसलिए अपने आपको पूछना होगा कि मैं इन अध्यात्म की बात करनेवाले समूहों में क्यों जाती हूँ, क्यों जाता हूँ ? यह कोई धर्म की बातें तो नहीं हैं। कि पाप-पुण्य की बात हो, दान-धर्म की बात हो। धर्म शासन-कर्ता है जमातों का, समाजों का, वह आचार-संहिता देता है। वह भय और प्रलोभन के तत्वों का उपयोग करता है। वहाँ अधिकारों की शृंखला होतीं हैं, पुरोहित होते हैं, धर्मगुरुहोते हैं, मंदिर-मस्जिद, देवस्थान होते हैं। यह तो आत्मविज्ञान है, science of consciousness. यहाँ प्रतीकों की बात नहीं होगी। यहाँ परंपराओं की बात नहीं होगी। यहाँ बात होगी सत्य की, उसे देखने की, समझने की और जीने की। तो अपने आपसे पूछना चाहिए कि मैं ऐसे गॅदरिंग में क्यों जाती हूँ, बुद्धि को कुतूहल है ? Is it out of only intellectual curiosity that I join such a gathering and go through the talks or discussions ?"

["साधनामय जीवन" मेंसे]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चद्-कलिका

अध्यात्म यह संपूर्ण जीवन की और देखने की एक वैज्ञानिक दृष्टि है। इस दृष्टि में कई प्रकार की भ्रांतियाँ और भ्रमों का निरसन करने की शक्ति रहती है।

अध्याम यह शिक्षा लेने का क्षेत्र है, कुछ प्राप्त करने का क्षेत्र नहीं। शुभ संस्कारों का सिञ्चन अपने प्रयत्नों से दैनिक जीवन में करते हुए जीते चले जायें; अशुभ का निरसन उसके द्वारा घटित होनेवाला हैं। अध्यात्म यह अमर्याद, असीम, अकाल, अनंत का बोध करानेवाला विज्ञान है। शासन करनेवाला शास्त्र नहीं।

भारतीय-संस्कृति यह भोगवादी, पदार्थ-परायण तथा भोग-परायण नहीं है। वह जीवन-परायण संस्कृति है। उसमें मानवों का स्थान सबसे श्रेष्ठ है।

हम जो कर रहे हैं वह योग्य है या नहीं, इसका परीक्षण करें। उसकी यदि चाह हो, वह करते समय यदि आनंद प्रतीत होता हो, उसके करने से किसीकी कोई हानि न हो, तो उसका फल दिखे या न दिखे, वह करते रहें।

माया की सहायता से यह जो विविधता, विलक्षणता, विचित्रता है, अनिर्वचनीय ऐसी जो विचित्रता है, इसके द्वारा हम अनुमान लगा सकते हैं कि इस व्यक्त सृष्टि के पीछे जो कुछ अव्यक्त होगा या अनंत होगा, उसकी सत्ता सर्वव्यापिणी है।

पलायनवाद में जीवन नहीं है। हुई होगी भूल, खाई होगी ठोकर, तो हँसते हुए उसके परिणाम को तू सहन कर; किन्तु भाग मत जा। भारतीय संस्कृति मानव को पलायनवादी नहीं बनाती; वह जीवन-परायण संस्कृति है।

जिन्हें नामस्मरण से प्रारंभ करना है, दिनभर जो कार्यरत रहते हैं, घर सँभालते हैं, जिन्हें काम करना पड़ता है, उन्हें उठते-बैठते-चलते-फिरते नाम लेना चाहिए और उसके साथ साथ अर्थभावन करना चाहिए।

सत्सङ्ग में व्यक्ति का संग नहीं। व्यक्ति माध्यम रहती है। वाणी यह सत्य का निर्देश करनेवाला वाहन है, वाहक है। सत्सङ्ग का प्रथम पथ्य है कि उसके द्वारा व्यक्ति-निष्ठा न होने पाये।

सत्सङ्गसभाओं में अपना बौद्धिक, आंतरिक स्वातंत्र्य अबाधित रहे, इतनी ख़बरदारी रखनी चाहिए। किसीकी अनुभूति की छाया हमारे जीवन पर पड़ने नहीं देनी चाहिए।

जिस समाज में हम जीवन बीता रहे हैं, वह समाज हमें अन्न; वस्त्र, आच्छादन देता है, यह एक प्रकार का ऋण है; समाज का ऋण है वह हम पर। वह ऋण हमें चुकाना है। यह ऋण चुकाना यह आत्म-साधना ही है।

(प्रस्तुत पुस्तक मेंसे)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विमल - वाङ्मय

ENGLISH

1 Nijmegen Uni. Talks - 1970
2 Nijmegen Uni. Talks - 1972
3 Talks (Celyon & California)
4 Vimalaji on Intensive Self-Education
5 Vimalaji on National Problems
6 The Eloquence of Action
7 On an Eternal voyage
8 Talks in Australia
9 The Mystery of Silence
10 Silence in Action
11 Towards Total Transformation
12 Uni. Talks - 1974
13 B. H. Uni. Talks
14 Path of Nirvana
15 Vimalaji's Global Pilgrimage - (Part I-II)
16 What is Meditations ?
17 Meditation in daily life
18 Through Silence to Meditation
19 Vimalaji & her perspective of life
20 Living a truly religious life
21 Yoga beyond Meditation
22 Glimpses of Raja Yoga
23 The Message of Chhandogya
24 Himalayan Pearls
25 Science & Spirituality
26 Personal discovery of truth
27 Friendly Communion
28 Why Meditation ?
29 Totality in essence
30 Ego Emergence and Merging Back of the "I" Process
31 The Survival of the human race
By Dr. Sampooran Singh
32 The Philosophy of the Upanishads
By Swami Anandacharya

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिन्दी

१ त्रिविध-प्रकाश
२ मधुपर्व
३ श्रीज्ञानेश्वरी (पद्यानुवाद + भूमिका)
४ अध्यात्मका पाञ्चजन्य
५ श्रीमद् भगवद्‌गीता-भावार्थदीपिका - अध्याय-२
६ श्रीमद् भगवद्‌गीता-भावार्थदीपिका - अध्याय-९
७ मन के उस पार
८ अशब्द की ओर
९ जीवन-सौरभ
१० भूदान-दीपिका
११ पञ्चामृत
१२ साम्ययोग
१३ लोकनीति - दादा की नज़र से
१४ अध्यात्म-समग्र-जीवन-विज्ञान
१५ शान्तिमय क्रान्ति की पुकार
१६ सहज समाधि भली
१७ साधनामय जीवन
१८ स्वधर्मसूर्य के आलोक में विश्व

पुस्तक-प्राप्ति स्थान

"सन्तकृपा", १०३, रत्नम् टावर, पहला मजला,
चीफ जस्टिस के बँगले के पीछे, जजीस बँगलो रॉड,
बोडकदेव, अहमदाबाद - ३८० ०५४.
फोन एवं फेक्स : (०७९) ६८५४९९१
E-mail : jivanyog@sancharnet.in

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ગુજરાતી

૧ શ્રીજ્ઞાનેશ્વરી (પદ્યાનુવાદ)
૨ મધુપર્વ
૩ "સ્થિતપ્રજ્ઞસ્ય કા ભાષા"
૪ "યોગક્ષેમં વહામ્યહમ્"
૫ બિરાદરોને જીવનદીક્ષા
૬ માનવ બનો
૭ જીવન-સૌરભ
૮ બિરાદરીનું અધ્યાત્મ
૯ દેવતાત્માની પ્રસાદી
૧૦ માતૃશક્તિ
૧૧ અવધૂત-પ્રસાદી
૧૨ ભારત-મૂલ્યનિષ્ઠાની એરણે
૧૩ અયોધ્યા-પડકાર
૧૪ ખડસલીને આંગણે સત્સંગ-ઉજાણી
૧૫ શ્રીઅમૃતાનુભવ (પદ્યાનુવાદ)
૧૬ સઘન સ્વકેળવણી વિષે વિમલાજીનાં વ્યાખ્યાનો
૧૭ સુશ્રી વિમલાજીનું સમગ્ર જીવનદર્શન
૧૮ જીવનસાધકની વિમલયાત્રા
(વિમલા ઠકારનું જીવનચરિત્ર)
૧૯ સંત જ્ઞાનેશ્વરનો પંચમ-પુરુષાર્થપ્રદીપ ભાગ-૧
૨૦ સંત જ્ઞાનેશ્વરનો પંચમ-પુરુષાર્થપ્રદીપ ભાગ-૨
૨૧ ગુજરાતમાં જાગૃત જનતાનો અભિનવ પુરુષાર્થ
૨૨ વિમલ સંસ્મરણો
૨૩ શ્રીજ્ઞાનેશ્વરીમાં વિશ્વરૂપદર્શનયોગ
૨૪ આતમ-ગોઠડી ભાગ-૧
૨૫ આતમ-ગોઠડી ભાગ-૨
૨૬ માનવીય ક્રાંતિ રાહ જુએ છે.
૨૭ મન સાથે મૈત્રી
૨૮ સહિયારો સત્સંગ
૨૯ રૈકીના શિક્ષકો સાથે સંવાદ
૩૦ મધુવનમાં સત્સંગ
૩૧ અધ્યાત્મનો આયામ
૩૨ યોગ આનંદપર્વ
૩૩ ધ્યાનાતીત યૌગિક જીવન
૩૪ ઘટ સે જીવનરસ છલકે
૩૫ જીવનયોગ
૩૬ ધ્યાન એક જીવનમાર્ગ
૩૭ અનન્તને સથવારે
૩૮ માનવ-નિર્માણ
૩૯ પાથેય
૪૦ માર્ગદર્શિકા
૪૧ નારી બને નારાયણી
૪૨ લોકતંત્રની મૂલ્યરક્ષા
૪૩ અધ્યાત્મની અગ્નિશિખા
૪૪ મધુર અદ્વૈત

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

युवा पीढ़ी का ऐसा उपहास एवं अपमान क्यो ?

किस कारण युवा पीढ़ी धर्म में जीवन बिताए ? ईश्वर या आत्मा-परमात्मा की चर्चा किस कारण वे सब करें ? वे सब आत्मोन्नति का ध्येय कैसे स्वीकार करें ? इस देश में जो शासन है, जो शासक-वर्ग है, जो राजनैतिक पक्ष हैं, जो धर्म-गुरु हैं, मंदिरों में, मठों में, गुरुद्वारा, देरासर, बौद्ध-विहार, मस्जिद—इन सभी स्थानों में नाममात्र बैठनेवाले जो हैं, वे उत्तान और उच्छृंखल भोगवाद व भौतिकवाद के शिकार हैं। देश का सारा वातावरण ही उन्होंने दूषित कर ड़ाला है। जब यह ऐसा है, तब इस बेचारे निरपराध युवा-वर्ग ने ही क्या पाप किया है कि वे धर्म, ईश्वर और आत्मोन्नति को अपना ध्येय माने ? इस देश में true religion-सच्चा धर्म और आत्मोन्नति यह जीवन का लक्ष्य है - ऐसा यदि (युवा पीढ़ी से) कहना हो, तो प्रथमतः समस्त राजनैतिक नेताओं को और राजकीय कार्यकर्ताओं को निकालकर अंदमान-निकोबार भेज देना चाहिए। मैं असत्य नहीं कह रही हूँ और शायद मेरा कहना आपको कठोर भी लगेगा। किन्तु सचमुच ऐसी विदारक परिस्थिति है! सबको अंदमान-निकोबार भेज दो, उन्हें मज़दूरी करने में लगा दो, परिश्रम करने में लगा दो, और लक्षद्वीप व अन्य islands हैं, मालद्वीप, लक्षद्वीप आदि - वहाँ समस्त धर्मगुरुओं को भेज दो, पुरोहितों को भेज दो। पाखंड सिखानेवाली, पाखंड का आचरण करनेवाली, भीरुता - कायरता सिखानेवाली, fatalism, नियतिवाद-प्रारब्धवाद कहनेवाली - ये सभी मंडली आसपास रहें; नेता, धर्मगुरु, तांत्रिकों का, मांत्रिकों का आश्रय लेते रहें और घरों में रहनेवाले ग़रीब-बेचारे बच्चों को हम धर्म, ईश्वर, आत्मोन्नति सुनाते रहें ? Proliferation of cosumer goods is the essence of our progressive economy, और उन्हें हम सादगी के बारे में कहते रहें ? मेरे देश के युवको की 'नब्ज़-नाड़ी' (तबीयत) अच्छी-ख़ासी है, जी ! **Nothing is wrong with them. something is wrong with us, the elders, and the way we run our families and the way we run our country--drastically wrong with us.** (ऐसे में) युवा-पीढ़ी को 'आप आत्मोन्नति का ध्येय रखें', यह कहना तो उनका उपहास करना है। You are insulting their intelligence.

(प्रस्तुत पुस्तक मेंसे)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi